अंक 85 अप्रैल-जून, 1999

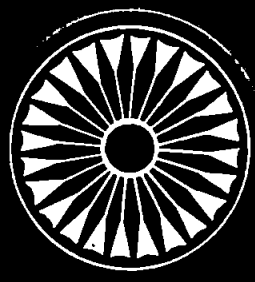

राजभाषा भारती

राजभाषा विभाग गृह मंत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली

नक्शा

कश्मीर, कारगिल, सियाचीन,
नहीं कोई सकता हमसे यूं छीन,

घुसपैठ करी और बैठ गए,
भाड़े के सैनिक, पर ऐंठ गए,
जब मार पड़ी तो भाग रहे,
कोई अमरीका, कोई है चीन।

कश्मीर, कारगिल, सियाचीन,
नहीं कोई सकता हमसे यूं छीन,

घनघोर समर दिखलाया है,
हम क्या हैं उन्हें बताया है,
दुश्मन के छक्के छुड़ा दिए,
पांवों से खिसका दी जमीन।

कश्मीर, कारगिल, सियाचिन,
नहीं कोई सकता हमसे यूं छीन,

अगणित नचिकेता आज यहाँ,
हैं काल के भी काल यहाँ,
ये महाकाल की धवल-धरा,
मारेंगे दुश्मन बीन-बीन।

कश्मीर, कारगिल, सियाचीन,
नहीं कोई सकता हमसे यूं छीन,

शान्ति, समता के प्रचारक,
पर सुदर्शन चक्र-धारक,
नापाक पड़ोसी का नक्शा,
कल फिर से होगा छिन्न-भिन्न,

कश्मीर, कारगिल, सियाचीन,
नहीं कोई सकता हमसे यूं छीन,

□साधना सक्सेना
ई-9, केट, इन्दौर,
मध्य प्रदेश

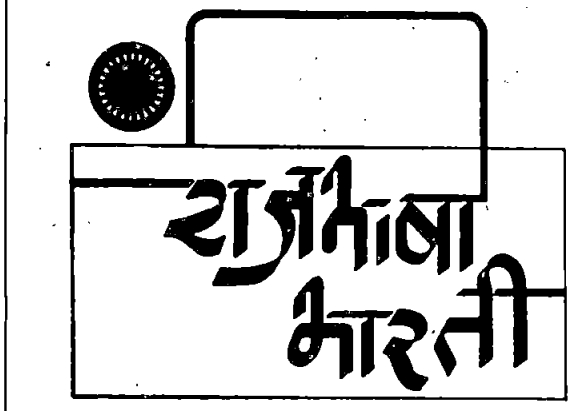

राजभाषा की त्रैमासिकी

वर्ष : 22
अंक : 85
वैशाख-आषाढ़, 1921 अप्रैल-जून, 1999

☐ संपादक :
प्रेम कृष्ण गोरावारा
निदेशक (अनुसंधान)
फोन : 4617807

☐ उप संपादक :
नेत्र सिंह रावत
फोन : 4698054
सुरेन्द्र लाल मल्होत्रा
फोन : 4698054

निःशुल्क वितरण के लिए

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। सरकार अथवा राजभाषा विभाग का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पत्र-व्यवहार का पता :

संपादक, राजभाषा भारती,
राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय,
लोकनायक भवन, (दूसरा तल)
खान मार्किट, नई दिल्ली-110003

अनुक्रम — पृष्ठ

☐ संपादकीय

☐ चिंतन

1. नयी सदी एशिया की है, उसे भारत की सदी बनाना होगा — अटल विहारी वाजपेयी — 1
2. सत्यमेव जयते नानृतम — स्वामी रामतीर्थ — 3
3. हिंदी में वैज्ञानिक अभिव्यक्ति और तकनीकी लेखन — प्रो. सूरजभान सिंह — 5
4. हिन्दी की छाती पर अंग्रेजी को नही लादा जा सकता — नागार्जुन — 14
5. भारत में पर्यावरण चेतना — विश्वंभर प्रसाद 'गुप्तबन्धु' — 16
6. इन्टर्नेट : एक और क्रांति — अ. कु. गुप्ता — 24
7. वाई 2 के : समस्याएं व समाधान — आर. पी. जोशी — 27
8. इंग्लैण्ड में अंग्रेजी कैसे लादी गई ? — जगदीश प्रसाद ढौंडियाल — 30
9. हिंदी-वर्तनी : विवाद एवं भ्रम के मुद्दे — डा. रवि शर्मा — 32
10. पूर्वोत्तर भारत की प्रमुख भाषाएं — अजयेंद्रनाथ त्रिवेदी — 38
11. राजभाषा पत्रकारिता : प्रबंधन प्रक्रिया — डा. चन्द्रपाल — 41
12. राजभाषा प्रबंध-विकास में मुख्य अधिशासियों का योगदान — प्रभाकर राम त्रिपाठी — 49

2226 HA/99—1A

अनुक्रम			पृष्ठ
13. सरकारी कामकाज में हिन्दी के प्रयोग में आने वाली कठिनाइयां एवं समाधान	—	ओमप्रकाश सेठी	51
14. भारत की जनगणना-1991 के संदर्भ में भारत की भाषाएं और मातृभाषाएं	—	डॉ. आनन्द स्वरूप पाठक	54
☐ **साहित्यिकी**			
15. संस्कृत साहित्य में विमान	—	डॉ. उर्वी	58
16. एकात्मकता के दो छोर : एकनाथ तथा तुलसी	—	डॉ. रामगोपाल सोनी	65
17. निराला के काव्य में दर्शन	—	डॉ. षण्मुखन	70
18. पुल (कहानी)	—	सतीश कुमार गुप्ता	73
19. प्रायश्चित (कहानी)	—	करूणा शर्मा	75
20. जरासंघ नहीं हूँ मैं (कहानी)	—	राजेश श्रीवास्तव	77
21. माँ का अहसान (कहानी)	—	प्रमोद कुमार	80
22. आवेगात्मक-क्षण	—	डॉ. रामदास 'नादार'	82
☐ **भाषा संगम**			84
मराठी कविताएं			
● प्राणज्योति	—	मनमोहन	
● कहाँ है शांति ?	—	रा. अ. कालेल	
● वंदन	—	शरद उमराणी	
☐ **मुहावरे**			87
● हिन्दी-तेलुगु की कहावतें	—	वी. वी. आर. मोहन	
☐ **पुस्तक समीक्षा**			88
अमावस्या का चाँद (रामनारायण मिश्र/डॉ० राजकुमारी शर्मा), भाषा विज्ञान की रूपरेखा (डॉ. हरीश शर्मा/राधाचरण विद्यार्थी), दंगे क्यों ? (राजेन्द्र मोहन भटनागर/हरीश चन्द्र मैखुरी)			

संपादकीय

राजभाषा भारती का अंक 85 नये कलेवर के साथ आपके सम्मुख प्रस्तुत है। यह अंक पिछले कुछ अंकों से हटकर है। राजभाषा भारती की विषय-वस्तु का दायरा बढ़ाने के लिए इसमें अब ललित साहित्य की विविध विधाओं पर रोचक एवं स्तरीय लेख प्रकाशित किए जाएंगे।

दुनिया भर में नयी सहस्राब्दि की प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकता से की जा रही है। यह जानने के लिए सभी लालायित हैं कि नयी सदी कैसी होगी और इसमें भारत का स्वरूप कैसा होगा। इस संबंध में ''नयी सदी एशिया की है उसे भारत की सदी बनाना होगा'' शीर्षक लेख में विस्तृत जानकारी दी गई है। पर्यावरण से तात्पर्य विश्व के सम्पूर्ण परिवेश से है जिसका प्रभाव व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और सारे संसार पर पड़ता है। स्वच्छ पर्यावरण स्वस्थ जीवन प्रदान करता है। पर्यावरण प्रदूषण से जीवन भी स्वस्थ नहीं रहता। पर्यावरण और जीवन, पर्यावरण-चेतना, पर्यावरण प्रदूषण के कारण आदि विभिन्न पहलुओं पर ''भारत में पर्यावरण चेतना'' शीर्षक लेख में प्रकाश डाला गया है। आज विश्व इन्टरनेट के दौर से गुज़र रहा है। आने वाले समय में इंटरनेट हमारे जीवन के हर पहलू को प्रभावित करेगा। इंटरनेट से संबंधित ज्ञानवर्धक जानकारी ''इंटरनेट : एक और क्रांति'' शीर्षक लेख में दी गई है।

सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जिस तीव्र गति से विकास हो रहा है उससे लगता है कि नई सहस्राब्दि सूचना-क्रांति की होगी। अत: यह जरूरी है कि इस क्रांति से भारत का जन-जन लाभान्वित हो। भारत में प्रतिभा की कमी नहीं है। संसाधन भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं संसाधनों का इष्टतम उपयोग करके भारत सूचना-क्रांति के क्षेत्र में विश्व के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने में सक्षम है। स्वभाषा भी एक प्रमुख संसाधन है जिसके माध्यम से हम सूचना प्रौद्योगिकी से

संबंधित जानकारी जन-जन तक सहजता से पहुंचा सकते हैं। अतएव हमें अपनी भाषाओं एवं सूचना प्रौद्योगिकी के बीच एक सामंजस्य स्थापित करना होगा। यांत्रिक एवं इलैक्ट्रानिक उपकरणों का निर्माण इस तरह से करना होगा कि उन पर हम काम स्वभाषाओं में सुगमता से कर सकें। तभी हम नयी सहस्राब्दि की चुनौतियों का सामना प्रभावी ढंग से कर सकेंगे और विकसित देशों की सूची में अपने देश का नाम भी अंकित कर सकेंगे।

राजभाषा विभाग की सचिव श्रीमती आशा दास का स्थानान्तरण हो गया है। अब नये सचिव के रूप में श्री अशोक कुमार, आई. ए. एस. ने अपना कार्यभार ग्रहण कर लिया है। हम आशा करते हैं कि उनके कुशल नेतृत्व एवं दीर्घ अनुभव से विभाग को एक नई दिशा मिलेगी तथा राजभाषा हिंदी का संवर्धन एवं विकास और तेज़ी से होगा।

भारत पड़ौसी देशों के साथ सदैव मैत्रीपूर्ण संबंध बनाने का इच्छुक रहा है। कारगिल युद्ध के दौरान भारत की सहिष्णुता इसका एक प्रमाण है। कारगिल घुसपैठियों को बाहर खदेड़ने में हमारे वीर-जवानों ने शौर्य एवं अदम्य साहस का प्रदर्शन कर अपने प्राणों का बलिदान किया है; उसे हम शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकते। देश की सीमाओं की सुरक्षा के लिए मर-मिटने वाले वीर जवानों को भारती परिवार शत-शत नमन करता है;

''बढ़ो बहादुरो बढ़ो! अलम वतन का खोलकर
करो मुकाबला शत्रु का तेग तोल-तोलकर
वतन की आन तुमसे है वतन की शान हो तुम ही
वतन की लाज तुमसे है वतन का मान हो तुम ही'';

(प्रेमकृष्ण गोरावारा)

नयी सदी एशिया की है, उसे भारत की सदी बनाना होगा

□ अटल बिहारी वाजपेयी

नयी शताब्दी निश्चित रूप से एशिया की शताब्दी होगी लेकिन अपने दृढ़ संकल्प से उसे भारत की शताब्दी बनाना होगा : यह भी सुनिश्चित है कि आगामी पचास वर्षों में भारत आर्थिक रूप से संपन्न होगा। इस तरह भौतिक दृष्टि से संपन्न देश अनेक होंगे लेकिन भारत की विशेषता यह होगी कि वह भौतिक मूल्यों के साथ नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी एक आदर्श उपस्थित करेगा। बढ़ती हुई जनसंख्या के बावजूद भारत सामाजिक क्षेत्र में भारी प्रगति करने में सफल होगा। सभी नागरिकों के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, रोजगार आदि उपलब्ध कराने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

नयी सदी में प्रवेश करने की जब उल्टी गिनती शुरु हो ही चुकी है तो आज की अपनी समस्याओं पर एक नजर डालना उचित होगा। इससे उन समस्याओं को हल करने में मदद् मिलेगी। आजादी के पचास वर्षों में विश्व का यह विशाल लोकतंत्र परिपक्व हुआ है और भारतीय लोकतंत्र की यह परिपक्वता इस देश की समस्याओं के हल खोजने के मार्ग को प्रकाशमान करती है। इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती कि पोखरण में पिछले वर्ष किये गये परीक्षणों, देश की जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप लाये गये केन्द्र सरकार के बजट, विकास की दिशा में देश को आगे ले जाने के लिए शुरु की गई अनेक परियोजनाओं से देश न केवल शक्तिशाली हो कर उभरेगा बल्कि विकास और समृद्धि की ओर लगातार अग्रसर होगा।

पोखरण में भूमिगत परमाणु परीक्षणों को ले कर हम पर किसी प्रकार के आक्षेप लगाना उचित नहीं होगा। भारत की सुरक्षा और विदेश नीति की ओर गौर किए बगैर किसी प्रकार का संदेह किया जाना उचित और न्यायपूर्ण नहीं होगा। मई 1998 में ये विस्फोट करने के बाद भी सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया था कि भारत ने ये परमाणु परीक्षण अपनी सुरक्षा को मजबूत करने के लिए किये हैं। भारत किसी भी देश पर पहले आक्रमण नहीं करेगा, लेकिन उसे अपनी सुरक्षा व्यवस्था मजबूत करने का पूरा अधिकार है और इसके लिए भारत किसी अन्य के प्रति जवाबदेह नहीं है।

भारत किसी देश पर आक्रमण नहीं करना चाहता। उसकी नीति है कि अपने पड़ोसी देशों के साथ उसकी मित्रता हो। लाहौर बस यात्रा का उद्देश्य भी यही था। लेकिन यदि किसी को मित्रता की भाषा नहीं आती तो भारत उसकी भाषा में भी जवाब देना जानता है। लेकिन वह शांति चाहता है और पड़ोसी देशों के साथ वह दोस्ती रखने का सदा इच्छुक रहा है।

भारत विश्व को परमाणु अस्त्रों के जखीरे पर बैठा नहीं देखना चाहता। परमाणु शक्ति का प्रयोग केवल शांति और विकास के क्षेत्र में ही होना चाहिए। लेकिन जब कुछ देश परमाणु अस्त्रों का जखीरा लगातार बढ़ाते ही जा रहे हों और वे चाहते हैं कि अन्य कोई देश शक्तिशाली न हो तो परमाणु अस्त्र संपन्न होने का अधिकार केवल पांच देशों को तो नहीं दिया जा सकता। वैसे भी भारत पहले ही अपनी ओर से खुद घोषणा कर चुका है कि वह और परमाणु परीक्षण नहीं करेगा। परमाणु अस्त्र रखने वाले देश यदि चाहते हैं कि अन्य देश परमाणु अस्त्र नष्ट कर दें तो उन्हें इस दिशा में खुद ही पहल करनी चाहिए।

नयी सदी का भारत एक नया भारत होगा, जिसकी गिनती विश्व के शक्तिशाली देशों में की जाएगी। उसकी आवाज विश्व में सुनी जाएगी। खाद्यान्न में हम आज भी आत्मनिर्भर हैं, आगे तो स्थिति और भी बेहतर होगी। नयी सदी के भारत को स्वावलंबी और स्वाभिमानी बनाने की तस्वीर में रंग भरने में ही हम जुटे हैं। वैसे नयी सदी सूचना और प्रौद्योगिकी की होगी। भारत इस क्षेत्र में भी पीछे नहीं है। भारत के अपने उपग्रह अन्तरिक्ष में सक्रिय हैं। श्रीहरिकोटा रेंज से एक भारतीय और दो विदेशी उपग्रहों के साथ 'पी एस एल वी-सी 2' के सफल प्रक्षेपण से भारत अंतरिक्ष में वाणिज्यिक उड़ान भरने वाले देशों की पंक्ति में शामिल हो गया है। भारत के दूरसंवेदी उपग्रह 'आई आर एस पी-4' के साथ कोरिया के किटसेट-3 और जर्मनी के 'डी एल आर टबसेट' को ले कर जब 'पी एस एल वी-सी 2' ने अंतरिक्ष में उड़ान भरी तो उन रोमांचक क्षणों में मैं वहीं श्रीहरिकोटा रेंज में ही था। शक्तिशाली इंजनों का धड़कना और राकेटों का गर्जन करते हुए आकाश में उठना एक रोमांचक अनुभव था। इस उड़ान से भारत

ने अपने अंतरिक्ष कार्यक्रम को नयी ऊंचाइयों पर ले जा खड़ा किया है। भारत ने एक बार फिर सिद्ध कर दिया कि वह अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी के सभी पहलुओं पर अंतरराष्ट्रीय दक्षता हासिल करने में सक्षम है।

भारत विज्ञान और प्रौद्योगिकी का उपयोग शान्ति के लिए करना चाहता है और नयी सदी में भारतीय वैज्ञानिक अंतरिक्ष और समुद्र विज्ञान के क्षेत्र में नई संभावनाएं तलाशने में कटिबद्ध हैं। 'पी एस एल वी सी 2' की सफलता से भारत नयी सदी में एक प्रमुख शक्ति बन जायेगा। भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम का उद्देश्य देश को शक्तिसंपन्न और शांतिपूर्ण देश बनाना है। भारतीय उपग्रहों द्वारा लिये गये चित्रों का उपयोग विश्व के सभी भागों में मानवता के विकास में किया जा रहा है।

आधुनिक विज्ञान का विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग किये जाने से जीवन स्तर में लगातार सुधार हो रहा है। चाहे चिकित्सा का क्षेत्र हो अथवा शिक्षा, या फिर वाणिज्य, उद्योग या व्यापार, आधुनिक विज्ञान के चमत्कारिक परिवर्तन देश के सामने हैं। लेकिन लगातार बढ़ रही जनसंख्या ने देश की प्रगति को ग्रहण लगा रखा है। इससे जहां विभिन्न वर्गों के बीच लगातार खाई गहरी होती जा रही हैं वहीं गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा का अंधकार लगातार बढ़ता जा रहा है। ये समस्याएं एक दूसरे से जुड़ी हुई है जिनका समाधान हम सब को मिल कर खोजना होगा। किसी भी देश के विकास का ग्राफ पूर्णतयी उसकी अर्थव्यवस्था और उसके प्रबंधन पर निर्भर करता है। भारत के संदर्भ में यह तथ्य देश की एक उज्ज्वल तस्वीर प्रस्तुत करता है। इसका सबसे बड़ा कारण है कि हमारे देश की अर्थव्यवस्था पूर्णतया विश्वसनीय है। भारतीय अर्थ व्यवस्था इस वर्ष कई बार अग्नि परीक्षा से गुजरी है। वह न केवल परमाणु परीक्षणों के बाद अमेरिका द्वारा लगाये गये आर्थिक प्रतिबंधों के बावजूद मजबूती से टिकी रही बल्कि विश्व में मंदी के दौर में भी वह आसानी से संकट को झेल कर आगे बढ़ गयी। इसके विपरीत संकट के उस दौर में भारतीय अर्थव्यवस्था के चरमरा जाने की भविष्यवाणियां की जा रही थी। ऐसे संकट के दौर में भारतीय अर्थव्यवस्था का और अधिक मजबूत हो कर निकलना भविष्य के लिए क्या संकेत देता है, समझना मुश्किल नहीं है।

वैसे देश की अर्थव्यवस्था पर एक नजर डाल कर देश की विकास की झलक ली जा सकती है। इसकी शुरुआत सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि, सकल घरेलू उत्पाद और मुद्रा स्फीति की दर से की जा सकती है। सकल घरेलू उत्पाद की दर जहां 4 प्रतिशत से भी कम होने की भविष्यवाणी हो रही थी वहीं पर 6 प्रतिशत तक बढ़ गयी। मुद्रा स्फीति के दो अंकों तक बढ़ने की आशंका थी, वह घट कर एक बार तो 3.7 प्रतिशत रह गयी थी। सकल घरेलू उत्पाद घाटा 1 प्रतिशत तक सीमित कर दिया था। राजकोषीय घाटे, ब्याज दर और मुद्रा स्फीति पर नियंत्रण भविष्य में व्यापार की हालत अधिक बेहतर होने का संकेत है। स्वर्ण और एस. डी. आर. समेत विदेशी मुद्रा भंडार में 33 बिलियन डॉलर है जो अब तक का सबसे बड़ा भंडार है। इतना ही नहीं निर्यात में भी सकारात्मक वृद्धि हो रही है। कृषि में विकास दर लगातार बढ़ रही है। पिछले वर्ष की तुलना में यह अब 5.3 प्रतिशत बढ़ी है। साथ ही औद्योगिक उत्पादन में भी 3.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसी प्रकार की वृद्धि बिजली उत्पादन, सीमेंट, तेल उत्पादों में भी है।

भारत में शिक्षा प्रसार और स्वास्थ्य सेवाओं में भी तेजी से सुधार हो रहा है और हमारा लक्ष्य सभी के लिए स्वास्थ्य और शिक्षा उपलब्ध कराना है जिसे भारत शीघ्र प्राप्त भी कर लेगा। इसीलिए जब मैं कहता हूं कि 21 वीं सदी ऐशियां की सदी है और उसे भारत की सदी बनाया जा सकता है तो वह अतिशयोक्ति या कोरी कल्पना नहीं बल्कि वास्तविकता के बिल्कुल नजदीक की स्थिति है जिसे साकार करने और रंग भरने के लिए प्रत्येक भारतवासी को ईमानदारी से एक जुट होकर कमर कसनी होगी।

□□

(नवभारत टाइम्स, 12 जून, 1999 से साभार)

सत्यमेव जयते नानृतम्

☐ स्वामी रामतीर्थ

सत्य की हमेशा जस होती है, झूठ की नहीं। पुराणों में लिखा है कि लक्ष्मी विष्णु की सेवा करती है, विष्णु के पाँव दबाती है, अर्थात् लक्ष्मी विष्णु की स्त्री है, लक्ष्मी विष्णु की छायावत् साथी। विष्णु है तो लक्ष्मी है, विष्णु नहीं तो लक्ष्मी भी नहीं है। यह बात बहुत ठीक है। विष्णु के माने सत्य और धर्म के हैं, लक्ष्मी के माने धन और जय के हैं। सो जहां सत्य और धर्म नहीं वहां धन और जय भी नहीं। गीता में लिखा है, 'यतो धर्मस्ततो जयः'। अतएव यदि विष्णु रूपी धर्म की ओर बढ़ोगे, तो लक्ष्मी रूपी जय और धन तुम्हारी छाया के मानिन्द तुम्हारे पीछे-पीछे फिरा करेगी, पर विष्णु रूप धन से विमुख होने पर, यदि चाहोगे कि लक्ष्मी रूपी जय और धन हम प्राप्त कर लें तो ऐसा कभी नहीं हो सकता।

हमारे हिन्दुस्तान की आजकल जैसी कुछ दशा है वह सब पर विदित है। प्लेग राक्षस हजारों का सफाया कर रहा है, अकाल लाखों आदमियों का खून चूस रहा है। हैजा, चेचक आदि सैंकड़ों बीमारियां करोड़ों आदमियों के प्राण ले रही हैं, कहां तक कहें, हिन्दुस्तान हर प्रकार से दुखी है। हिन्दुस्तान की ऐसी शोकमय दशा क्यों है, इसके उत्तर में मैं यही कहूंगा कि सत्य और धर्म का ह्रास हुआ है। हिन्दुस्तानियों की सत्य और धर्म पर श्रद्धा नहीं है। हिन्दुस्तान में धर्म केवल बोलने के लिये है, अमल में लाने के लिये नहीं।

अब मैं हिन्दुस्तान और अमेरिका का मुकाबला करता हूं। अमेरिका, हिन्दुस्तान के पैर के नीचे है। हिन्दुस्तान में दायें रास्ते जाते हैं, अमेरिका में बायें रास्ते जाते हैं। हिन्दुस्तान में मन्दिरों या मकनों में जाने से पहले जूता उतारते हैं, अमेरिका में टोपी उतारते हैं। हिन्दुस्तान में पुरुष घर का मालिक होता है और स्त्री के ऊपर हुकूमत करता है, अमेरिका में स्त्री घर की मालिक होती है, पुरुष के ऊपर हुकूमत चलाती है।

हिन्दुस्तान में उस किताब की कद्र नहीं होती जिसमें पुरानी किताबों से कुछ न कुछ (नकल) (हवाले) नहीं की जाती है, और अमेरिका में उस किताब की बिल्कुल कद्र नहीं होती जिसमें कुछ भी दूसरी किताब की नकल होती है। अमेरिका में उसी किताब की प्रतिष्ठा होती है जो बिल्कुल नई होती है। हिन्दुस्तान में कोई आदमी ऐसा काम नहीं करता या करना चाहता जिसका नतीजा वह अपनी आँखों के सामने न देख लेवे, यहां तक कि बूढ़े आदमी बगीचा लगाने में भी हिचकिचाते हैं, पर अमेरिका में यह बात नहीं है। वहां हर एक आदमी काम करता है और फल की इच्छा नहीं रखता। वे अपना फायदा नहीं देखते, किन्तु मुल्क का फायदा देखते हैं। जापान में एक अमेरिकन प्रोफेसर था, वह बहुत बूढ़ा था। बारह जबानें जानता था। इस उम्र में रूसी भाषा पढ़ रहा था। मैंने उससे पूछा कि 'आप रूसी भाषा पढ़ कर अब क्या करेंगे'? उसने जवाब दिया—मैंने सुना है कि रूसी भाषा में भूगोल सबसे उत्तम है सो मैं रूसी भाषा को इस अभिप्राय से पढ़ रहा हूं कि मैं उस भूगोल को पढ़ूं और उसका तर्जुमा अपनी जबान में करूँ ताकि हमारी जबान में भी अच्छा भूगोल हो, और हमारे मुल्क को फायदा पहुंचे। वह फल की इच्छा नहीं रखता था, पर उस बुढ़ापे में भी जो वह दूसरी भाषा के पढ़ने का कड़ा परिश्रम कर रहा था, वह केवल अपने मुल्क के उपकार व फायदे के लिये था। क्या हन्दुस्तानी कभी अपने मुल्क के लिये ऐसा परिश्रम करता, फिर इस बुढ़ापे में? यहां तो मरने का बड़ा भय रहता है। इस मुल्क वालों को अक्सर यह कहते सुनते हैं, 'मरना है किसके लिये करना है'। तो भला हिन्दुस्तान की कैसे उन्नति हो।

यदि कहो कि क्या मालूम है कि ईश्वर खुश होता है या नहीं, सो क्या अभी तक तुम समझ नहीं सके कि ईश्वर का तुम पर कितना कोप हो रहा है? राज्य गया, लक्ष्मी गई, विद्या गई, प्रतिष्ठा गई, बल गया, पौरुष गया, सर्वस्व चला गया, तो भी नहीं समझे, तो अकाल आया, प्लेग आया, हैजा आया, तो क्या अब भी समझ में नहीं आता कि ईश्वर का हम पर कोप रहा है? प्यारों संभलो, अभी सम्हलने का समय है।

परमेश्वर की दृष्टि में सब बराबर हैं, क्योंकि परमेश्वर ने सबको बनाया है। सो यदि हम परमेश्वर को खुश करना चाहें तो हमको चाहिये कि हम प्राणी मात्र से प्रेम करें। भाई को मारने या उसके साथ बैर करने या उसको नफरत करने से बाप कभी खुश

नहीं हो सकता, तब क्या किसी मनुष्य को नफरत करने या नीच समझने से परमेश्वर जो सबका पिता है, कभी खुश हो सकता है? कदापि नहीं, खाली मुंह से यह बात कहते जाना कि हम परमेश्वर को मानते हैं, उनसे प्रेम करते हैं, काफी नहीं है। तुम को चाहिए कि तुम कर्म द्वारा इसका सबूत दो। सबूत यही है कि तुम मनुष्य मात्र से प्रेम करो, प्राणी मात्र से प्रेम करो, जगत मात्र से प्रेम करो, सबको बराबर और अपने ही बराबर समझो। यानि यह ख्याल रखो कि जो कुछ मैं हूं वह वे हैं, और जो कुछ वे हैं, वह मैं हूं, अर्थात् मैं और वह, अलग-अलग कुछ नहीं, किन्तु एक ही हैं, चाहे कोई किसी जाति का हो, किसी देश का हो, किसी रंग का हो, इसकी परवाह मत करो।

एक जापनी जहाज में कुछ हिन्दुस्तानी लड़के सफर कर रहे थे, वे लोग चौथे दर्जे के कमरों में थे, चौथे दर्जे वाले मुसाफिरों के लिये हिन्दुस्तानी लड़कों के मुआफिक खाने का उचित सामान न था, वे लोग भूखे ही रह गये। इतने में एक जापनी लड़के की नजर उन पर पड़ गई, उसको मालूम हुआ कि ये बेचारे हिन्दुस्तानी लड़के भूखे हैं, उस उदार, दयालु जापानी लड़के से रहा न गया, वह फौरन फर्स्ट क्लास (पहले दर्जे के) कमरे में गया, और वहां से फल और मेवे अपने पैसे लगा कर लाया, और उन भूखे हिन्दुस्तानियों के हवाले कर दिये। वह हिन्दुस्तानी लड़के बड़े खुश हुए, और उस मिहर्वान जापानी लड़के को कीमत देने लगे परन्तु जापानी लड़के ने उचित आश्वासन और मधुर वचन द्वारा उनका सत्कार करके कीमत लेने से इनकार कर दिया और फिर इसी तरह चार-पांच रोज तक उनको बराबर मेवे और फल देता गया और कीमत लेने से बराबर इनकार करता गया। जब उनके जुदा होने का समय आया तो हिन्दुस्तानी लड़के उसका शुक्रिया अदा करने लगे, और फिर कीमत देने लगे। उस जापानी लड़के ने लेने से फिर इनकार कर दिया और बड़ी नम्रतापूर्वक उन हिन्दुस्तानी लड़कों से कहने लगा कि प्यारे, मैं दाम तो नहीं लेता मगर एक अर्ज करता हूं, यदि तुम उसको स्वीकार करो, तो हिन्दुस्तानी लड़कों ने कहा, "आप फरमाइये तो"। जापानी उड़के ने कहा, "मेरी प्रार्थना है कि जब तुम लोग हिन्दुस्तान को जाओ तो यह बात न कहना कि जापानी जहाज में हमको कष्ट हुआ था। वहां खाने का प्रबन्ध ठीक नहीं था, क्योंकि तुम लोग ऐसा कहोगे तो हमारे मुल्क की बदनामी होगी"। अहो, यह कैसी मुहब्बत है? कैसा विमल देशानुराग है। वह लड़का न उस जहाज का मालिक था, और न उस जहाज में नौकर था, पर वह जहाज जिस देश का था, वह भी उस देश का रहने वाला था, इसी रिश्ते से उस जहाज की बदनामी को वह अपनी और अपने देश की बदनामी समझता था। यही सच्चा वेदान्त है, इसी को सच्ची 'ब्रह्म विद्या' कहते हैं, क्या किसी हिन्दुस्तानी ने ऐसा वेदान्त सीखा? क्या तुममें से किसी को इस सच्ची ब्रह्म विद्या की प्राप्ति हुई? अहो, यहां की वेदान्त, यहां का ब्रह्म विद्या तो सिर्फ विवाद करने के लिये है, अमल में लाने के लिये नहीं। पर याद रखो, जब तक ऐसी ब्रह्म विद्या अमल में नही लाते तब तक तुम्हारे देश की उन्नति नहीं हो सकती, अफसोस वेदान्त और ब्रह्म विद्या तो हिन्दुस्तान में पढ़ी जाए और जापान और अमेरिका वाले उसको अमल में लाएं।

□□

(देहरादून से प्रकाशित पुराने हिन्दी साप्ताहिक 'गढ़वाली' के जून, 1906 अंक में प्रकाशित स्वामी रामतीर्थ का व्याख्यान)

"आधुनिक भाषाओं के हार की मध्य मणि हिन्दी भारत-भारती होकर विराजती रहे"

- गुरुदेव रवीन्द्र नाथ ठाकुर

हिंदी में वैज्ञानिक अभिव्यक्ति और तकनीकी लेखन

□ प्रो० सूरजभान सिंह

भूमिका

तकनीकी भाषा-रूप कई घटकों से मिलकर बनता है जैसे शब्दावली अभिव्यक्तियां, वाक्य-रूप और पाठगत विन्यास पद्धति। वैज्ञानिक लेखन कई माध्यमों से हम तक पहुंचते हैं। ये मौलिक भी होते हैं, अनूदित भी और अनुकूलित भी। प्राचीन भारत में स्वतंत्रता से पूर्व तथा स्वतंत्रता के बाद भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक लेखन की क्या स्थिति रही है यह हमारे लिए महत्वपूर्ण विषय है। इस लेख में हम इन सब पर चर्चा करेंगे और देखेंगे कि वैज्ञानिक लेखन के सामाजिक, शैक्षिक और भाषागत पक्ष क्या है।

वैज्ञानिक और तकनीकी लेखन के माध्यम

वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य हमें सामान्यत: चार माध्यमों से प्राप्त होता है—

(क) पुस्तकों के माध्यम से

(ख) शोध पत्रों तथा शोध पत्रिकाओं के माध्यम से

(ग) कोशों तथा विश्वकोशों के माध्यम से

(घ) जन-संचार माध्यमों से।

पुस्तकों के माध्यम से

वैज्ञानिक और तकनीकी विचारों को प्रसारित करने का सबसे सशक्त साधन पुस्तकें हैं। मुद्रित रूप में उपलब्ध ज्ञान साहित्य न केवल पीढ़ियों तक सुरक्षित रहता है बल्कि विश्वभर के जिज्ञासुओं को तुरन्त सुलभ भी होता है। बीसवीं सदी में ज्ञान-विज्ञान और टेक्नालॉजी के क्षेत्र में अद्भुत क्रांति आई, उसके फलस्वरूप नए विचारों और नए अन्वेषणों की एक बाढ़-सी आई। यह क्रांति केवल सिद्धांत के स्तर तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि उसने मनुष्य के व्यावहारिक जीवन को भी बहुत गहराई तक छूआ और उसकी जीवन-शैली को प्रभावित किया। इन वैज्ञानिक और तकनीकी विचारों और अनुसंधानों को विश्व के कोने-कोने तक पहुंचाने का सबसे बड़ा श्रेय पुस्तकों को है। सामान्यत: जिस भाषा-समाज में इस नए ज्ञान का विकास होता है उसी समाज में और उसी की भाषा में ये पुस्तकें लिखी जाती हैं। जिस भाषा-समाज में यह भाषा नहीं समझी जाती, वहां इनके अनुवाद प्रकाशित किए जाते हैं। इस प्रकार नवविकसित वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य विश्व के सभी जिज्ञासु समाज में आवश्यकतानुसार प्रसारित होता जाता है।

यह वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य छात्रों के लिए विशेष रूप से लिखी पाठ्य-पुस्तकों के रूप में भी हो सकता है और संदर्भ-ग्रंथ के रूप में भी। पाठ्य-पुस्तकों में सामग्री का चयन अनुस्तरीकरण और प्रस्तुतीकरण विशिष्ट पाठ्यक्रम के आधार पर और छात्र-वर्ग के शैक्षिक स्तर को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। इसमें स्थानीय परिवेश तथा शिक्षण-लक्ष्यों की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए आवश्यक परिवर्तन भी किया जाता है। इसमें एक ही विषय-बिंदु पर एकाधिक मौलिक चिंतकों के विचारों को संकलित कर सामग्री को एक खास व्यवस्था के अंतर्गत संयोजित किया जाता है। संदर्भ-ग्रंथ पाठ्य-पुस्तकों से इस अर्थ में भिन्न होते हैं कि इनमें सामान्यत: मौलिक चिंतकों तथा वैज्ञानिकों के विचार निहित होते हैं। इन पुस्तकों में नई उद्भावनाएं तथा मौलिक विश्लेषण या दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का आग्रह होता है।

कुछ वैज्ञानिक और तकनीकी पुस्तकें सामान्य पाठकों के लिए भी लिखी जाती हैं जिसका उद्देश्य विज्ञान संबंधी जानकारी आम आदमी तक पहुंचाना होता है। इसे सामान्यत: 'लोकप्रिय विज्ञान' की पुस्तकें कहा जाता है। इस कोटि की पुस्तकों की भाषा को कम-से-कम तकनीकी और अधिक से अधिक सरल और बोधगम्य बनाने की कोशिश की जाती है। इस प्रकार का प्रसारपरक वैज्ञानिक लेखन लोकप्रिय पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित होता है।

शोध-पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से

वैज्ञानिक लेखन का दूसरा महत्वपूर्ण माध्यम शोध-पत्र और शोध-पत्रिकाएं हैं। अनुसंधानपरक वैज्ञानिक साहित्य का एक बहुत बड़ा अंश हमें शोध-पत्रों के माध्यम से प्राप्त होता है।

आई-127, नारायणा विहार, नई दिल्ली

शोध-पत्र सामान्यत: संगोष्ठियों में पढ़े जाते हैं या शोध-पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते हैं। शोध-पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री विशेषज्ञों द्वारा विशेषज्ञों के लिए लिखी जाती है और इसलिए इसमें तकनीकी शब्दों और तकनीकी अभिव्यक्तियों का बहुत अधिक प्रयोग होता है। इस प्रकार के लेखन का स्तर काफी लोकप्रिय है।

कोशों तथा विश्वकोशों के माध्यम से

वैज्ञानिक लेखन का दूसरा महत्वपूर्ण माध्यम है विश्वकोश और परिभाषाकोश। पुस्तकों में सूचना की इकाई पाठ होती है, लेकिन विश्वकोश और परिभाषाकोश में सूचना की इकाई शब्द होती है और शब्द अकारादिक्रम में संयोजित होते हैं। परिभाषा कोशों में हर तकनीकी शब्द के बाद उसके अर्थ से संबंधित आवश्यक जानकारी का निचोड़ परिभाषा या व्याख्या के रूप में दिया जाता है। विश्वकोशों में जानकारी या सामग्री की मात्रा अधिक होती है। यह सामग्री संक्षिप्त लेखों के रूप में संयोजित की जाती है। परिभाषा कोशों में सामग्री परिभाषाओं, सूत्रों और लक्षणों के रूप में दी जाती है, इसलिए इसकी सामग्री का कलेवर सीमित होता है। अंग्रेजी में हर विषय के परिभाषा कोश आज उपलब्ध हैं। हिन्दी में वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग के विभिन्न ज्ञान-विज्ञान विषयों पर प्रकाशित 40 परिभाषा कोश उपलब्ध है।

जन-संचार माध्यमों से

वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य का लेखन समाचार-पत्रों तथा पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त रेडियो तथा टेलीविजन के माध्यम से भी प्राप्त होता है। यद्यपि इसकी मात्रा अपेक्षाकृत अधिक नहीं होती। रेडियो तथा टेलीविजन में जिन पाठों का वाचन किया जाता है वे लेखन के अंतर्गत ही आते हैं। जनसंचार माध्यमों से प्रसारित वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य की भाषा और शैली सरल रखी जाती है और इसका प्रस्तुतीकरण रोचक रखा जाता है जिससे आम जनता को वह ग्राह्य हो सके। इसी प्रकार तकनीकी विषयों को भी यथासंभव गैर-तकनीकी और रोचक प्रसंगों के साथ जोड़कर प्रस्तुत करने का आग्रह होता है। इसका उद्देश्य भी एक प्रकार से विज्ञान का लोकप्रसार ही है।

वैज्ञानिक और तकनीकी लेखन का स्वरूप

आपने ऊपर उन माध्यमों के बारे में पढ़ा जिनसे वैज्ञानिक साहित्य हमारे पास तक पहुंचता है, लेकिन यह ध्यान रहना चाहिए कि सभी वैज्ञानिक साहित्य हमारे पास अपने मूल रूप में नहीं पहुंचता। मौलिक चिंतकों तथा विशेषज्ञों के द्वारा रचित वैज्ञानिक या तकनीकी साहित्य मुख्यत: तीन रूपों में हमारे पास पहुंचता है—मौलिक, अनुदित और अनुकूलित ।

मौलिक लेखन

वैज्ञानिक लेखन का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत मौलिक लेखन है। मौलिक पुस्तकों का लेखक हमेशा विषय का विशेषज्ञ होता है क्योंकि मूल चिंतक के रूप में वह अपनी उद्‌भावनाओं तथा खोजों को लिपिबद्ध करता है। कुछ वैज्ञानिक और विशेषज्ञ इन मौलिक चिंतन धाराओं और अनुसंधानों की व्यवस्था, विश्लेषण या समीक्षा करते हैं। कुछ विशेषज्ञ आवश्यकता के अनुसार इनमें अतिरिक्त सामग्री जोड़कर और जहां जरूरी हो, संशोधन-परिवर्धन कर स्वत:पूर्ण पुस्तकों का प्रणयन करते हैं। इस प्रकार किसी भी विषय पर वैज्ञानिक चिंतन, विश्लेषण और भाषा का एक पूरा साहित्य विकसित हो जाता है। प्राय: यह समस्त प्रक्रिया मूलत: उसी भाषा में सम्पन्न होती है जिसमें मूल वैज्ञानिक लेखन शुरू हुआ है। इसके बाद ही अन्य भाषाओं में आवश्यकतानुसार उनका अनुवाद, या कभी-कभी विवेचन शुरू होता है।

मूल लेखक या वैज्ञानिक जिस भाषा में सर्वप्रथम अपना साहित्य लिखता है वही लेखन प्रामाणिक माना जाता है। समस्त अनुवाद इसी कृति पर आश्रित होता है, यद्यपि कई बार मूल ग्रंथों के अनुवाद के आधार पर भी पुन: दूसरी भाषा में अनुवाद कार्य हुए हैं। उदाहरण के लिए भारत में जर्मन, रूसी, फ्रांसीसी, स्पेनिश आदि भाषाओं के वैज्ञानिक साहित्य का जो अनुवाद भारतीय भाषाओं में मिलता है वह अधिकांशत: मूल भाषा से अंग्रेजी में हुए अनुवाद का अनुवाद होता है। इसमें संदेह नहीं कि दोहरे अनुवाद में कभी-कभी मूल पुस्तक की प्रामाणिक सूचना सही प्रकार व्यक्त नहीं हो पाती। कई वैज्ञानिक आज अपनी भाषा के अलावा अन्य विदेशी भाषाओं पर भी अधिकार रखते हैं। इस स्थिति में कभी-कभी वैज्ञानिक अपने मूल लेखन का अनुवाद स्वयं कर लेता है। यदि कोई वैज्ञानिक या चिंतक अंतर्राष्ट्रीय भाषा पर पर्याप्त अधिकार रखता हो तो वह कभी-कभी अपनी कृतियों के व्यापक प्रसार को दृष्टि में रखते हुए अपनी मातृभाषा से भिन्न उस अंतर्राष्ट्रीय भाषा में भी अपनी मूल पुस्तक लिखता है।

मौलिक वैज्ञानिक लेखन न केवल वैज्ञानिक चिंतन, ज्ञान विज्ञान तथा शोध कार्य को आगे बढ़ाता है बल्कि भाषा के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है। नए विचारों, नई संकल्पनाओं तथा नई खोजों के लिए वैज्ञानिक नए शब्दों और अभिव्यक्तियों का निर्माण करता है, सूक्ष्म वैज्ञानिक विचारों को वाणी देने के लिए वह उपयुक्त अर्थगर्भित शैली का विकास

करता है, सामग्री को संयोजित तथा व्यवस्थित करने की विशिष्ट प्रणाली विकसित करता है तथा सामग्री को कम-से-कम शब्दों में और अधिक-से-अधिक स्पष्टता के साथ प्रस्तुत करने के लिए सूत्र, फार्मूला, प्रतीकता, विशिष्ट चिह्न जैसी अनेक युक्तियों का विकास करता है। इस प्रकार वैज्ञानिक के हाथों में ज्ञान और भाषा दोनों का विकास एक साथ होता जाता है और हर विषय या शास्त्र अपने लेखन के लिए खास तरह की विधा, शैली, प्रयुक्ति और भाषा-रूप का विकास करता चला जाता है। जब इन्हीं विशिष्ट रूपों को दूसरी भाषा में अनुवाद के माध्यम से प्रस्तुत करने की बात आती है तो कई समस्याएं उत्पन्न हो जाती है। मूल भाषा में सतत प्रयोग के कारण इन तकनीकी रूपों की जो दीर्घ परंपरा स्थापित हो चुकी है वह अनुवाद की भाषा में प्रयोग परंपरा के अभाव में संभव नहीं हो पाती। फलस्वरूप अनूदित वैज्ञानिक लेखन में कभी-कभी एक प्रकार की कृत्रिमता दिखाई देने लगती है। इसके अलावा लक्ष्य भाषा में मानक रूपों के स्थिर न होने के कारण शब्दावली प्रयोग संबंधी विविधता या अराजकता भी दिखाई देने लगती है। यही कारण है कि मौलिक लेखन से ही वास्तव में भाषा का सहज और प्राकृतिक विकास होता है और प्रचलन में रहने के कारण तकनीकी शब्दावली या तकनीकी भाषा-रूप स्वीकार्य और ग्राह्य होते हैं। इसके विपरीत अनुवाद की भाषा में तकनीकी शब्दों और रूपों के संबंध में उनके अबोधगम्य, अपरिचित या कठिन होने की शिकायत आम बात होती है।

अनूदित लेखन

आज कोई भी देश केवल अपने द्वारा विकसित वैज्ञानिक ज्ञान के सहारे ही अपना सर्वांगीण विकास नहीं कर सकता। अन्य विकसित देशों में विज्ञान और टेक्नोलॉजी के क्षेत्रों में उपलब्ध ज्ञान को समझना और ग्रहण करना उसके लिए आवश्यक हो गया है। उसके लिए उसे अन्य विकसित राष्ट्रों की भाषा में लिखे ज्ञान-साहित्य को अपनी भाषा में रूपांतरित करना जरूरी हो जाता है।

आज विश्व के विभिन्न देशों में ज्ञान-विज्ञान और टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में जिस तीव्र गति से अनुसंधान और प्रयोग हो रहे हैं उसके रहते कोई भी देश अपने को विज्ञान के क्षेत्र में स्वनिर्भर नहीं महसूस करता। अमरीका, ब्रिटेन, जर्मनी, जापान और रूस आदि विकसित देशों में भी नई-से-नई वैज्ञानिक और तकनीकी जानकारी हासिल करने की एक प्रकार की होड़ लगी है। फलस्वरूप अनेक राष्ट्र दूसरी भाषाओं में प्रकाशित नवीनतम वैज्ञानिक साहित्य को अपनी भाषाओं में अनूदित करवा कर अपने ज्ञान को अद्यतन रखने की कोशिश करते हैं। ऐसी स्थिति में अनूदित वैज्ञानिक साहित्य की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है।

कुछ संपन्न राष्ट्रों ने (जैसे, अमरीका, कनाडा, जापान, फ्रांस आदि) कुछ सीमित तकनीकी व्यवहार क्षेत्रों को लेकर कंप्यूटर अनुवाद प्रणाली का विकास किया है। लेकिन अनुवाद में पूर्ण परिपक्वता न होने के कारण बाद में मानव अनुवादक को इसका पुनरीक्षण तथा संपादन करना पड़ता है। कंप्यूटर प्रणाली से जिस प्रकार का अनुवाद आज कुछ क्षेत्रों में उपलब्ध है उसे एक प्रकार का 'सूचना अनुवाद' ही कहा जा सकता है जिसमें किसी पाठ (टैक्स्ट) में निहित सूचना या संदेश को संपादित भाषा-रूप में एक भाषा से दूसरी भाषा में अंतरित कर दिया जाता है। भाषा, शैली तथा अभिव्यक्ति की सुगढ़ता इस कंप्यूटर अनुवाद में पूरी तरह नहीं आ पाती। बाद में मानव अनुवादक-संपादक ही अनूदित पाठ की भाषा का परिमार्जन कर प्रकाशन या संप्रेषण के योग्य बनाता है।

कंप्यूटर के माध्यम से अनुवाद की प्रणाली का आज कुछ राष्ट्रों में जो विकास किया जा रहा है उसके पीछे वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद ही एक प्रमुख ध्येय है। गैर तकनीकी या साहित्यिक कृतियों का अनुवाद कंप्यूटर प्रणाली द्वारा सफलतापूर्वक संपन्न करना आज संभव नहीं है क्योंकि साहित्य में लक्षणा तथा व्यंजना का भरपूर प्रयोग होता है। इसके अलावा कई शब्दों के अर्थ संदर्भ, संस्कृति की पूर्व जानकारी पर आश्रित होते हैं। कंप्यूटर के लिए आज इस प्रकार की लाक्षणिक भाषा को समझकर दूसरी भाषा में समानार्थक अभिव्यक्ति प्रदान करना संभव नहीं है। इसके विपरीत तकनीकी और वैज्ञानिक भाषा में लाक्षणिकता नहीं होती। इसकी भाषा पूर्णत: अभिधात्मक होती है। इस हर तकनीकी शब्द का एक ही अर्थ होता है। अत: कंप्यूटर अनुवाद के लिए सबसे उपयुक्त तथा वैज्ञानिक साहित्य ही माना जाता है। उसमें भी एक सीमित विषय क्षेत्र में प्रयोग में आने वाली भाषा को लेकर ही कंप्यूटर अनुवाद का कार्य अधिक सफल हुआ है। अत: समस्त विज्ञान विषयों के लिए एक ही अनुवाद भाषा-प्रणाली विकसित करने के बजाय भाषा-व्यवहार के अलग-अलग तकनीकी क्षेत्रों के लिए अलग-अलग कंप्यूटर अनुवाद व्यवस्था करना अपेक्षाकृत अधिक व्यावहारिक है, जैसे सरकारी कार्यालय की भाषा, बैंकिंग की भाषा, अस्पताल में प्रयोग में आने वाली भाषा, भौतिकी के किसी एक विषय क्षेत्र में प्रयुक्त भाषा, टेलीविज़न इंजीनियरी की भाषा, इलेक्ट्रानिकी के किसी एक क्षेत्र की भाषा आदि।

वैज्ञानिक अनुवाद आज विश्व में दो रूपों में देखने को मिलता है। एक रूप वह है जहां कार्यरत वैज्ञानिक नए ज्ञान को हासिल करने के लिए अन्य भाषाओं में प्रकाशित शोधपत्रों तथा पुस्तकों का तत्काल अनुवाद चाहते हैं। अनुवाद का दूसरा रूप वह है जो ऐसी भाषाओं में किया जाता है जिससे वैज्ञानिक लेखन की परंपरा पूर्णत: विकसित नहीं है और जहां उस भाषा को वैज्ञानिक साहित्य की दृष्टि से समृद्ध करने के उद्देश्य से अन्य देशों में विकसित और रचित वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद करवाया जाता है। कार्यरत वैज्ञानिकों की मांग पर जो अनुवाद कार्य हाथ में लिया जाता है उसका उद्देश्य होता है वैज्ञानिकों को अन्य भाषाओं में प्रकाशित नवीनतम ज्ञान से परिचित कराना। जिन वैज्ञानिकों के लिए यह अनुवाद किया जाता है वे अनूदित सामग्री की मूल भाषा से परिचित नहीं होते। उनकी अपनी भाषा में भी वैज्ञानिक लेखन की परंपरा हो सकती है। जापानी, रूसी, जर्मन, फ्रांसीसी तथा अंग्रेजी आदि भाषाओं में मुख्यत: इसी कोटि का अनुवाद अधिकांशत: होता है। भारत में दिल्ली स्थित INSDOC नाम की संस्था भारतीय वैज्ञानिकों की मांग पर विदेशी भाषाओं से अंग्रेजी में वैज्ञानिक अनुवाद का कार्य करती हैं। इस संस्था में वैज्ञानिक अनुवाद का कार्य विभिन्न संस्थाओं तथा वैज्ञानिकों की मांग पर ही किया जाता है।

कुछ भाषाओं में वैज्ञानिक अनुवाद का कार्य मुख्यत: इस उद्देश्य से हाथ में लिया जाता है कि उन भाषाओं में यथोचित वैज्ञानिक साहित्य उपलब्ध हो जिससे उच्च शिक्षा में माध्यम के रूप में उनका प्रयोग संभव हो सके। भारत में वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद के पीछे भी प्रमुख धारणा यह थी कि भारतीय भाषाओं को विज्ञान की माध्यम भाषा के रूप में विकसित किया जाए। इसमें विज्ञान तथा तकनीकी विषयों में इतनी पुस्तकें उपलब्ध हो सकें कि छात्रों को हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से अध्ययन करने में असुविधा न हो। भले ही इस प्रकार अनूदित या रचित विज्ञान साहित्य की मांग प्रारंभ में उतनी अधिक न हो। इन पुस्तकों के उपलब्ध होने से धीरे-धीरे इनका प्रयोग होगा और मांग बढ़ेगी। इस प्रकार के अनुवाद कार्य के पीछे भाषा में वैज्ञानिक लेखन को प्रोत्साहन देने का भाव अधिक मुखर रहता है।

स्मरण रहे कि वैज्ञानिक अनुवाद का कार्य एक जटिल प्रक्रिया है और इसके साथ जुड़ी कुछ समस्याएं इस कार्य को कुछ कठिन बना देती हैं। भारत के संदर्भ में वैज्ञानिक अनुवाद की प्रमुख समस्याएं हैं :

(1) ऐसे अनुवादकों की कमी जो अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ वैज्ञानिक विषय और हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान रखते हों।

(2) विदेशी पुस्तकों के अनुवाद के संदर्भ में कापीराइट प्राप्त करने की समस्या। कापीराइट की राशि विदेशी मुद्रा में देनी पड़ती है और एक निर्धारित समय-सीमा के भीतर अनुवाद प्रकाशन का कार्य पूरा कर लेना होता है जो कई बार सम्भव नहीं हो पाता।

(3) वैज्ञानिक अनुवादकों को भारत में यथोचित पारिश्रमिक नहीं मिल पाता। फलस्वरूप प्रतिभाशाली विद्वान या अनुवादक इस कार्य की ओर आकर्षित नहीं होते।

अनुकूलित लेखन

आज वैज्ञानिक और तकनीकी क्षेत्रों में प्रतिदिन इतना विपुल साहित्य प्रकाशित हो रहा है कि किसी भी एक व्यक्ति के पास एक ही विषय पर लिखे गए नवीन साहित्य को पूरी तरह से पढ़ने का समय नहीं है। वैज्ञानिक ज्ञान स्वभावत: सूक्ष्मता और विशेषता की ओर अग्रसर होता है। किसी भी पुस्तक में सामान्यत: कुछ खास अंश ही विशेषज्ञ की निकट रूचि का होता है। पुस्तक के विवेचन का बहुत बड़ा अंश विश्लेषणात्मक आंकड़ों से संबद्ध हो सकता है या उसमें अन्य रूचि के विषयों का विवेचन शामिल हो सकता है। दूसरे शब्दों में, समस्त ग्रंथ या लेख में से कुछ सामग्री ही विशेषज्ञ की रूचि का हो सकता है। अत: समय के अभाव, साहित्य की विपुलता और पाठकों की निजी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिक साहित्य के महत्वपूर्ण पक्षों के सार-संक्षेप के रूप में संपादित या संकलित करके भी प्रस्तुत किया जाता है। 'साइंस डाइजेस्ट', लेख सारांश, चयनिकाएं, संकलित लेख संग्रह, विश्वकोश तथा लोकप्रिय ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकों के रूप में अलग-अलग तरह के पाठकों की ज़रूरतों के अनुसार जो सामग्री आज उपलब्ध है । वह सार-संक्षेप के रूप में वैज्ञानिक सामग्री को अनुकूलित करके प्रस्तुत करने का ही एक प्रयत्न है।

यह जरूरी नहीं कि वैज्ञानिक सामग्री को मूल ग्रंथ की भाषा में ही अनुकूलित या संपादित करके प्रस्तुत किया जाए। दूसरी भाषा में भी यह सामग्री संशोधित या अनुकूलित रूप में प्रस्तुत की जा सकती है। हर विवेचन देशकाल से बाधित होता है, अत: यदि किसी विवेचन में देशकाल का परिवेश हमारे परिवेश से भिन्न है तो सामग्री को अपने संगत परिवेश में डालकर प्रस्तुत किया जा सकता है। सामान्यत: भारतीय पाठ्य पुस्तकों में जो वैज्ञानिक सामग्री दी जाती है, उसमें विभिन्न स्रोतों से

उपलब्ध सामग्री को काट-छांट कर तथा संगत परिवेश प्रदान कर कथ्य को सुबोध ढंग से प्रस्तुत करने का आग्रह रहता है।

प्राचीन भारत में वैज्ञानिक लेखन

जिस देश में किसी विषय पर मौलिक ज्ञान का विकास होता है उसी देश में उस विषय से संबंधित लेखन की परंपरा विकसित होती है। प्राचीन भारत में दर्शन, अध्यात्म, मीमांसा, धर्म, साहित्यशास्त्र, काव्य शास्त्र, व्याकरण, भाषाविज्ञान आदि विषयों पर मौलिक कार्य हुए। फलस्वरूप इन विषयों पर लेखन की हमारी दीर्घ परंपरा है। इन विषयों के निरूपण के लिए संस्कृत में उपयुक्त शास्त्रीय शब्दावली, अभिव्यक्ति तथा वर्णन-शैली का विकास हुआ। वही शैली भारतीय भाषाओं में भी विरासत के रूप में हमने ग्रहण की।

जहां तक वैज्ञानिक लेखन का प्रश्न है, भारत में इनकी परंपरा एक क्षीण धारा के रूप में ही हमें मिलती है। वस्तुत: आधुनिक अर्थ में वैज्ञानिक लेखन की परंपरा पश्चिम की औद्योगिक क्रांति के बाद और विशेषत: 18वीं तथा 19वीं शताब्दी के दौरान शुरू होती है जो बीसवीं शताब्दी में अपनी चरम सीमा में पहुँचती है।

भारत के प्राचीन ग्रंथों में जहां कहीं भी विज्ञान तथा चिकित्सा से संबंधित कुछ वर्णन मिलता है, उसका स्वरूप आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली तथा तार्किकता से भिन्न है। फिर भी अथर्ववेद में कई रोगों के लक्षणों का वर्गीकरण करने का प्रयत्न हमें मिलता है। ईसा युग में प्रारंभ में आयुर्विज्ञान से संबंधित दो महत्वपूर्ण पुस्तकें मिलती हैं (1) सुश्रुत संहिता (400-100 ई. पू.) और (2) चरक संहिता (100 ई.)। 'सुश्रुत संहिता' में शल्य (या सर्जरी) से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारी है। 'चरक संहिता' में उपचार औषधियों की मूल जानकारी है। इसके अलावा गणित और ज्योतिष के क्षेत्र में संस्कृत 100 ई. के दौरान अपने चरम उत्कर्ष पर था। इस काल में गणित, न्याय तथा बीजगणित पर अनेक ग्रंथ हमें मिलते हैं, जैसे वाराह मिहिर की 'पंच सिद्धांतिका' (505 ई.) और भास्कर द्वितीय का 'सिद्धांत शिरोमणि' (1150 ई.)।

इसी परंपरा में शास्त्रीय पद्धति पर लिखी तीन महत्वपूर्ण पुस्तकों की भी गणना प्राय: की जाती है जो वैज्ञानिक लेखन के शुद्ध दृष्टांत न होते हुए भी भारत में प्रचलित शास्त्रीय विवेचन पद्धति के नमूने हैं। इनसे हमें पता चलता है कि नियमों, सूत्रों तथा व्याख्याओं को कैसे प्रस्तुत किया जाना चाहिए। वे हैं :

(1) पाणिनि का 'अष्ठाध्यायी' (700-500 ई. पू.) जिसमें संस्कृत के संपूर्ण व्याकरण को थोड़े से सूत्रों और नियमों के भीतर बांधकर अत्यंत वैज्ञानिक रीति से प्रस्तुत किया गया है।

(2) कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' (300 ई. पू.), जिसमें राजनीति, अर्थशास्त्र तथा विज्ञान-नीतियों के संबंध में नियमों का प्रतिपादन किया गया है।

(3) वात्स्यायन का 'कामसूत्र' (तिथि अनिश्चित), जिसमें मनुष्य के सामाजिक तथा शारीरिक संबंधों के बारे में वैज्ञानिक जानकारी दी गई है।

संस्कृत में विज्ञान-लेखन में मोटे रूप से वही शैली अपनाई गई है जो दर्शनशास्त्र की थी। कथ्य को तीन रूपों में प्रस्तुत करने की परंपरा रही है—सूत्र, भाष्य और श्लोक। **सूत्र** अत्यंत संक्षिप्त सूक्तियां हैं जिनमें छोटे-छोटे वाक्यों में मूल सिद्धांतों को बांधकर रखा जाता है। **भाष्य** में सूत्रों की विस्तृत व्याख्या या समीक्षा होती है जो सामान्यत: गद्य में होती है। ये भी आकार में संक्षिप्त होते हैं लेकिन सूत्र की तुलना में अधिक बड़े होते हैं। छंदबद्ध होने के कारण श्लोकों को स्मरण करके रखना अधिक प्रयोग किया जाए और दर्शन आदि में सूत्रों का। विज्ञान लेखन में समान्यत: 'आर्य' नामक छंद का प्रयोग किया गया है।

गणित की भाषा कैसी हो, इस संबंध में भास्कर द्वितीय ने 'गोलाध्याय' में लिखा है कि गणित की भाषा अधिक कठिन नहीं होनी चाहिए और न अनावश्यक रूप से विवरणात्मक होनी चाहिए। मूल सिद्धांतों की सही-सही व्याख्या की जानी चाहिए। भाषा में स्पष्टता और गरिमा होनी चाहिए। सिद्धांतों की व्याख्या करते समय पर्याप्त उदाहरण दिए जाने चाहिए। आप अगर गौर से देखें तो पाएंगे कि गणित की भाषा के संबंध में जो बातें भास्कर द्वितीय ने 12वीं सदी में कही थीं वे आज भी पूर्णत: सत्य हैं।

भारत में स्वतंत्रता पूर्व वैज्ञानिक लेखन

भारत में वैज्ञानिक लेखन की परंपरा दो धाराओं के रूप में देखी जा सकती है—एक, अंग्रेजी माध्यम से और दूसरा, भारतीय भाषाओं के माध्यम से। स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय वैज्ञानिक सामान्यत: अंग्रेजी के माध्यम से ही अपना तकनीकी लेखन-कार्य करते थे, क्योंकि तब उच्च शिक्षा में माध्यम के रूप में भारतीय भाषाओं की भूमिका नगण्य-सी थी।

अंग्रेजी में प्रारंभिक वैज्ञानिक लेखन

भारत में आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान की सबसे पुरानी पत्रिका 'एशिएटिक रिसर्चेज़' (1783-1839) थीं, जो बाद में

बंगाल की एशिएटिक सोसाइटी की पत्रिका (1832) में परिणत कर दी गई। जगदीश चंद्र बसु का भौतिकी पर पहला शोध-पत्र इसी पत्रिका में 1895 में प्रकाशित हुआ था। दूसरी महत्वपूर्ण वैज्ञानिक पत्रिका इंडियन जर्नल ऑफ फिज़िक्स 1928 में प्रकाशित हुई। इसी पत्रिका में 1978 में 'प्रकाश के विकिरण' विषय पर सी.बी. रमन का वह प्रसिद्ध शोध प्रकाशित हुआ जिस पर उन्हें बाद में नोबल पुरस्कार मिला। इसी प्रकार जीव-विज्ञान, भूगर्भ-विज्ञान आदि कई विषयों पर अनुसंधान पत्रिकाएं निकलीं लेकिन बाद में बंद हो गई।

हिंदी में प्रारंभिक वैज्ञानिक लेखन

स्वतंत्रता से पूर्व हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक लेखन कार्य नगण्य-सा ही रहा। कई विद्वानों ने भारतीय भाषाओं में वैज्ञाकि पुस्तकें लिखने का कार्य हाथ में लिया, लेकिन उपयुक्त पारिभाषिक शब्दों के अभाव में वे इस कार्य को आगे नहीं बढ़ा पाए। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि पुस्तक लिखने से पहले भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का निर्माण किया जाना चाहिए। अत: इस समय जिन वैज्ञानिकों ने भी इस दिशा में कुछ लिखने का फुटकर प्रयत्न किया, उन्होंने स्वयं पारिभाषिक शब्दावली का भी निर्माण करना शुरू किया। लेकिन बहुत जल्द यह बात स्पष्ट हो गई कि शब्दावली का निर्माण करना और उसे मानक रूप प्रदान करना अपने में अत्यंत जटिल और व्यापक कार्य है जो कम-से-कम व्यक्तिगत स्तर पर संभव नहीं। यह समस्त कार्य कुछ निश्चित सिद्धांतों के आधार पर और कोश निर्माण की मूलभूत मान्यताओं के अन्तर्गत किसी संस्थागत प्रयास से ही संभव है। अत: 1961 में वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना कर शब्दावली निर्माण का पूरा दायित्व उसे सौंप दिया गया।

भारत में सर्वप्रथम 1888 के आसपास प्रो. टी. के. गज्जर के मार्गदर्शन में गुजराती की पांच वैज्ञानिक पुस्तकें प्रकाशित हुई। 1909 में हिंदी में महेश चरण सिंह की पुस्तक 'रसायन शास्त्र' प्रकाशित हुई। इसी प्रकार बंगीय साहित्य परिषद ने बंगला में और नागरी प्रचारिणी सभा ने हिंदी में कुछ वैज्ञानिक पुस्तकें और तकनीकी शब्द संग्रह निकाले। इस प्रकार स्वतंत्रता से पूर्व हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में जो भी वैज्ञानिक पुस्तकें लिखी गईं उन्हें प्रयोग या प्रयास ही कहा जाना चाहिए, किसी सुस्थापित लेखन परंपरा का अंग नहीं। इसमें यह संदेश छिपा है कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक लेखन की आवश्यकता है और जो सामान्य पाठक अंग्रेजी से परिचित नहीं, उसे उसी की भाषा में विज्ञान का ज्ञान प्रदान करना सामाजिक दायित्व भी है और समय की मांग भी।

भारत में स्वतंत्रता के बाद वैज्ञानिक लेखन

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में वैज्ञानिक लेखन को प्रभावित करने वाली कई प्रकार की गतिविधियां एक साथ हुईं—

(क) उच्च स्तर पर यथासंभव भारतीय भाषाओं को विज्ञान की शिक्षा का माध्यम बनाने का संकल्प।

(ख) विद्वानों द्वारा व्यक्तिगत स्तर पर और वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा संस्थागत स्तर पर वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली का निर्माण तथा विकास।

(ग) माध्यम परिवर्तन को सुगम बनाने के लिए विश्वविद्यालय स्तर की वैज्ञानिक और तकनीकी पाठ्य-पुस्तकों और मानक ग्रंथों का निर्माण तथा अनुवाद।

(घ) सामान्य पाठकों तथा ज्ञान-विज्ञान की जानकारी उन्हीं की भाषाओं में सुलभ करने के उद्देश्य से हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में लोकप्रिय वैज्ञानिक पुस्तकों का निर्माण।

(ङ) भारतीय भाषाओं में मौलिक अनुसंधान तथा उच्च वैज्ञानिक ज्ञान को प्रोत्साहन देने के लिए वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन।

जब तक उच्च शिक्षा का माध्यम हिंदी या भारतीय भाषा बनाने का नीति-निर्णय शासकीय या वैधानिक स्तर पर नहीं था तब तक भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक लेखन के लिए कोई भविष्य निश्चित नहीं था। दूसरी ओर अगर वैज्ञानिक विषयों के अध्ययन-अध्यापन के लिए पर्याप्त मात्रा में भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य उपलब्ध न हो तो माध्यम-परिवर्तन भी संभव नहीं था। अत: भारत सरकार ने जहां एक ओर 1961 में
तकनीकी शब्दावली के निर्माण तथा मानकीकरण के लिए वै[illegible]
तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की, [illegible]
ओर उसने भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक तथा तक[illegible]
पुस्तकों के निर्माण की एक विराट योजना भी ब[illegible]
योजना के अंतर्गत वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दाव[illegible]
के तत्वावधान में भारत सरकार ने 18 हिंदी तथा [illegible]
राज्यों को अपनी-अपनी भाषाओं में विश्वविद्याल[illegible]
वैज्ञानिक और तकनीकी पाठ्य पुस्तकें तैयार कर प्रका[illegible] [illegible]र्न

के लिए एक-एक करोड़ रुपए का अनुदान दिया। फलस्वरूप राज्य सरकारों ने 1969-70 के दौरान अपने यहां एक-एक ग्रंथ निर्माण अकादमी या बोर्ड की स्थापना की। इनका कार्य यह था कि वे ज्ञान-विज्ञान तथा टैक्नालॉजी के विभिन्न विषयों पर विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम के अनुसार अपनी-अपनी भाषाओं में पाठ्य पुस्तक तथा संदर्भ ग्रंथों का निर्माण करें। इंजीनियरी, आयुर्विज्ञान और कृषि विषयों में आवश्यक पाठ्य पुस्तकें निर्मित करने का दायित्व वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग को सौंपा गया।

तब से लेकर अब तक आयोग तथा विभिन्न अकादमियों ने मिलकर भारतीय भाषाओं में लगभग 13,000 पुस्तकें प्रकाशित की हैं, जिनका संबंध विज्ञान, इंजीनियरी सामाजिक विज्ञान तथा मानविकी विषयों में से है इनमें से केवल हिन्दी पुस्तकों की संख्या 3000 से ऊपर है।

यह ध्यान रखने की बात है कि पुस्तकों का निर्माण अंतत: मांग और पूर्ति के सिद्धान्त पर निर्भर करता है। केवल सरकारी संरक्षण या सहायता से ही यह कार्य संपन्न नहीं होता। सरकार को प्रारंभ में इसलिए हस्तक्षेप करना पड़ा कि पर्याप्त मांग न होने के कारण प्राइवेट प्रकाशक वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य के प्रकाशन में रुचि नहीं लेते थे। यह सोचा गया कि एक बार शासकीय सहायता से आवश्यक मात्रा में वैज्ञानिक साहित्य के उपलब्ध हो जाने के बाद माध्यम परिवर्तन संभव हो सकेगा और भारतीय भाषाओं की पुस्तकों की मांग बढ़ेगी और फलस्वरूप प्राइवेट प्रकाशक इन वैज्ञानिक विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित करने लगेंगे। जहां तक हिंदी में वैज्ञानिक लेखन का प्रश्न है, आयुर्विज्ञान, इंजीनियरी और उच्च विज्ञान को छोड़कर शेष विषयों पर हिंदी की वैज्ञानिक और तकनीकी पुस्तकें आज काफी बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं। हिंदी भाषी राज्यों में आज स्नातक स्तर पर वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य मांग और पूर्ति के आधार पर सरकारी तथा प्राइवेट दोनों स्तरों पर निर्मित हो रहा है।

वैज्ञानिक लेखन का सामाजिक, शैक्षिक तथा भाषिक पक्ष

वैज्ञानिक लेखन के प्रश्न को आप तीन स्तरों पर देख सकते हैं—सामजिक, शैक्षिक तथा भाषिक।

सामाजिक पक्ष

विज्ञान का अध्ययन सिद्धांत तथा अनुप्रयोग दोनों स्तरों पर किया जाता है। हर सैद्धांतिक अनुसंधान अंतत: किसी न किसी रूप में उसके अनुप्रयोग से जुड़ा है। इसे यो भी कह सकते हैं कि विज्ञान का अंतिम लक्ष्य मनुष्य तथा समाज के लिए उपयोगी होता है। इसके अलावा देश के नीति-निर्धारकों का यह भी आग्रह है कि हर व्यक्ति में सोच का वैज्ञानिक तरीका विकसित हो और उसे यथासंभव वैज्ञानिक जानकारी दी जाए। इसके लिए यह जरूरी है कि वैज्ञानिक विषयों पर ऐसी पुस्तकें तथा लेख लिखे जाएं जो सामान्य पाठक के लिए बोधगम्य हों। यह वैज्ञानिक लेखन का प्रसारात्मक पक्ष है। भारत में अंग्रेजी के माध्यम से विज्ञान की जानकारी अंग्रेजी जानने वाले विशेषज्ञों और वैज्ञानिकों को तो दी जा सकती है, लेकिन आम जनता को उन्हीं की भाषाओं के माध्यम से ही यह जानकारी दी जा सकती है। इसीलिए हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में पिछले एक-दो दशकों से लोकप्रिय वैज्ञानिक लेखन की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। एक सीमा तक भारत सरकार ने भारतीय भाषाओं में पाठ्य पुस्तकों के साथ-साथ लोकप्रिय विज्ञान की पुस्तकों के निर्माण तथा प्रकाशन के कार्य को भी प्रोत्साहित किया।

शैक्षिक पक्ष

भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक लेखन का एक शैक्षिक पक्ष भी है। विश्व के सभी शिक्षाविद् इस बात से सहमत हैं कि शिक्षा का सर्वोत्तम माध्यम छात्र की अपनी भाषा है। छात्र की प्रतिभा और सृजनात्मकता का सम्यक् विकास उसकी अपनी मातृभाषा के माध्यम से ही संभव है। 1968 की कोठारी शिक्षा रिपोर्ट में भी इस बात को दोहराया गया है कि भारत में शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाएं होनी चाहिए। स्कूल स्तर पर त्रिभाषा सूत्र को लागू करने के पीछे यही भाव प्रमुख था। इस सूत्र के अनुसार मोटे रूप में स्कूल पर छात्र को चरणबद्ध रूप से तीन भाषाएं पढ़नी होती हैं—

(क) छात्र की अपनी मातृभाषा

(ख) हिंदी (या अन्य भारतीय भाषा)

(ग) अंग्रेजी (या कोई विदेशी भाषा)

उच्च शिक्षा के संदर्भ में रिपोर्ट में यह सिफारिश है कि भारतीय भाषाओं को उत्तरोत्तर विश्वविद्यालय शिक्षा का माध्यम बनाया जाए जिसमें विज्ञान और तकनीकी विषय भी शामिल है। माध्यम परिवर्तन की यह समस्त प्रक्रिया इस समय संक्रांति काल में है। कुछ बड़े शहरों को छोड़कर समस्त देश में स्कूल स्तर तक की शिक्षा अधिकांशत: छात्र की उनकी अपनी भाषाओं में दी जा रही है। जहां तक उच्च शिक्षा का प्रश्न है, अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं दोनों के माध्यम से शिक्षा का प्रावधान है लेकिन उच्च वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा में अंग्रेजी का प्रयोग

अधिक है। सरकार का यह संकल्प है कि धीरे-धीरे ज्ञान-विज्ञान तथा टेक्नोलाजी के क्षेत्र में भी भारतीय भाषाओं का प्रयोग किया जाए। आज भारतीय भाषाओं में उपलब्ध वैज्ञानिक लेखन का एक बहुत बड़ा अंश इसी शैक्षिक उद्देश्य से प्रेरित है। उदाहरण के लिए हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में विश्वविद्यालय स्तर के सभी विषयों पर ग्रंथ निर्माण की जो विशाल योजना केन्द्र तथा राज्य सरकारें क्रियान्वित कर रही हैं, उनके पीछे भी यही उद्देश्य है।

4.3 भाषिक पक्ष

मोटे रूप में वैज्ञानिक लेखन की भाषा में सूक्ष्मता, वस्तुनिष्ठता, विश्लेषणात्मकता, सूत्रात्मकता और सार्वभौमिकता के गुण दिखाई देते हैं। भाषिक दृष्टि से, वैज्ञानिक लेखन के दो प्रमुख रूप मिलते है-(1) अनुसंधानपरक या तकनीकी वैज्ञानिक भाषा, और-(2) लोकप्रिय विज्ञान की भाषा। अनुसंधानपरक वैज्ञानिक लेखन विषय के जानकारों के लिए होता है इसलिए इसमें तकनीकीपन तथा सूत्रात्मकता अधिक होती है। लोकप्रिय वैज्ञानिक लेखन सामान्य पाठकों के लिए होता है और इसलिए इसमें तकनीकीपन की मात्रा कम होती है और भाषा-शैली सहज और बोधगम्य होती है।

वैज्ञानिक लेखन के भाषिक पक्ष में तीन मुख्य घटक शामिल हैं :

(क) तकनीकी शब्दावली

(ख) तकनीकी अभिव्यक्तियां या वाक्यांश

(ग) तकनीकी वाक्य-रूप

हर तकनीकी लेखन, चाहे यह वैज्ञानिक हो या सामाजिक विज्ञान विषयों का एक विशेष प्रकार की निजी शैली और शब्दावली विकसित करता है। यह शैली सामान्यतः उस विषय की भाषा की पहचान बन जाती है। इसी को हम प्रयुक्ति या तकनीकी भाषा रूप कहते है। उदाहरण के लिए 'चांदी सोना नरम, सिक्का गिरा' अभिव्यक्ति देखते ही मंडी बाजार की भाषा की पहचान सामने आती है। 'यात्रा का योग प्रबल है' ज्योतिष की भाषा का रूप है। 'आपको अभीष्ट पुत्रों की प्राप्ति होगी' वाक्य से धार्मिक भाषा-रूप का बोध होता है। इसी प्रकार विज्ञान की भाषा से इस प्रकार की विषयगत अभिव्यक्तियां जितनी अधिक विकसित होगी, वह भाषा की भी अपनी अभिव्यक्तियां हैं। दूसरे शब्दों में कुछ खास तरह के वाक्याशों और अभिव्यक्तियों की आवृत्ति वैज्ञानिक भाषा में अपेक्षतया अधिक होती है। यहां यह उल्लेखनीय है कि जिस भाषा में इस प्रकार की विषयगत अभिव्यंक्तियां जितनी अधिक विकसित होंगी, वह भाषा उस विषय में उतनी ही अधिक समृद्ध होगी। ये अभिव्यक्तियां उस भाषा की तकनीकी शैली का निर्माण करती हैं।

इन अभिव्यंक्तियों के संबंध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि हमेशा प्रयोग द्वारा ही विकसित और रूढ़ होती हैं। अनुवाद के रूप में इन्हें स्थापित करने की प्रक्रिया बहुत धीमी होती है और उस स्थिति में भी ये तभी मानक रूप से स्थापित या स्वीकृत होती है जब लंबे प्रयोग के द्वारा ये आम प्रचलन में आने लग जाते हैं। हिन्दी के संदर्भ में कुछ वैज्ञानिक अभिव्यक्तियां अंग्रेजी के आधार पर बनाई गईं जिनमें से कुछ सहज प्रयोग में आ चुके हैं और कुछ प्रयोग के लिए संघर्षरत हैं। हम नीचे अंग्रेजी-हिन्दी की इस कोटि की अभिव्यक्तियां नमूने के रूप में दे रहे हैं :

1. The reaction is carried out in the presence of oxygen	अभिक्रिया आक्सीजन की उपस्थिति में संपन्न होती है।
2. In an atmosphere of	के परिमंडल में
3. On treatment with acid	अमल से उपचारित किए जाने पर
4. Slightly alkaline	किंचित क्षारीय
5. Inversely proportional	उत्क्रम अनुपाती
6. Only ideal gases obey gas laws fully	केवल आदर्श गैसें ही गैस नियमों का अनुसरण करती हैं/पालन करती हैं।
7. The two theories complement each other	दोनों सिद्धांत एक दूसरे के पूरक हैं।
8. Are in full agreement with	से पूर्णतः मेल खाते हैं
9. The theories support each other	दोनों सिद्धांत एक दूसरें का समर्थन करते हैं/की पुष्टि करते हैं।

ये अभिव्यक्तियां वैज्ञानिकों को एक खास अर्थ या भाव व्यक्त करती हैं और इसलिए किसी भी वैज्ञानिक और तकनीकी लेखन के ये अभिन्न अंग हैं। लेकिन यदि वैज्ञानिक लेखन का उद्देश्य सामान्य पाठक को वैज्ञानिक जानकारी देना है तो लेखक ऐसी अभिव्यक्तियों का प्रयोग नहीं करेगा जो सामान्य

अभिव्यक्ति का अंग न हो। वह किसी भी वैज्ञानिक तथ्य को सरल, सरस तथा बोधगम्य तरीके से प्रस्तुत कर सकता है। नीचे के अंश में देखिए वैज्ञानिक लेखक ने किस प्रकार वर्णन की विधा को ही परिवर्तित कर आत्मकथा के रूप में एलुमिनियम के बारे में जानकारी दी है।

मेरा नाम एलुमिनियम है तथा धातुओं की लंबी परंपरा में मेरा एक प्रमुख स्थान है। मैं अपने अग्रजों-सोना, चांदी, तांबा, लोहा आदि की तरह इतना सौभाग्यशाली नहीं हूं कि मेरा संदर्भ विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ वेद में आया हो। मुझसे और मेरी मिश्र-धातुओं से ढलवां तथा पिटवा दोनों प्रकार के उत्पाद तैयार किए जाते हैं। मेरे तथा मेरी मिश्रधातुओं के पिडों को बेलन मिल में बेल्लित करके छड़, चादर, एंगल, विभिन्न प्रकार के सेक्शन, महीन पन्नी आदि प्राप्त किए जा सकते हैं।

इस प्रकार आप पाएंगे कि संदर्भ तथा पाठक को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिक लेखक अपनी भाषा तथा अपनी प्रस्तुतीकरण पद्धति में अंतर कर लेता है। वैज्ञानिक लेखन मूलत: तकनीकी और रूढ़ शब्दावली के योग से निर्मित होता है। इस पर भी यदि इसे ऐसी भाषा में प्रस्तुत करना हो जिसमें मूलत: इन विशिष्ट प्रयुक्तियों और अभिव्यक्तियों का प्रयोग प्रचलन द्वारा पूर्णत: सिद्ध न हो पाया हो और अनुवाद पद्धति का सहारा लेना पड़ा हो तो लेखन की जटिलता बढ़ जाती है।

□□

HA/99—2A

2226

हिंदी की छाती पर अंग्रेजी को नहीं लादा जा सकता

☐ नागार्जुन

अंग्रेजी का मोह हमारी रग-रग में भरा हुआ है, हम अंग्रेजी को ही देश की भावनात्मक एकता और केन्द्रीय प्रशासन और विश्व मानव सम्पर्क साधन का एकमात्र माध्यम माने बैठे हैं। लार्ड मेकाले के वंशधरों में इस अंग्रेजी के लिए उतना उत्साह नहीं रहा होगा जितना हमारे अन्दर है। स्वाधीनता हासिल कर लेने के बाद तो हमारा यह उत्साह और भी उफान खाने लगा है।

सरकारी आंकड़ों के मुताबिक क्या फीसदी औसत-अनुपात होगा अंग्रेजी जानने वालों का ?

—ढाई प्रतिशत!आप उसे तीन प्रतिशत मान लीजिए.....

—उनमें से अच्छी अंग्रेजी जानने वाले कितने होंगे ?

—एक प्रतिशत ! —आधा—एक प्रतिशत !

कैसी विडम्बना है!

वस्तुतः यह संकट अमुक या अमुक भाषा को हटाने या रखने का संकट नहीं है, यह संकट है जन-सामान्य को हमेशा के लिए 'शुद्र और चांडाल' मानकर शासन के मन्दिरों में जमे हुए देवता-क्लास का स्पर्शदोष से बचने और बचाने का। अंग्रेजी के माध्यम से ही जिनके संस्कार ढले हैं और जिनको हुकूमत का चस्का लग चुका है, वे क्यों चाहेंगे कि अंग्रेजी हटे ? ऐसी अखिल भारतीय भाषा को हटाकर हम क्या फिर से प्राकृत—अपभ्रंश गुफाओं में लौट आएंगे ? हम झगड़े अंग्रेजी में, हमने गालियां दीं अंग्रेजी में, हम पीटे अंग्रेजी में, फिर-फिर खड़े होकर दुश्मन को ललकारा हमने अंग्रेजी में, हम जूझे अंग्रेजी में और आजादी भी हमें अंग्रेजी में ही मिली। दुख में अंग्रेजी ने हमें टूटने न दिया। सुख में अब वहीं अंग्रेजी माता अखिल विश्व की चेतना का रसायन हमें पिला रही है।

कभी-कभी लगता है, नाहक ही अंग्रेज यहां से चले गये ! हमने तो ऐसा कोई कसूर नहीं किया था····· समझदारी नहीं, इसे हम उनकी 'कमजोरी' ही मानेंगे कि वे हमें छोड़कर चले गये। विधानमण्डलों में, लोकसभा में, राज्य परिषद में·····हाईकोर्ट में, सर्वत्र अंग्रेजी का बोलबाला है। राजनीतिक पार्टियों के केन्द्रीय कागजात अंग्रेजी में ही तैयार होते हैं। अच्छे स्तर के स्कूली शिक्षा के लिए तो कान्वेंट ही आगे हैं, जहां हमारे बच्चों को हंसना-मुस्कराना तक विलायती कायदे से सिखलाया जाता है। महानगरों का यह हाल है कि वहां सम्पन्न परिवारों में तीन-चार-पांच वर्षों के मुन्ने गलत अंग्रेजी बोलते वक्त तो डांट खा जाते है, लेकिन आया और खानसामा वाली लंगड़ी हिन्दी बोलते वक्त मां-बाप भी उनका साथ देते हैं: 'बरफ वाला पानी नहीं मांगता।' हमारी केन्द्रीय सरकार अंग्रेजी के बिना एक क्षण भी अपना काम नहीं चला सकती, हिन्दी-बंगला, तमिल आदि के बगैर तो वह बीसियों साल निभा लेगी। अंग्रेजी की अनिवार्यता ('सुरक्षा' कह लीजिए) का इतना अधिक ध्यान है हमारी सरकार को, कि संविधान में हेर-फेर करके हिन्दी के साथ-साथ वह अंग्रेजी को भी राष्ट्रभाषा मनवा लेना चाहती है-अनिश्चित और लम्बी अवधि के लिए।

संसार की निगाहों में हमारी यह अंग्रेजी-भक्ति भारतीय जनता की मानसिक पंगुता का चटकीला विज्ञापन साबित हो रहा है। देश से बाहर जाने पर इस सचाई का पता चलता है, दुनिया भर के समझदार व्यक्ति हमारे स्वाभिमान को संशय की भावना से तोलते हैं—क्या इन भारतीयों की अपनी कोई भाषा नहीं है ?

1905 में कांग्रेस का सालाना जलसा काशी में हुआ था। उसी अवसर पर पहली बार तिलक जैसे अखिल भारतीय लोकनायक ने कहा था—'राष्ट्रभाषा का पद हिन्दी को ही मिलना चाहिए।' 1918 में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता कबूल करके तो गांधी जी ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा पद पर बैठा ही दिया। तभी उनकी दृष्टि दक्षिण भारत की तरफ मुड़ी और सत्यदेव परिव्राजक और देवदास गांधी को हिन्दी प्रचार के लिए मद्रास भेजा।

1875 में बंगाल के महान सुधारक और ब्रह्मसमाज के अग्रणी प्रचारक बाबू केशवचन्द्र सेन ने अपने अखबार ('सुलभ समाचार') में लिखा था—'यदि भारतवर्ष एक ना हइले, भारतवर्ष एकता न हय, तबे ताहार उपाय कि ? समस्त भारतवर्ष एक भाषा व्यवहार कराइ उपाय। एखन जतो गुलि भाषा भारते प्रचलित आछे, ताहार मध्य हिन्दी भाषा प्रायः सर्वत्रई प्रचलित। एई हिन्दी भाषा के यदि भारतवर्षेर एक मात्र करा जाय, अनायासे शीघ्र सम्पन्न हइते पारे।' —आगे सेन महाशय ने लिखा कि अंग्रेजी शासकों को यह बात अच्छी नहीं लगेगी, उन्हें यह प्रस्ताव ग्राह्य

2226 HA/99—2B

नहीं होगा, वे नहीं चाहेंगे कि भारतवासी एक हों। भारतीयों का अनैक्य ही अंग्रेजो की शासन-सत्ता का आधार रहा है....

मगर यह तो 87 साल पहले की बात है। आज तो अंग्रेज राजा नहीं हैं, आज तो हम आप ही राजा हैं न ? आज क्यों नहीं अंग्रेजी को हटने दे रहे हैं हम ? कौन हमारा गला दबा रहा है? दलीय स्वार्थ ? मुट्ठी भर ब्यूरोक्रेसी ? अभिव्यक्ति की अपनी क्षमता ?

पन्द्रह वर्ष हो गये, हमने हिन्दी नहीं सीखी। हिन्दी वाला सारा काम किरानी लोग कर ही रहे हैं, हम क्या करेंगे हिन्दी सीखकर छोटी-छोटी बातों में अपना दिमाग क्यों खराब कर रहें हैं ? आओं, तुम भी आओ, हिंदी-फिन्दी का झमेला छोड़ो···· जो बासी पूड़ियां खाता है, वही हिंदी-हिंदी चीखता है, हम उसे अंडमान-निकोबार भेज देंगे पार्सल···· फिर भी चीखता रहेगा तो हम उसे राज्य सभा में बैठाने लग जाएंगे·····

मैंने बहुत-बहुत खोजा, मगर यह 'हिन्दी वाला' मुझे कहीं नहीं मिला। कहां बोली जाती हैं, हिंदी ? बल्कि यह पूछना ठीक होगा कि कहां नहीं बोली जाती है हिंदी ? कहां नहीं समझी जाती है ? यह समूचे देश की साझी भाषा है, केवल उत्तर वालों की बपौती नहीं है। साधुओं-सन्तों, फकीरों-दरवेशों, घुमन्तुओं-बनजारों, सिपाहियों-हरकारों, बनियों-सौदागरों, पण्डित-मौलवियों, कारीगरों-दस्तकारों के जत्थे हजारों साल से दूर-दूर घूमते-फिरते रहे हैं। उनमें से गूंगा एक प्रतिशत भी नहीं रहा होगा। सो अभिव्यक्ति का यह प्रबल माध्यम (हिंदी) उन्हीं पूर्वजों की देन मानता हूं मैं—अखिल भारतीय पूर्वजों की देन!

अंग्रेज-फ्रेंच-जर्मन-रसियन-स्पैनिश आदि भाषाएं भी वहां वालों के लिए आसमान से नहीं उतरी थीं, शब्द ब्रह्म का अवतार एकाएक समग्र वाङ्मय के तौर पर एक ही रात में नहीं हुआ था। हमारी हिन्दी भी एक दिन के अन्दर 'सर्वगुण सम्पन्न राष्ट्रभाषा' नहीं हो जायेगी, बीसियों वर्ष लग जाएंगे इसमें। परन्तु इससे क्या ? हम हिन्दी की छाती पर अंग्रेजी को आगे भी यों ही लदी रहने देंगे ? यों ही क्या हम आगे भी 'मेकाले के मानस पुत्र' कहलवाते रहेंगे ?

दो-एक वर्ष की और अवधि अंग्रेजी को दी जा सकती है, किन्तु अनन्तकाल के लिए उसको गले में बांध लेने का आग्रह जन-मन को पूरा सचेत न होने देने का दुराग्रह प्रमाणित होगा। केन्द्र से यदि अंग्रेजी न हटाये तो प्रदेशों में भी वह इसी तरह जमी रहेगी।

लोहिया जी ने 'अंग्रेजी हटाओ' का नारा दिया तो 'विश्वात्मा' टाइप के तथाकथित 'नये अभिजात' व्यक्तियों ने उन्हें सनकी कहा। देशी भाषाओं के पक्ष में गांधी जी और विनोबा जी ने कुछ कहा है, उसकी चर्चा कीजिए तो सामने वाला आपसे कहेगा- 'सन्तों की बात मत कीजिए'—कुछ सुधीजन समझते हैं सरकारी कामकाज से अंग्रेजी पदच्युत हुई तो देश हर मामले में पिछड़ जाएगा, आधुनिकता का सर्वथा लोप हो जाएगा! बैलगाड़ियां ही बैलगाड़ियां नजर आयेंगी, जनता कौपीन पहनकर नाखून और बाल बढ़ाये जंगल में भटकती फिरेगी... यानी ढेर सारी बातें भाषाई सवाल छिड़ने पर कही जाती हैं !

अब आप चाहें तो अपनी 'अति आधुनिकता' के नाम पर देशी भाषाओं को पास न फटकने दीजिए। मगर यह 'अति आधुनिकता' कब तक काम देगी।

□□

(महाराष्ट्र गरिमा पत्रिका से साभार)

"राष्ट्रीय व्यवहार में हिन्दी को काम में लाना देश की शीघ्र उन्नति के लिए आवश्यक है"

– महात्मा गांधी

भारत में पर्यावरण-चेतना

☐ विश्वंभर प्रसाद 'गुप्त-बन्धु'

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरूणस्याग्नेः।
आ प्रा धावापृथिवी अंतरिक्ष सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च
स्वाहा ॥ —यजुर्वेद 7.42।

विश्व वन-दिवस (21-3-99) की पूर्व संध्या पर आयोजित इस संगोष्ठी में आप पर्यावरण पर विचार कर रहे हैं, अतः बधाई के पात्र हैं। आपने 'भारत में पर्यावरण-चेतना पर बोलने का मुझे अवसर दिया, अतः आभारी हूं'।

मंगलाचरण में गाया हुआ यह यजुर्वेद के सातवें अध्याय का 42वां मन्त्र हैं जिसे हम लोग प्रातः-सायं-संध्या-प्रार्थना करते समय उपस्थान मंत्र के रूप में गाया करते हैं। उपस्थान का अर्थ है देवता के पास उपस्थित होना। देवता का अर्थ है, स्वर्ग में वास करने वाला दिव्य-शक्ति-सम्पन्न अमर प्राणी। अब स्वर्ग क्या हैं, इस पर ध्यान दीजिए। स्वः एक महाव्याहृति, अर्थात् परमात्मा का श्रेष्ठ नाम है। 'स्वः' या 'स्वर' परम आनंद को भी कहते है जो परमेश्वर का गुण है। अतः स्वर्ग हुआ परम आनंद का या मोक्ष का दुख से मुक्ति का स्थान। यह कहीं चौथे या सातवें आसमान में नहीं है, बल्कि महर्षि वेदव्यास के अनुसार, 'अत्रैव नरकः स्वर्गः' अर्थात् नरक स्वर्ग यहीं (इस धरती पर) हैं। स्पष्ट है कि वह भू-भाग जहां दुख ही दुख है, नरक है; और इसके विपरीत, जहां आनंद ही आनंद है, दुख से अत्यंत निवृत्ति है, मोक्ष है, वही स्वर्ग है। इसी से संबंधित शब्द है 'दिव्य', जिसका तात्पर्य है दैवी, लोकोत्तर, सर्वोत्तम, और दिव्य शक्ति से तात्पर्य है ऐसी शक्ति से जो सामान्यतया अन्यत्र न मिल सकती हो। इन अर्थों पर ध्यान रखते हुए हमारे उपस्थान मंत्र को समझने की आवश्यकता है। देखिए कि हम किस देवता के पास उपस्थित होकर प्रार्थना करते हैं।

इस मंत्र का अर्थ है—देवताओं का, अर्थात् ईश्वर की जो दिव्य-शक्ति-संपन्न देन है, सूर्य, चंद्र, नक्षत्र, गृह, वायु, जल, अग्नि आदि, उन सबका अद्भुत चित्र (तेज) प्रकट हुआ है। वह तेज द्युलोक, अंतरिक्ष और पृथ्वीलोक में व्याप्त है, और सूर्य-रूप से समस्त चेतन और जड़ जगत् का आत्मा (जीवनाधार) है। हम उन सब देवताओं के पास परम आनंद के भागी बनते हुए रहते है और ईश्वर को धन्यवाद देते हैं कि यह कितना अच्छा है।

मंत्र से स्पष्ट है कि जिन दिव्य पदार्थों के बीच हम रह रहे हैं, वे ही जिन्हें हम पर्यावरण कहते हैं, हमें स्वर्गोपम आनंद देते है और हमारे जीवन के आधार हैं। इनके लिए ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए।

पर्यावरण क्या है

पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना है: परि=सब ओर से + आवरण=ढकना। अर्थात् पर्यावरण वह सब कुछ है जो किसी को सब ओर से ढके या घेरे रहता है। इसी को परिवेश भी कहते हैं। पर्यावरण से मतलब किसी एक व्यक्ति के परिवेश से नहीं होता बल्कि वह व्यक्ति का, समाज का, राष्ट्र का और इस सारे विश्व का परिवेश है जिसका प्रभाव व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और सारे संसार पर पड़ता है। हमारा पर्यावरण पेड़-पौधे, नदी-पहाड़ आदि ही नहीं होते, बल्कि वह सब कुछ है जिसके कारण और जिसके बीच इस पृथ्वी पर जीव-जगत् है और विकास करता है।

यह जीव-जगत् पांच तत्वों (घटकों) से बना है। ये हैं पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश। ये सभी तत्त्व बहुत शक्तिशली होते हैं। इनकी दिव्य शक्तियों के कारण ही इन्हें 'देव' या 'देवता' कहते हैं। ये ही हमारे पर्यावरण के घटक हैं, क्योंकि ये हमारे चारों ओर मौजूद हैं। पेड़-पौधे, नदी-पहाड़, पशु-पक्षी आदि भी पर्यावरण के घटक है, क्योंकि ये सब हमारे इर्द-गिर्द रहते हैं और हमारे जीवन के आधार हैं।

जिन परिस्थितियों में पृथ्वी पर स्वस्थ जीवन बना रहता है, उनका अध्ययन करना 'पारिस्थितिकी (इकॉलॉजी)' कहलाता है। इसे ही पर्यावरण-विज्ञान कहते हैं। पर्यावरण का जीवन में इतना अधिक महत्व है, इसलिए पर्यावरण-विज्ञान सीखकर प्रत्येक व्यक्ति को अपना जीवन सुधारना चाहिए और पर्यावरण-मैत्री के द्वारा, अर्थात् पर्यावरण के साथ मित्रवत् व्यवहार करके अपनी, अपने समाज की और मानवता की उन्नति करनी चाहिए।

बी-154, लोक विहार, पीतमपुरा, दिल्ली-110034

पर्यावरण और जीवन

जब तक पर्यावरण ठीक-ठीक काम करता रहता है, तब तक जीव-जगत् भी ठीक रहता है। हम कहते हैं, "स्वच्छ पर्यावरण: स्वस्थ जीवन"। किंतु जब पर्यावरण में कोई ख़राबी आ जाती है तब जीवन भी स्वस्थ नहीं रहता। गंदी हवा में सांस लेने से तरह-तरह के रोग हो जाते हैं: जैसे खांसी, श्वास, दमा, क्षय आदि। गंदा पानी पीने से भी हैज़ा, पेचिस, पीलिया आदि बीमारियां होती हैं। पर्यावरण दूषित होने से जन-स्वास्थ्य को ख़तरा पैदा हो जाता है। महामारियां फैलती है, मृत्यु-दर बढ़ती है, और लोगों की औसत आयु भी घट जाती है।

हवा, पानी आदि दूषित होने से पशु-पक्षी भी बीमार होकर मरने लगते हैं। प्रदूषण का प्रभाव वनस्पति पर भी पड़ता है। वृक्षों की बाढ़ रूक जाती है। बहुत से वृक्षों में कीड़े लग जाते हैं। अनेक पौधे मर जाते हैं। बहुत सी जड़ी-बूटियां, जो पहले औषधि के रूप में काम आती थीं, आज-कल पैदा ही नहीं होती क्योंकि उनके लिए उपयुक्त परिस्थितियां अब नहीं रहीं।

इस प्रकार पर्यावरण दूषित हो जाने से मनुष्य, पशु-पक्षी, जीव-जंतु, पेड़-पौधों, सभी का अहित होता है। आजकल प्रदूषण बढ़ने के कारण रोग बढ़ रहे हैं, महामारियां प्राय: फैलती रहती है। बड़े शहरों में जो सांस लेने में भी कठिनाई हुआ करती है। जो जीते है वे मरे-मरे से अस्वस्थ रहकर किसी भांति दिन काट रहे है। हंसते-खिलाखिलाते चेहरे तो अब देहात में भी बहुत कम दिखाई देते है।

पर्यावरण-चेतना

पर्यावरण का जीव-जगत से कितना घना संबंध है, इसकी सार्थक समझदारी ही पर्यावरण-चेतना कहलाती है। मंगलाचरण में उद्धृत वेद-मंत्र से यह स्पष्ट है कि भारत में प्राचीन क़ाल में यह चेतना न केवल मौजूद थी, बल्कि विकसित भी थी। ऐसे असंख्य मंत्र वेदों में मिलते हैं और असंख्य उल्लेख भारतीय साहित्य में है जिनमें देवता-स्वरूप इन शक्तियों के सान्निध्य की कामना की गई है, इनकी स्तुति की गई है, इनके स्वच्छ, शुद्ध, शांत और प्रसन्न रखने के उपाए बताए गए हैं। पर्यावरण के प्रति देव-बुद्धि रखना हमारी संस्कृति में ही समाया है।

पृथ्वी हम सबकी माता है (माता भूमि: पुत्रोहं पृथिव्या:— अथर्ववेद 12.1.12) क्योंकि वही अन्न-जल देकर सबका पालन-पोषण करती है। पशु-पक्षियों का भी पालन करती है जो मनुष्य के लिए उपयोगी और हितकारी होते हैं।

जल भी देवता है (जल को वरुण भी कहते हैं जो ईश्वर का प्रसिद्ध नाम है)। बिना पानी के मनुष्य एक-दो दिन से अधिक नहीं जी सकता। जल से ही अन्न होता है जिससे यह शरीर पलता है। कहावत है, 'जल ही जीवन है'। इसलिए नदियों को भी मां-जैसा सम्मान दिया जाता है—गंगा-जमुना को हम गंगा-मैया, जमुना-मैया कहते हैं।

वायु तो जल से भी अधिक आवश्यक है। वायु में ही हम सांस लेते हैं। वायु न हो तो सांस लेना रुक जाए और हम मर जाएं। दो-चार घण्टे क्या, कुछ मिनट भी वायु के बिना जीवित रहना संभव नहीं होता। 'जीवन' शब्द 'जीव' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'सांस लेना'।

पर्यावरण के अन्य घटक भी मुनष्य के जीवित रहने में सहायक होते हैं। वृक्षों से फल मिलते है जो खाने के काम आते हैं। पेड़-पौधों से भांति-भांति की दवाएं बनती हैं जो रोग दूर करती हैं। कुछ पेड़-पौधे तो इतने अधिक उपयोगी होते हैं कि उन्हें भी देवता के समान सम्मान दिया जाता है। पीपल और बरगद को देवता मानते हैं। पीपल तो अंधेरे में भी आक्सीजन प्रदान करता है जबकि अन्य पेड़-पौधे सूर्य के प्रकाश में ही आक्सीजन दे पाते हैं। तुलसी को तुलसी-महरानी या तुलसी-माता कहते हैं। लोग घरों में तुलसी रखना आवश्यक समझते हैं और उसका सेवन-पूजन करते हैं। इसमें महत्वपूर्ण औषधीय गुण होते हैं।

पर्वतों में भांति-भांति के खनिज पदार्थ मिलते हैं और औषधियां उत्पन्न होती हैं। पानी-भरे बादल हवा में उड़ते हुए जब पर्वतों से टकराते हैं, जब वर्षा होती है। वर्षा न हो तो भूमि रेगिस्तान बन जाए और हमें अन्न-जल कुछ भी न प्राप्त हो। इसलिए पहाड़ों को 'भूभृत्' या 'महाभृत्' अर्थात् पृथ्वी का भरण-पोषण करने वाला कहा जाता है। संस्कृत के महाकवि कालिदास ने हिमालय को देवतात्मा कहा है।

पर्यावरण के सभी घटकों का महत्व, शक्ति, उपयोगिता और जीवन के लिए अनिवार्यता समझकर उनके प्रति देव-बुद्धि रखना भारतीयों में अति विकसित पर्यावरण-चेतना का पुष्ट प्रमाण है।

पर्यावरण का प्रदूषण और शोधन

पर्यावरण का प्रदूषण कुछ तो प्राकृतिक कारणों से भी होता है। जैसे ज्वालामुखी फटने, भूकंप आने, और दावानल आदि से पर्यावरण को काफी हानि पहुंचती है। किन्तु कुछ थोड़ा-बहुत लाभ भी होता है। जैसे दावानल से जहां मूल्यवान संपत्ति जल जाती है, वहीं बहुत सा प्रदूषण भी नष्ट हो जाता है।

प्रकृति में जो स्वाभाविक प्रदूषण होता रहता है, उससे निपटने की शक्ति भी उसमें होती है। पर्यावरण का स्वाभाविक शोधन होता रहता है। उदाहरण के लिए जीव सांस लेते है, तो जो सांस बाहर निकलती है, उसमें कार्बन-डाई-आक्साइड गैस अधिक होती है। यह गैस पेड़-पौधों का भोजन है। सूर्य के प्रकाश में वे इसे पचाकर हवा में आक्सीजन छोड़ते हैं। इस प्रकार हवा शुद्ध होती रहती है। जल-जीव जल में पड़ी गंदगी पचाकर जल शुद्ध करते रहते हैं। पेड़-पौधे अपने पत्ते गिराकर और पृथ्वी के जीव अपने मल-मूत्र-गोबर आदि से जैव खाद पहुंचाते रहते हैं जिससे मिट्टी उपजाऊ बनी रहती है। केचुंए आदि भी मिट्टी को शुद्ध करते रहते हैं। इस प्रकार संतुलन बना रहता है। जीव-जगत की सामान्य गतिविधियों से जितना प्रदूषण होता है, उतनी शुद्धि अपने-आप होती रहती है। कौआ और गृध्र आदि बहुत से पक्षी अपने भोजन के बहाने सफाई ही करते रहते हैं। बिल्ली और मोर का तो नाम ही मार्जार, मार्जारी या मार्जारक, अर्थात 'झाड़ू देनेवाले' पड़ गया है।

असामान्य गति-विधियों से या दुरुपयोग के फलस्वरूप प्रदूषण भी असाधारण और गंभीर होता है जिससे निपटने में प्रकृति प्रायः असमर्थ रहती है। इनके शोधन के लिए विशेष उपाय करने की आवश्यकता होती है।

पर्यावरण-मैत्री वाली मानव-संस्कृति

पर्यावरण-मैत्री कोई नया विषय या नयी खोज नहीं है। मानव के स्वस्थ विकास की यात्रा की दिशा, यानी जीवन का आधार पर्यावरण के दुरुपयोग से बचने और सदुपयोग करते रहने की जीवन-पद्धति ही श्रेष्ठ मानव-संस्कृति है। "भा" (=ज्ञान या प्रकाश) की खोज में "रत" (=लगे हुए) भारतीय चिंतकों ने जिस श्रेष्ठ सस्कृति का अनुसंधान और अनुसरण किया था, उसका आधार पर्यावरण-विज्ञान ही रहा है।

अत्यंत व्यापक, दीर्घकालीन और विशाल प्रयोगों और अनुभवों के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति निश्चित की गई थी। वही संसार की सबसे पुरानी, श्रेष्ठ और विश्व के लिए वरणीय संस्कृति है (सा प्रथमा संस्कृतिविश्ववारा—यजुर्वेद 7.14)। इससे इतर जो भी है, वह मानव की संस्कृति नहीं, अपसंस्कृति या विकृति ही हो सकती है, क्योंकि वह स्वस्थ विकास की नहीं, विनाश की दिशा ही दिखा सकती है। इसी का प्रमाण है कि 'यूनान-मिश्र-रोमां सब मिट गये जहां से; अब तक मगर है बाकी नामो-निशां हमारा'। अर्थात् भारतीय संस्कृति काल-जयी है, क्योंकि इसका केन्द्र पर्यावरण है जो जीवन का आधार है। गंगा-यमुना आदि नदियों का सेवन-पूजन, जल से नित्य ही (विशेषकर व्रतों-त्योहारों में) स्नान करना, सूर्य-नमस्कार करना, अग्नि में आहुति देना आवश्यक समझा जाता है। पूजा में भी केशर, जल, चंदन और नारियल आदि लगते हैं। और यह सब इस संस्कृति में धर्म—(अर्थात् अवश्य-करणीय) कर्म समझा गया है।

"पर-हित सरिस धर्म नहीं भाई; पर-पीरा सम नहीं अधमाई" (तुलसी : मानस) भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र है। वेद ज्ञान कोश है। वे कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु का त्याग करके उपभोग करना चाहिए, और सब कुछ स्वयं ही हड़प लेने का लोभ न करना चाहिए (तेन त्यक्तेन भुंजीयाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्—यजुर्वेद 40.1; ईशोपनिषद् 1); कुछ दूसरों के लिए भी छोड़ना चाहिए। अपनी आवश्यकताएं कम रखनी चाहिए। ऐसी स्वार्थ-त्याग-वाली और शोषण-विरोधी संस्कृति पर्यावरण-मैत्री मात्र विचार या कोरी कल्पना नहीं है, बल्कि आचरण में अपनाने योग्य धर्म है। पर्यावरण के प्रति देव-बुद्धि रखना मानव का कर्तव्य है। संत तुलसीदास के शब्दों में,

"जड़ चेतन जग जीव जल सकल राम-मय जानि।

बंदहु सबके पद-कमल सदा जोरि जुग पानि॥"—मानस, बालकांड 7ग। इस श्रेष्ठ संस्कृति से विमुख होने के कारण ही मनुष्य पर्यावरण बिगाड़ने पर उतारू होता है और संकट बुलाता है।

महाभारत का एक प्रसंग है, विराटनगर में जब राजा के साले की चक के दुर्व्यवहार से दुखी द्रोपदी न्याय पाने हेतु राज-दरबार में पहुंची तो वहां भी कीचक ने उसे गिराकर एक लात मार दी। दरबार में कंक नाम से छिपे युधिष्ठिर के पास पाकशाला-अध्यक्ष बल्लव नाम से छिपे भीम भी बैठे थे। वे क्रोध से तिलमिला उठे और कीचक को तत्काल मार डालने की इच्छा से बाहर एक वृक्ष की ओर ताकने लगे, मानों उनका वश चले तो उसे ही उखाड़कर कीचक पर दे मारे। ऐसी संभावना भांपकर युधिष्ठिर ने कहा, "बल्लव, तुम ईंधन के लिए वृक्ष को देख रहे हो? रसोई के लिए लकड़ी चाहिए तो बाहर जाकर सूखी लकड़ी किसी वृक्ष से ले लो। शीतल छाया देनेवाले हरे-भरे वृक्ष के उपकारों का ध्यान रखते हुए उसके एक पत्ते को भी हानि न पहुंचानी चाहिए।" यह सुनते ही भीम ने अपना क्रोध छिपा लिया। ऐसी थी पर्यावरण के प्रति मानव की प्रखर चेतना और भारत की पर्यावरण-मैत्री-वाली श्रेष्ठ संस्कृति जो मानव का संस्कार करके उसे देवता बना देती है; अन्यथा संस्कृति से कटा मानव दानव ही हो सकता है।

भारतीय संस्कृति यज्ञमय जीवन ही जीने की अनुमति देती है। उपनिषद् कहते हैं कि यज्ञ-कार्य भी जन-कल्याण के लिए होते हैं (यज्ञोऽपि तस्यै जनतायै कल्पते—ऐतरेय), और यज्ञ ही श्रेष्ठमय कर्म है। (यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म शतपथ 1.7.1:5)। यज्ञ अनेक प्रकार के होते हैं; किंतु पांच महायज्ञ माने जाते हैं जो प्रत्येक गृहस्थ को अवश्य करने चाहिएं। इन्हीं में से एक है देव-यज्ञ अर्थात् हवन, अग्निहोत्र या होम करना, जिससे पर्यावरण की शुद्धि होती है और रोग दूर होते हैं। भूत-यज्ञ एक और महायज्ञ है: बराबर प्राणि मात्र के प्रति सद्भावना रखना। मनुष्य, पशु-पक्षी, और पेड़-पौधों आदि का समुचित पालन-पोषण, सेवन-पूजन आदि ही भूत-यज्ञ है।

देव-यज्ञ या होम देवताओं की प्रसन्नता के लिए किया जाता है। श्रीमद्भागवद्गीता के अनुसार,

"देवान्भावयतानेन ते देवा भाक्यन्तु वः।

परस्परंभाक्यन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥—3.11।

अर्थात तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा देवताओं (पर्यावरण के घटकों) को उन्नत (शुद्ध, पवित्र, स्वस्थ,प्रसन्न) करो और वे देवता तुम लोगों को उन्नत करें। इस प्रकार एक-दूसरे को उन्नत करते हुए तुम लोग परम कल्याण को प्राप्त हो जाओगे। इस प्रकार होम से सभी प्राणियों का कल्याण होता है और होम करनेवाला भी सुखी रहता है। आपस की मैत्री ही संसार में कल्याणकारी होती है।

वर्तमान विश्व-परिदृश्य

पर्यावरण का साधारण प्रदूषण दूर करके प्रकृति में संतुलन बनाए रखनेवाला कारक भी पर्यावरण ही है। किंतु आज-कल पर्यावरण को भी इतनी क्षति पहुंच रही है कि वह अपना पूरा शोधन नहीं कर पाता। उधर प्रदूषण बढ़ता जाता है। यानी यह एक दुश्चक्र है: प्रदूषण बढ़ा→क्षति हुई→शोधन घटा→प्रदूषण बढ़ा→आदि।

गांवों में पहले प्रातः-सांय पशुओं की पंक्तियों पर पंक्तियां निकला करती थी, किंतु अब बहुत थोड़े गाय-बैल ही दिखते हैं। बड़े-बड़े किसान अब बैल नहीं पालते, ट्रैक्टर ख़रीदते हैं। लोग भूल गए हैं कि शिव (कल्याण) के वाहन बैल ही होते हैं, ट्रैक्टर नहीं हो सकते। बैल न रहेंगे तो कल्याण नहीं होगा। गायें भी बहुत कम पाली जाती हैं। वे अब उतना दूध भी नहीं देतीं। महाभारत में लिखा है कि किसी के पास दस गायें हों तो उनसे पूरे परिवार का भरण-पोषण अच्छी तरह हो सकता है। गायों की संख्या के अनुसार ही लोग धनी समझे जाया करते थे। किंतु अब तो पशु-पालन का धंधा समाप्त होता दीखता है। चरागाहें ही नहीं रहीं, वन ही नहीं रहे, तो पशु-पालन कैसे चल सकता है। गत 30 वर्षों में ही भारतीय वन-क्षेत्र सकल क्षेत्र के 20 प्रतिशत से सिकुड़कर मात्र 10 प्रतिशत रह गया है।

यदि लोग अपनी आवश्यकताएं बढ़ाते गए तो पर्यावरण का प्रदूषण भी बढ़ता जायगा और मानव- जीवन के लिए ख़तरा उतना ही बढ़ेगा। फिर तो धीरे-धीरे रेत पर बनाए निशान की भांति मनुष्य का निशान भी संसार से मिट सकता है। सभ्यता के केन्द्र शहरों का तो बहुत ही बुरा हाल है। हवा में इतना प्रदूषण बढ़ गया है कि वह प्राण-दाता के बजाय जान-लेवा हो रही है। केन्द्रीय प्रदूषण-नियंत्रण बोर्ड दिल्ली की रिपोर्ट (नमूना सारणी 1) हर दूसरे-चौथे समाचार-पत्रों में प्रकाशित होती रहती है जिसके अनुसार प्रदूषण मानव-स्वास्थ्य के लिए ख़तरनाक स्थिति से भी बहुत अधिक है, और दिन-प्रति-दिन तेजी से बढ़ता जा रहा है। विद्वानों का अनुमान है कि ऐसा ज़माना जल्दी ही आ सकता है जब लोग आक्सीज़न की थैलियां लेकर घर से निकला करेंगे और आवश्यकतानुसार उसे सूंघते हुए अपना सफ़र पूरा किया करेंगे।

हवा के बाद पानी दूसरी अनिवार्य आवश्यकता है जिसकी हालत भी शोचनीय है। संयुक्त राष्ट्र की 1997 की रिपोर्ट के अनुसार विश्व की कुल जन-संख्या में से 20 प्रतिशत को स्वास्थ्यप्रद पेय जल उपलब्ध नहीं है। अनुमान है कि 2025 तक विश्व की दो-तिहाई आबादी पानी की समस्या से त्रस्त होगी। चेन्नई भारत का चौथा महानगर है। वहां अधिकतर नागरिकों को प्रतिदिन केवल दो घण्टे ही जल प्राप्त होता है। विश्व के 80 देशों में पानी की कमी है, पर मध्य पूर्व, उत्तरी अफ्रीका, केन्द्रीय एशिया और सहारा अफ्रीका के देशों में समस्या गंभीर है।

प्रदूषण ने जल के एक बड़े भाग को उपयोग के योग्य ही नहीं छोड़ा है। विकासशील देशों में 90 प्रतिशत मल-जल (सीवेज) बिना किसी उपचारण के ही जल-संसाधनों में मिला दिया जाता है। अच्छा पानी तो अभी भी दुर्लभ हो रहा है। बाज़ार से बोतल-बंद स्वच्छ पानी ख़रीद कर प्रायः लोग उस ही पीते है। यानी इयत्ता और ईदृकता दोनों दृष्टियों से (क्वांटिटेटिवली ऐंड क्वालिटेटिवली, बोथ) पानी की स्थिति भी हवा की भांति गंभीर है।

विद्वानों के एक अनुमान के अनुसार पर्यावरण स्वस्थ बनाए रखने के लिए भूमि का एक तिहाई भाग वनों से ढका रहना चाहिए। किंतु लकड़ी, कागज आदि के कारखाने चालू रखने के

लिए जंगल बुरी तरह काटे गए। फल यह हुआ कि बहुत सी मिट्टी वर्षा में कटकर बह गई, भूमि बंजर होने लगी, ऊसर और मरुस्थल बढ़ते गए। हवा में ऑक्सीजन कम होने लगी। कृत्रिम खाद देने से अन्न की पौष्टिकता बहुत कम हो गई। कारखाने अपना कूड़ा-कचरा और गंदा पानी नदियों में बहा देते हैं जिससे जल-जीव मरते जा रहे हैं। ऊंची-ऊंची चिमनियां दिन-रात धुआं और विषैली गैसें उगल रही हैं। मुंबई में तो हवा में गंधक का धुआं फैलने से तेजाब की वर्षा तक हो चुकी है। एक बड़ा हवाई जहाज़ एक दिन में जितनी आक्सीजन ख़र्च करता है, उतनी 17,000 हेक्टार वन में तैयार होती है। व्यापक वन-विनाश के कारण हवा में प्राण-वायु आक्सीजन घट रही है जबकि विषैली गैसें बढ़ रही हैं।

संक्षेप में कहें तो जीवन का आधार मिटाया जा रहा है विकास, उन्नति और प्रगति के नाम पर। यह है नरक होती जा रही हमारी दुनिया का विहंगम दृश्य कि आदमी तो बढ़े हैं किंतु उनके चेहरों से खुशी गायब है। एक कवि के शब्दों में :

"हम जीवित हैं, पर नाथ, रहा इस जीवन में कुछ सार नहीं।

उठता जगदीश, न शीश कभी, हिलता तक है दुख-भार नहीं॥"

प्रदूषण-वृद्धि के मूल कारण

मनुष्य अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताएं पूरी करने में दिन-रात जुटा रहता है। वह भांति-भांति की वस्तुओं का संग्रह करता है; दूसरों से प्रतियोगिता करता है और अधिक-से-अधिक प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। यह प्रवृत्ति 'लोभ' कहलाती है। ऋषियों ने इसे एक बड़ा दुर्गुण कहा है, क्योंकि इससे उसे पर-हित का ध्यान नहीं रहता और वह दूसरों को उनका आवश्यक भाग प्राप्त करने से वंचित रखता है। पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध के कारण लोग उसकी ओर आकर्षित होने का लोभ संवरण नहीं कर पाते, और अपनी आवश्यकताएं बढ़ाते जाते हैं। जो वस्तुएं पहिले विलासिता समझी जाती थीं वे अब आवश्यक समझी जाने लगी हैं। ठंढी अलमारी (फ्रिज), दूरदर्शन (टेलीविज़न), मोटर, धुलाई-मशीन, सफाई-मशीन, सिलाई-मशीन स्टोव-चूल्हे आदि अब बहुत से लोगों के लिए अनिवार्य हो गए हैं। लोभ की प्रवृति बराबर बढ़ती जा रही है।

अपनी बढ़ी हुई आवश्यकता की वस्तुएं तैयार करने, हथियाने, और दूसरों से आगे रहने को ही कुछ लोग विकास, उन्नति या प्रगति मान बैठे हैं। किंतु वास्तव में लोगों में लोभ और स्वार्थ-बुद्धि का ही विकास हुआ है। उस तथाकथित विकास के लिए वे अपने आस-पास के पर्यावरण का दोहन करते हैं; जल-थल-वायु ही नहीं, पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों और जीव-जन्तुओं तक का अधिक-से-अधिक उपभोग करते हैं। सभी शक्तियों का अपने स्वार्थ के लिए शोषण करते हैं। अपने-अपने भारी उद्योग पनपाने के लिए एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का, एक समाज दूसरे समाज का, और एक देश दूसरे देश का शोषण करता है। यह शोषण इतना सार्व तथा व्यापक है, और इसका स्वरूप इतना गुप्त और जटिल है कि असानी से सबको दिखाई नहीं देता। मनुष्य की स्वार्थ-बुद्धि इतनी चतुर हो गई है कि ढोंगी विकास की आड़ में छिपी उसकी दूषित नीयत और कुत्सित विचार आम आदमी की समझ में नहीं आ पाते।

विकास और सहायता के नाम पर विकसित देश अल्प-विकसित या विकासशील देशों का शोषण कर रहे हैं। अमेरिका एक विकसित देश समझा जाता है। वहां दुनिया की 7½ प्रतिशत आबादी रहती है; किंतु वह दुनिया के 50 प्रतिशत बुनियादी साधनों का उपभोग करता है। अल्प-विकसित और अविकसित देशों में दुनिया की 70 प्रतिशत आबादी रहती है, और दुनिया के खनिज भण्डारों का 70 प्रतिशत भी इन्हीं देशों में है। किंतु दुनिया के सारे औद्योगिक उत्पादन का केवल सात प्रतिशत ही इन देशों में होता है। यह भी शोषण का एक उदाहरण है।

अब यह किसी से छिपा नहीं है कि कुछ-एक देश अपने स्वार्थ के लिए सारे संसार की संपदा चट कर जाने पर उतारू हैं। यह विश्व-पर्यावरण के साथ बलात्कार ही है। इसका शिकार सारा जीव-जगत् और स्वयं मनुष्य भी हो रहा है। यह बुद्धमानी नहीं है। यह तो विचारों की दरिद्रता की पराकाष्ठा है, कुछ लोगों के लोभ का घिनौना चेहरा है, उनकी स्वार्थ-बुद्धि का विषैला फल है। मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए प्रकृति के स्वाभाविक काम में बहुत छेड़-छाड़ करता है जिससे संतुलन बिगड़ जाता है, जल-थल-वायु सभी इतने प्रदूषित हो जाते हैं कि प्रकृति उन्हें शुद्ध नहीं कर पाती।

विकास के नाम पर विनाश

अब यह सिद्ध हो चुका है कि पर्यावरण का व्यापक प्रदूषण मनुष्य की ग़लत सोच का ही परिणाम है। भारी उद्योगों वाली सभ्यता का केन्द्र पूंजी है, धर्म स्वार्थ है और लक्ष्य है उपभोक्ता का दोहन जिसका साधन है व्यापक शोषण। इस सारे तंत्र की सूत्रधार है मनुष्य की स्वार्थ-बुद्धि, उसकी पर-हित-विरोधी सोच और परिणाम है विकास के नाम पर विनाश।

किंतु जैसे-जैसे पर्यावरण-चेतना बढ़ रही है, विकास की क़लई भी खुलती जा रही है; भोली भाली जनता के साथ होनेवाले

स्वार्थ में रंगे सियारों के छल का कच्चा चिट्ठा सबके सामने आ रहा हैं। जितने ही अधिक भारी उद्योग बढ़े जल-थल-वायु का उतना ही अधिक प्रदूषण हुआ । विकास का ढोल पीट-पीट कर प्राकृतिक संपदा का अधिक-से-अधिक विनाश किया गया। ग़लत सोच का एक उदाहरण देखिए : एक मोटर-वाहन 970 किलोमीटर की यात्रा में उतनी आक्सीजन फूंक डालता है जितनी एक व्यक्ति को एक वर्ष में आवश्यक होती है। केन्द्रीय प्रदूषण-नियंत्रण बोर्ड, दिल्ली बराबर चेतावनी प्रसारित करता रहता है (अखबारों में प्रकाशित नमूना सारणी 1 देखिए) कि मोटरों से निकलनेवाली कार्बन-मोनो-आक्साइड की मात्रा अधिकतम अनुमत सीमा की चार-गुनी से भी अधिक हो रही है। फिर भी मोटर बनाने का उद्योग फैलता जा रहा है भले ही सड़कें सँकरी पड़ती जा रही हैं, चौराहों पर ट्रैफिक-जाम बढ़ता जा रहा है। भारत में ही नये प्रस्तावित कारखानों से दो-साल-बाद तैयार होकर निकलनेवाली मोटरों (छोटी कारों) के लिए अभी से दो लाख से ऊपर आर्डर बुक हो चुके हैं, जब कि, सुनते हैं, न्यूयार्क में मोटर छोड़ साइकिल चलाने का फ़ैशन शुरू हो रहा है।

यह युग का दुखांत ही है कि भारत भी पश्चिम की अर्थ-काम-प्रधान अप-संस्कृति (या विकृति) की आंधी में उड़ता हुआ विनाश की ओर जा रहा है, यहां तक कि विश्व के सर्वाधिक प्रदूषित दस महानगरों में से तीन भारत के हैं। संयुक्त राष्ट्र पापुलेशन फण्ड की ओर से न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यू.एन.ई.पी.) और संयुक्त राष्ट्र मानव रिहाइश केन्द्र (हैबिटैट) द्वारा हाल में जारी की गई रिपोर्ट के अनुसार आनेवाले दशकों में हमारे शहरों की हालत नारकीय हो जाएगी।

प्रदूषण-नियंत्रण के प्रयत्न

प्रदूषण के प्रति मानव की चिंता बढ़ रही है। वह किसी भांति इस संकट से छुटकारा पाने के लिए छटपटा रहा है दशाब्दियों से इस संकट को टालने के उपाय भी हो रहे हैं; किंतु समस्या बढ़ती ही गई है। मनुष्य प्रदूषण से बचने के उपाय खोजता है; किंतु उसकी सोच के पीछे उद्देश्य के प्रति ईमानदारी प्राय: नहीं होती। उसकी स्वार्थ-बुद्धि उसके निजी हितों से ऊपर नहीं उठ पाती और यह नहीं सोच पाती कि सभी का, सारे जीव-जगत् का हित कैसे हो। समस्या से जूझने के लिए भारत ने 'मानव-संसाधन-विकास' और 'पर्यावरण मंत्रालय' भी बना रखे हैं। "परंतु" वृंदावन के एक विद्वान डा. शरणविहारी गोस्वामी के शब्दों में, "संस्कार तो अब भी विरोधी हैं। प्रकृति को बचाना भी चाहते हैं, उसका विनाश भी बंद नहीं कर रहे हैं। सर्वप्रथम तो मन का प्रदूषण दूर करना होगा। मन को सहज संस्कारों में ढ़लना होगा, तभी प्रदूषण-विरोध और पर्यावरण-रक्षण-आन्दोलन सफल होगा। इसके लिए जो जीवन-दृष्टि चाहिए, वह भारत के पास है।" (डा. हर्षनंदिनी भाटिया की पुस्तक 'ब्रज-निधि: वनश्री' की भूमिका से)

सोच के पीछे ईमानदारी और दृढ़ इच्छा-शक्ति के अभाव में हमारे प्रयास बहुधा दिखावटी और छोटे होते हैं। छोटे-छोटे वन-महोत्सव भारी वन-विनाश की भर-पाई नहीं कर पाते हैं। वे ऊंट के मुंह में ज़ीरा सिद्ध होते हैं। चिपको आन्दोलन का प्रभाव भी स्थानीय ही होता है। इसका सिद्धान्त सत्याग्रह द्वारा वन-विनाशकों का हृदय-परिवर्तन है। किंतु जब तक उनकी सोच न बदले, उनके विचार न शुद्ध हों, उनमें सबका हित साधने की सुमति न आए, तब तक उनका हृदय-परिवर्तन संभव नहीं होता। वे लोग पर्यावरण-मैत्री-की संस्कृति से इतनी दूर जा चुके हैं कि सत्याग्रहियों पर दया दिखाने के लिए घड़ियाली आंसू ही बहाते रहेंगे।

बचपन में डाले हुए संस्कार ही टिकाऊ होते हैं । पर्यावरण-मैत्री का पाठ भी बचपन में ही पढ़ाकर यह भूली हुई संस्कृति सिखाई जा सकती है। पर्यावरण-चेतना जन-जन में जगाने के लिए एक विश्वव्यापी वैचारिक क्रान्ति करनी होगी। बूढ़ा तोता राम-राम नहीं पढ़ता। स्वार्थ की दृष्टि भी सरलता से नहीं छूटती। लोग पर-हित का मुंह से पाठ करते हैं और हाथ में स्वार्थ की माला जपते हैं। यह बुद्धि बदलनी चाहिए। डा. गोस्वामी द्वारा इंगित भारतीय जीवन-दृष्टि सोई हुई है; उसे जगाना होगा। इसके लिए पीढ़ियों तक बचपन से ही पर्यावरण-विज्ञान की शिक्षा मिलनी चाहिए। तभी लोग पर्यावरण-मैत्री वाली संस्कृति अपनाएंगे और स्वार्थ छोड़ भारतीय जीवन-दृष्टि पाएंगे।

पर्यावरण-विज्ञान अर्थात् यज्ञ-विज्ञान

संसार यह अनुभव करने लगा है कि प्रदूषण की गंभीर समस्या का एक मात्र सुनिश्चित, सुप्रभावी और स्थायी समाधान है, पुन: पर्यावरण-मैत्री वाली संस्कृति की शरण जाना, यज्ञमय जीवन-पद्धति अपनाना, भावी नागरिकों में यज्ञ-होम के प्रति रुचि बढ़ाना और बचपन से ही उन्हें होम द्वारा पर्यावरण-देवताओं का तुष्टीकरण सिखाना। जर्मनी में पर्यावरणवादी "ग्रीन पार्टी" शासन-सत्ता में भागीदार हो गई है; इटली, स्वीडन और स्विट्ज़रलैंड की सरकारों पर भी हरित आन्दोलन का दबाव बढ़ता जा रहा है। प्रदूषण-निवारण के एक मात्र प्रभावी और स्थायी उपाय, 'अग्निहोत्र' के प्रति अमेरिका, चिली, पोलैंड और पश्चिमी जर्मनी में विशेष रुचि बढ़ी है। अमेरिका में तो मेरीलैंड (बाल्टीमोर) में 'अग्निहोत्र प्रेस फ़ार्म' है जहां 1979 से

दिन-रात अखंड यज्ञ चल रहा है। मैडिसना (वर्जीनिया) में प्रथम यज्ञशाला का उद्घाटन 1973 में हुआ था, जहां राजधानी से डेढ़ घंटे में पहुंचा जा सकता है। राजधानी वाशिंगटन, डी. सी. में अग्निहोत्र-विश्वविद्यालय की स्थापना भी हो चुकी है।

होम का सिद्धान्त यह है कि कोई भी वस्तु आग में ढालने से नष्ट नहीं होती; बल्कि जलने से उस वस्तु का प्रभाव हज़ारों गुना बढ़ जाता है। जलती हुई वस्तु के सूक्ष्म कण गैस बनकर दूर-दूर तक फैलते हैं और बहुत से प्राणियों को लाभ पहुंचाते हैं। हवन-सामग्री में ऋतु के अनुसार औषधियां और जड़ी-बूटी, घी, शकर, और मेवे आदि होते हैं। उनके जलने से घरों के हानिकर कीट, मच्छर आदि और अनेक रोगों के कीटाणु मर जाते हैं। होम की राख में भी औषधीय गुण होते हैं। वैज्ञानिकों ने प्रयोग करके देखा है कि खांड़ जलाने से जो गैस बनती है उससे अनेक रोग-कीटाणु मर जाते हैं और क्षय, चेचक, हैज़ा आदि बीमारियां शीघ्र दूर हो जाती हैं। मुनक्का, किशमिश आदि मेवो में शकर अधिक होती है; इनके जलाने से टाइफ़ाइड ज्वर के रोग-कीट आधे घंटे में मर जाते हैं। अन्य व्याधियों के रोगाणु भी घंटे-दो-घंटे में नष्ट हो जाते हैं। मद्रास (अब चेन्नई) में एक सैनिटरी कमिश्नर ने सन् 1898 ई. में बताया था कि घी और चावल में केशर मिलाकर जलाने से प्लेग से बचा जा सकता है। टी. बी. उपचार केन्द्र, जबलपुर में तीन-चार दशक पहले यज्ञ के प्रयोग किए गए थे। वहां डा. फुंदनलाल अग्निहोत्री ने 80 प्रतिशत क्षय-रोगियों को यज्ञ से लाभ पहुंचाया था। प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ था कि गाय के घी से यज्ञ करने पर रोगी शीघ्र चंगे हो जाते हैं। वास्तव में पर्यावरण-विज्ञान का ही दूसरा नाम यज्ञ-विज्ञान है।

होम से वायु शुद्ध होती है; इससे वृष्टि भी होता है (गीता 3.14)। शुद्ध वायु के संपर्क में आकर वर्षा-जल शुद्ध हो जाता है और उसके पृथ्वी पर गिरने से भूमि भी शुद्ध होती है। होम की राख खाद का काम देती है। खेतों में होम करने से उपज बढ़ती है, फसल में कीड़े नहीं लगते और अन्न भी अधिक स्वादिष्ट तथा पौष्टिक होता है। गोशाला में होम करने से गायें अधिक दूध देती हैं। इस प्रकार होम के कारण अच्छा अन्न-जल-वायु और दूध-घी मिलने से लोगों का स्वास्थ्य सुधरता है, उनकी आयु बढ़ती है। होम में एक और भी रहस्य है। आहुतियां देते समय प्रत्येक बार 'स्वाहा' बोला जाता है जिसका अर्थ है कि मैं अपना कुछ त्याग करता हूं अथवा मैं अपनेपन का, अहं-भाव का नाश करता हूं। इसी प्रकार आहुति के बाद भी 'इदं न मम' बोला जाता है अर्थात् यह मेरे लिए नहीं वरन् ········· के लिए है। ऐसा बार-बार करने से मनुष्य का अहंकार धीरे-धीरे नष्ट होता रहता है। उसकी त्याग-भावना बढ़ती है, स्वार्थ छोड़ने का उसका मानसिक संकल्प दृढ़ होता है और पर-हित को ओर रुचि उत्पन्न होती है। उसका मन शुद्ध होता है, स्वभाव सुधरता है और वैचारिक प्रदूषण दूर होता है। मंत्रों के उच्चारण से अवांछनीय ध्वनियां दबी रहती हैं और अंशतः ध्वनि-प्रदूषण रुकता है।

नरक को स्वर्ग बनाने का अमोघ उपाय

संतोष का विषय है कि भारत की जीवन-दृष्टि जग उठी है और यज्ञ-विज्ञान के प्रति जागरुकता विश्व में बढ़ रही है। पर्यावरण-संरक्षण-संघ, नासिक; इंस्टिट्यूट फार स्टडीज इन अमेरिका में अग्निहोत्र यूनिवर्सिटी और नेशनल हार्टिकल्चरल सोसायटी, जर्मनी में क्रिया-योग जैसी संस्थाएं यज्ञमय जीवन पर गंभीर शोध और व्यापक प्रचार-कार्य कर रही हैं। अनेक पत्रिकाएं निकल रही हैं और पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। पर्यावरण-संरक्षण-संघ के प्रो. एस. सी. मुले ने 'मेडिसिना एल्टरनेटिया' द्वारा आयोजित विश्व-सम्मेलन में होम का प्रदर्शन किया था। उन्होंने बताया था कि पृथ्वी और सूर्य के बीच का वातावरण प्रदूषण के कारण बिगड़ गया है। इसे होम द्वारा आसानी से अनुकूल बनाया जा सकता है। 'होम' या 'यज्ञ' संस्कृत शब्द वैदिक काल के जैव-ऊर्जा-विज्ञान का तकनीकी शब्द है जिसका अर्थ है, अग्नि के माध्यम से पर्यावरण के विषैले तत्व दूर करने की प्रक्रिया। प्रो. मुले ने बताया कि होम से ऑक्सीजन की पुनश्चक्रण प्रणाली में संतुलन बना रहता है। जल-स्रोतों द्वारा सूर्य-किरणों का अवशोषण करने की क्षमता भी होम से बढ़ती है जिससे शैवाल और जीवाणुओं की अनचाही वृद्धि रुकती है।

प्रतिदिन प्रायः-सायं प्रत्येक घर में सामान्य होम और पर्व या त्यौहारों पर विशेष होम करने से पर्यावरण शुद्ध होता रहता है, हानिकर कीट-मच्छर आदि भाग जाते हैं और मनुष्य के स्वास्थ्य एवं आचार-विचार सभी सुधरते हैं। इस प्रकार होम से मनुष्य का सर्वांगीण विकास या 'संस्कार' होता है। वह मानव से श्रेष्ठ मानव और अंततः देवता बन जाता है—'देवो भूत्वा देवानप्येति' (बृहदारण्यक 4.1.2)। उसके बसने की जगह 'वसुधा' नरक नहीं स्वर्ग बन जाती है। यज्ञवाली संस्कृति अथवा पर्यावरण-केन्द्रित संस्कृति ही भा-रत की (ज्ञान पर आधारित : कंडिका 5.1) संस्कृति है। यही मानव मात्र की संस्कृति होनी चाहिए। इस संस्कृति से विमुख होने के कारण ही मनुष्य नारकीय जीवन जी रहा है। मनुष्य के सोलह संस्कारों में एक होता है "यज्ञोपवीत" (यज्ञ + उप + वीत)। इसका अर्थ है यज्ञमय जीवन के पास ले जाने की प्रेरणा देना। यह संस्कार बचपन में ही प्रत्येक व्यक्ति

का होना चाहिए ताकि वह जीवन भर यज्ञ अर्थात् पर-हित से जुड़ा रहे और अपने राष्ट्र का श्रेष्ठ नागरिक बनकर, दद्दा मैथिलीशरण गुप्त के राम की भांति गर्व और विश्वास के साथ कह सके:

"सन्देश नहीं मैं यहां स्वर्ग का लाया।
इस वसुधा को ही स्वर्ग बनाने आया।"—साकेत।

यह कोई दिवा-स्वप्न नहीं है । यज्ञ से प्रदूषण-निवारण में निश्चित और आशातीत सफलता मिलती है। पुणे के फर्ग्युसन कालेज के जीवाणु-शास्त्रियों ने प्रयोग के रूप में लगभग 10×7×3 मीटर के एक हाल में एक समय का अग्निहोत्र किया। फलस्वरूप 210 घन मीटर वायु में कृत्रिम रूप में निर्मित प्रदूषण का 77.5 प्रतिशत भाग समाप्त हो गया। उन्होंने यह भी देखा कि एक समय के होम से ही 96 प्रतिशत कीटाणु नष्ट होते है। पंजाब केसरी 13-2-83 अंक में छपा था कि अग्निहोत्र से मानसिक रूप से अविकसित बच्चों का बौद्धिक स्तर (आई.क्यू.) भी बढ़ गया। यज्ञ से मनुष्य के मन और विचार सुधरने से प्रदूषण फैलाने के कारणों में कमी होती है। स्वार्थ त्यागकर पर-हित साधनेवाला व्यक्ति जनहित-विरोधी कार्य करने से हिचकेगा और जान-बूझकर, दूसरों को छलकर या धोखे में रखकर कोई जनहित-विरोधी योजना नहीं सोचेगा।

2-12-1984 की भोपाल की गैस-रिसाव-दुर्घटना के समय होम के चमत्कारी प्रभाव के बारे में 'हिन्दू' समाचार-पत्र में श्री के. पी. नारायण ने लिखा था कि "33-वर्षीय श्री एम. एस. राठौर अपनी पत्नी, चार बच्चों, मां तथा भाई के साथ भोपाल रेलवे स्टेशन के निकट रहते थे। उस क्षेत्र में गैस के विष के फलस्वरूप दर्जनों व्यक्ति मर गए। गैस की जानकारी होते ही श्री राठौर अपने पूरे परिवार को बिठाकर यज्ञ करने लगे और मंत्रों के समाप्त होते ही 'त्र्यंबकं यज्ञ' (मृत्युंजय मंत्र से आहुतियां देना) शुरू कर दिया। इस परिवार पर गैस का कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ा। इसी प्रकार यज्ञ के कारण श्री एस. एल. कुशवाहा का परिवार भी दुष्प्रभाव से बच गया।"

निष्कर्ष यह है कि पर्यावरण-विज्ञान की शिक्षा संसार में छोटे-बड़े सबको मिलनी चाहिए और बच्चों की शिक्षा में इसे सम्मिलित करना अनिवार्य होना चाहिए। यही कल्याण का मार्ग है जिससे विश्व-शान्ति संभव है।

ओऽम् शान्तिः शान्तिः शन्तिः।

प्रभो यज्ञमय सार्थक जीवन भा-रत जन-जन पाए।
शान्ति व्यक्ति में, शान्ति राष्ट्र में, शान्ति विश्व में आए॥

नमूना सारणी 1

दिल्ली में वायु-प्रदूषण आई. टी. ओ. चौक. 01-02-99

पैमाना	अधिकतम सीमा		वास्तविक
	माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर		
सल्फर-डार्ड-आक्साइड	80		19
नाइट्रोजन-डाई-आक्साइड	80		58
धूल के कण	200		439
कार्बन-मोनो-आक्साइड	2000	(प्रातः 6 से दोपहर 2)	6484
		(दोपहर 2 से प्रातः 10)	8155
		(रात 10 से प्रातः 6)	5985

स्रोत :
केन्द्रीय प्रदूषण-नियंत्रण बोर्ड
दिल्ली।

□□

"शिक्षा जब पराई भाषा में दी जाती है तब केवल शब्दों को याद रखने का बोझ ही विद्यार्थी के दिमाग पर नहीं पड़ता, बल्कि विषय को समझने में भी उसे बड़ी कठिनाई होती है। यह तो स्पष्ट है कि जहां रटने की शक्ति बढ़ती है वहां समझने की शक्ति मन्द पड़ जाती है। हमारे मुल्क की संस्कृति एक ही है - यह हिन्दी संस्कृति है।"

- सरदार बल्लभ भाई पटेल

इन्टरनेट-एक और क्रांति

☐ अ.कु. गुप्ता

मानव सभ्यता के वर्तमान स्वरूप में कुछ महत्वपूर्ण खोंजों का बड़ा योगदान रहा है जैसे भाप का इंजन, बिजली, औद्योगिक क्रांति, कम्प्यूटर इत्यादि। इसके आगे समाज फिर एक क्रांति "इन्टरनेट" के दौर से गुजर रहा है। इंटरनेट हमारे जीवन के हर पहलू को प्रभावित करने वाला है। अगली शताब्दी में शिक्षा, व्यापार से लेकर मनोरंजन पद्धति भी इन्टरनेट के कारण, वर्तमान समय से काफी भिन्न होगी। इन्टरनेट के बढ़ते प्रभाव से समूचा विश्व एक बड़े गांव जैसा हो जाएगा। भौगोलिक दूरियां और राजनीति से परिभाषित राष्ट्र की सीमाएं काफी हद तक अपना अर्थ खो देंगी और इस नये स्वरूप में कम्प्यूटर हमारी जीवन पद्धति का एक अभिन्न अंग बन जाएगा।

इन्टरनेट क्या है ?

आइये देखें, आखिर इन्टरनेट है क्या? हम सभी जानते हैं कि कम्प्यूटर सूचनाओं के संवर्धन, आकलन और भंडारण का सबसे उपयुक्त साधन है। अगर विश्व के सारे कम्प्यूटर आपस में सूचनाओं का आदान-प्रदान कर सकें, तो बस "सोने में सुहागा" इस तरह आपस में जुड़े कम्प्यूटरों को "नेटवर्क" कहते हैं और विश्व-व्यापी स्तर के कम्प्यूटर नेटवर्क को ही इन्टरनेट का नाम दिया गया है, यानी इन्टरनेट के द्वारा विश्व भर की सूचनाएं आपके कम्प्यूटर पर उपलब्ध हो जाती हैं।

कम्प्यूटरों को आपस में जोड़ने के लिये विभिन्न प्रकार के माध्यमों का प्रयोग किया जाता है। जैसे टेलीफोन, उपग्रह संचार-परिपथ, को-ऐक्सियल केबल्स, प्रकाशकीय तंतु (आप्टीकल फाइबर), सूक्ष्म तरंगे (माइक्रो-वेव), आई. एस. डी. एन. (इन्टीग्रेटेड सर्विस डिजिटल नेटवर्क, जो कि एक नयी टेलीविजन व्यवस्था है।) इत्यादि। इन्टरनेट को, आमतौर पर उपलब्ध केबल टी. वी. नेटवर्क पर चलाने के प्रयासों में उल्लेखनीय सफलता मिली है। आशा है कि भविष्य में यह इन्टरनेट जन सामान्य तक पहुंच सकेगा। कम्प्यूटर-नेटवर्क के दो मुख्य उद्देश्य होते हैं। प्रमुख है सूचना विनिमय और दूसरा महंगे कम्प्यूटर उपकरणों का साझा प्रयोग। विभिन्न औद्योगिक व व्यावसायिक प्रतिष्ठानों, विश्वविद्यालयों एवं अनुसंधान केन्द्रों ने सत्तर के दशक से ही अपने-अपने नेटवर्क बनाने शुरू कर दिये थे। सन् 1969 में अमेरिका के रक्षा विभाग ने अपने विभिन्न प्रतिष्ठानों के कम्प्यूटर नेटवर्कों को आपस में जोड़ने की प्रक्रिया प्रारंभ की। इसका उद्देश्य सूचना का शीघ्र वितरण और सभी प्रतिष्ठानों के विकास कार्यों में एकरूपता लाना था और यही कम्प्यूटर नेटवर्कों को आपस में जोड़ने की प्रक्रिया इन्टरनेट में परिणित हुई। पिछले दशक में इस प्रक्रिया में बहुत तेजी आई और आज विश्व में लगभग एक करोड़ कम्प्यूटर इन्टरनेट के द्वारा आपस में सूचनाओं का आदान-प्रदान कर सकते हैं। सबसे मुख्य बात है, इन्टरनेट की सुरसा के मुख जैसी प्रसार गति। इन्टरनेट में जुड़े कम्प्यूटरों की संख्या लगभग साठ प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ रही है, अतः कुछ ही समय में विश्व की जनसंख्या के एक बड़े भाग को इन्टरनेट उपलब्ध होगा। अनुमानतः 81 देशों के 10 करोड़ लोग इन्टरनेट का सक्रिय इस्तेमाल करते हैं।

विशेषताएं:

आइये इन्टरनेट के इस दिन दूने रात चौगुने प्रसार के कारणों की कुछ विवेचना करें। जैसा कि पहले कहा गया है कि इन्टरनेट कम्प्यूटर नेटवर्कों का विश्व-व्यापी स्तर का नेटवर्क है। यह एक प्रकार की साझी दावत है। सभी अपने नेटवर्कों को आपस में जोड़ते चले गये और एक महा-नेटवर्क "इन्टरनेट" बन गया। इन्टरनेट किसी भी व्यक्ति, संस्थान या राष्ट्र-विशेष की संपत्ति नहीं है और न ही कोई व्यक्ति या संस्था विशेष इसे नियंत्रित करती है। वह एक सामुदायिक नेटवर्क (कम्युनिटी नेटवर्क) है जो किसी वाद या विचारधारा से नहीं जुडा है। इस स्वतंत्रता में ही "इन्टरनेट" की मूलभूत शक्ति निहित है। संक्षेप में, इन्टरनेट समाज, देश एवं राजनीति की सीमाओं से परे, वैचारिक स्वाधीनता का सच्चे रूप में परिचायक है और यही इन्टरनेट की सबसे बड़ी शक्ति है।

इन्टरनेट का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है, इसका बहुमाध्यमी (मल्टी-मीडिया) होना। इन्टरनेट पर सूचना के सभी रूपों का जैसे शब्द, ध्वनि, संगीत, चित्र एनीमेशन चलचित्र, वीडियो इत्यादि का समावेश किया गया और यही कारण है कि इन्टरनेट का

उपयोग आज एक के. जी. स्कूल के बच्चे से लेकर खाड़ी युद्ध तक में किया गया। इसके बहुमाध्यमी होने के कारण ही आज इन्टरनेट मुद्रित सामग्री की तुलना में व्यवसाय एवं विज्ञापन का सशक्त माध्यम बनता जा रहा है। आप इन्टरनेट पर घर बैठे किसी दूर स्थित चिड़िया घर की सैर कर सकते हैं। वहां के जानवरों की आवाज, उनके चित्र एवं क्रियाकलापों को अपने कम्प्यूटर पर इन्टरनेट के द्वारा देख सकते हैं।

मेरे विचार से इन्टरनेट की सफलता में, इसका संचार के सभी माध्यमों में सबसे प्रभावी और सस्ता होना भी बड़ा महत्वपूर्ण रहा है। इन्टरनेट एक सामुदायिक भावना से शुरू किया गया था अत: लाभ-हानि के गणित से परे रहा है। पूरे विश्व में ही इसे वहां की सरकारों, शिक्षा संस्थानों, अनुसंधान केन्द्रों के अनुदान से ही चलाया गया। इन्टरनेट प्रयोग करने वालों के बड़े भाग को यह सुविधा लगभग नि:शुल्क उनके नियोक्ता द्वारा उपलब्ध कराई गई है। इन्टरनेट की मूलभूत स्वतन्त्रता (वह भी बिना आर्थिक दबाव के) ने विश्व स्तर पर वैचारिक विनिमय के इस माध्यम को एक नया आयाम प्रदान किया।

कार्य पद्धति

अब थोड़ा सा गौर करें कि इन्टरनेट की कार्य पद्धति क्या है? जैसा कि पहले कहा गया कि यह एक कम्प्यूटरों का महा-नेटवर्क है। इसमें प्रत्येक कम्प्यूटर की पहचान एक 32 बिट (*bit*) संख्या से होती है। उसे उस कम्प्यूटर की आई.पी. संख्या कहते हैं। सुविधा के लिए इसे चार संख्याओं के सम्मिश्रण की तरह लिखा जाता है। यह कुछ हद तक वाहनों के नंबरों की तरह होता है। उदाहरणत: किसी कम्प्यूटर की आई.पी. संख्या 202.41.111.66 हो सकती है। इतनी बड़ी संख्या को याद रख पाना मुश्किल होता है अत: व्यावहारिक रूप से हर एक कम्प्यूटर का एक पता होता है और अधिकतर लोग किसी कम्प्यूटर को *access* करने के लिए पते का इस्तेमाल करते हैं। यह पता काफी छोटा होता है। उदाहरण के लिए *alpha cat ernet in* एक कम्प्यूटर का सम्पूर्ण पता है। यह भारत *in for India, earnet* नेटवर्क जिससे कट जुड़ा है, के अंदर अल्फा नाम के कम्प्यूटर का पता है। इन्टरनेट में प्रत्येक उपयोगकर्ता का भी का पता होता है। जैसे *Ram @ alpha cat.ernet. in.* इसमें *Ram* उपयोग कर्ता का अल्फा कम्प्यूटर पर उपयोग पहचान (*Us. er ld*) है। जैसा कि पहले बताया गया कि आंतरिक तौर पर प्रत्येक, कम्प्यूटर अपनी आई.पी. संख्या से ही जाना जाता है। अत: किसी कम्प्यूटर के नामों को उनकी आई.पी. संख्या में बदलने का काम भी करना होगा। यह काम इन्टरनेट का ही कोई कम्प्यूटर करता है और उसे नाम सेवक (*Name Server*) कहते हैं। इस कम्प्यूटर से कोई भी कम्प्यूटर, किसी कम्प्यूटर के नाम से संबंधित आई. पी. संख्या पूछ सकता है।

इन्टरनेट पर प्रत्येक संदेश को भेजने के लिए उसके छोटे-छोटे पैकिट (पुलिन्दा) बना लिये जाते हैं। हर पैकेट के साथ गंतव्य और स्रोत का पता भी होता है। इन सारे पैकिटों को नजदीक के *router* तक भेज दिया जाता है, जहां उनके गंतव्य स्थान के आधार पर छंटाई होती है और उन्हें उनके रूट के अनुसार आगे के कम्प्यूटर को प्रेषित कर दिया जाता है। उस तरह एक पैकिट बहुत सारे रूटरों से होते हुए अंततोगत्वा अपने गंतव्य तक पहुंच जाता है। गंतव्य कम्प्यूटर पर नेटवर्क साफ्टवेयर, एक संदेश के विभिन्न आए हुए पैकिटों को आपस में जोड़कर, उपयोगकर्ता को संदेश के रूप में प्रस्तुत कर देता है। इसको पैकिट स्वीचिंग (*Packet Switching*) कहते हैं और कुछ हद तक हमारी डाक व्यवस्था जैसी होती है। कुछ बड़े अंतर हैं दोनों में जैसे इन्टरनेट पर एक पैकिट विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक, 1-2 सैकण्ड या उससे भी कम समय में पहुंच जाता है। इन्टरनेट पर भी कुछ पैकिट, पत्रों की भांति खो जाते हैं, लेकिन इसकी जानकारी भेजने वाले कम्प्यूटर को तुरंत हो जाती है और खोया हुआ पैकिट पुन: भेजा जाता है।

इन्टरनेट सुविधाएं

इन्टरनेट की मूलभूत सुविधा फाइल स्थानांतरण है। इन्टरनेट पर उपलब्ध सभी उपयोगिताएं जैसे इलेक्ट्रॉनिक डाक (ई-मेल), फाइल स्थानांतरण (*ftp*), गोफर (*Gopher*), आर्ची (*Archie*), समाचार (*News*), सूची सेवक (*List Server*), विश्व-व्यापी जाल (*WWW*) सभी इसी के परिष्कृत रूप हैं। आइए एक नजर इन सभी पर डालें। इलेक्ट्रॉनिक डाक के द्वारा कोई भी संदेश एक कम्प्यूटर से दूसरे कम्प्यूटर तक, भेजा जाता है। यह संदेश कुछ ही देर में विश्व में कहीं भी पहुंच जाता है। संदेश के रूप में आप किसी भी सूचना माध्यम जैसे शब्द, चल-चित्र एवं ध्वनि इत्यादि का प्रयोग कर सकते हैं। फाइल स्थानांतरण "*ftp*" का प्रयोग करके आप कोई भी फाइल एक कम्प्यूटर से दूसरे कम्प्यूटर पर कापी कर सकते हैं।

इन्टरनेट की सबसे बड़ी उपयोगिता है, किसी जानकारी को ढूंढना। इन्टरनेट पर पूरे विश्व ने ज्ञान का अपरिमित भंडार एकत्र कर दिया है। इस ज्ञान के महासागर से आपके पास अपनी इच्छित जानकारी को ढूंढ पाना बहुत ही कठिन कार्य है। इस कार्य के लिए बहुत सारे साफ्टवेयर बनाए गए और इन्हें हम

(*Browsers*) कहते हैं। इनमें सबसे प्रमुख हैं विश्व-व्यापी जाल (*World Wide Web* या *www*), पुराने साफ्टवेयर आर्ची (*archie*) और गोफर (*gopher*) अब अपनी उपयोगिता खो चुके हैं। अत: हम मुख्य एवं लोकप्रिय की ही चर्चा करेंगे। *WWW* में सभी माध्यमों का समावेश किया गया है। *www* के लिये कोई भी दस्तावेज (*document*) एक विशेष कम्पयूटर भाषा (*HTML Hyper Test Media Language*) में तैयार किया जाता है। इसकी दो प्रमुख विशेषताएं हैं। पहला इन दस्तावेजों में चित्र, चल-चित्र, ध्वनि, शब्द इत्यादि सभी का समावेश किया जा सकता है। दूसरी महत्वपूर्ण बात है, एक दस्तावेज में दूसरे दस्तावेज के लिए कड़ी (*Link*) की सुविधा। उदाहरण के लिये आप प्रगत औद्योगिकी केन्द्र के बारे में जानकारी देख रहे हैं। इसमें एक शब्द आया "इन्दौर"। अगर आपको इन्दौर के बारे में विस्तृत जानकारी चाहिए तो आप शब्द "इन्दौर" को चयनित कर लीजिये। अब आप दूसरी दस्तावेज (जिसमें इन्दौर के बारे में जानकारी है) में पहुंच गये। इस तरह से आप एक से दूसरे संबंधित दस्तावेजों को बड़ी ही सुविधा के अनुसार पढ़ सकते हैं। ये आपसे में जुड़े हुए दस्तावेज, एक ही कम्प्यूटर पर या इन्टरनेट के विभिन्न कम्प्युटरों पर संग्रहित हो सकते हैं।

गौर से देखें तो पता चलता है कि इन कड़ियों के द्वारा संबंधित जानकारी, जो विश्व के विभिन्न कम्प्यूटरों पर उपलब्ध है, बड़ी ही सुविधा के साथ प्राप्त की जा सकती है। इस तरह सूचना के स्तर पर, विश्व के विभिन्न कम्प्यूटरों पर संग्रहित संबंधित सूचना का एक जाल बन जाता है और इसे ही हम विश्व व्यापी जाल या *www* कहते हैं। *www* के द्वारा हम बड़ी ही सुगमता से विश्व के एक कम्प्यूटर से दूसरे पर जा सकते हैं। इस तरह के विश्व भ्रमण को नेट सर्फिंग *(Net Surfing)* कहते हैं। इन्टरनेट के आभासी विश्व को *Cypher space* क्षेत्र कहते हैं। प्रकटन की सुविधा को इस्तेमाल करने के लिए अनेक कम्पनियों ने विभिन्न साफ्टवेयर बनाए हैं। इनमें नेट-स्केप नेवीगेटर, इन्टरनेट, एक्सप्लोर, मोजाइक इत्यादि प्रमुख हैं।

इन्टरनेट की और महत्वपूर्ण सुविधा है समाचार समूह *(News Group)*

-इन्टरनेट पर लाखों समाचार, पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं। इनको विषय के आधार पर समाचार समूहों में बांटा गया है। समाचार पत्र भविष्य में अत्यधिक लोकप्रिय होंगे क्यों कि इनमें समाचार तुरंत और बिना किसी सेंसर-बोर्ड से गुजरे हुए मिल जाते हैं। अगर आप किसी विषय विशेष पर समाचार-पत्र या कोई अन्य प्रकाशन शुरु करना चाहें तो इन्टरनेट बहुत ही उपयुक्त माध्यम है, न छपाई एवं वितरण के लिए बड़ी पूंजी की और न ही किसी की अनुमति की आवश्यकता । सूची सेवक *(List Server)* आपको किसी भी विषय में रुचि रखने वाले व्यक्तियों की सूची इत्यादि प्रदान करता है। एक और महत्वचूर्ण सुविधा है बातचीत *(Talk)* इसके द्वारा इन्टरनेट पर शाब्दिक और सामान्य दोनों ही तरह की बातचीत की जा सकती है। संगोष्ठी *(Chat)*की सुविधा भी उपलब्ध है।

नये आयाम

इन्टरनेट के आगमन से लगभग हर एक क्षेत्र में कुछ नए अध्यायों की शुरुआत होगी। जैसे घर बैठे ही शिक्षा, खरीदारी, व्यापार एवं आफिस कार्य सृजनात्मक कार्यों की गुणवत्ता में अत्यधिक विकास होगा क्यों कि किसी सृजन कार्य की समालोचना बहुत ही व्यापक स्तर पर एवं सहज ही हो जाएगी। विश्व स्तर की प्रतिस्पर्धा भी सृजन को नए आयामों तक पहुंचाएगी। इलेक्ट्रॉनिक व्यापार और इलैक्ट्रॉनिक मुद्रा विनिमय जैसे नये-नये तरीकें से सामने आ रहे हैं और लोग इन्हें बड़ी ही तेजी से अपना रहे हैं। इलेक्ट्रॉनिक मुद्रा जैसे *FVID* इत्यादि का प्रचलन भारत में भी शुरु होने जा रहा है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में दूर से ही उपचार *(Tele Treatment)*, मनोरंजन के क्षेत्र में सिनेमा, विश्व स्तर के कुछ खेल इत्यादि इन्टरनेट के कारण संभव हो सके हैं। समुदाय की परिभाषा भौगोलिक रूप से एक साथ रह रहे लोगों के स्थान पर समान रुचि और विचारधारा के लोगों से बदल जाएगी। इस तरह इन्टरनेट अगली शताब्दी का सूचना राजमार्ग होगा जो आपके शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन, समाचार, संचार, कला, व्यवसाय, इत्यादि में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा। इन्टरनेट एक तेज धार वाला औजार है। इसके दुरुपयोग की संभावनाएं भी प्रबल हैं। इनमें से इन्टरनेट पर उपलब्ध वैचारिक स्वतंत्रता का दुरूपयोग शुरु हो ही चुका है। इससे हमारे सामाजिक जीवन में भी कुछ गिरावट आने की आशंका से इंकार नहीं है। बहरहाल, इन्टरनेट तो एक औजार है, इसके विवेकपूर्ण प्रयोग का उत्तरदायित्व मानव समाज पर है। □□

(प्रगत प्रौद्योगिकी केंद्र की 'प्रगति' पत्रिका से साभार)

वाई2के : समस्याएं व समाधान

□ आर. पी. जोशी

आजकल जहां देखो वहीं "वाई 2 के" का शोर है। समाचार पत्र हो या पत्रिकाएं, रेडियो हो या टेलीवीजन, सभी पर "वाई 2 के" छाया हुआ है। आखिर क्या है "वाई 2 के" और क्यों है इससे संसार इतना परेशान ? आइए पहले "वाई 2 के" का शब्दिक अर्थ समझने का प्रयास करते हैं। यह शब्द तीन अक्षरों से मिल कर बना है। "वाई" से तात्पर्य है ईयर अर्थात् वर्ष। अब हमें "2 के" को साथ-साथ जोड़कर देखना होगा। कम्प्यूटर जगत में "के" से अभिप्राय होता है हजार। इस प्रकार "2 के" का अर्थ हुआ 2000 और पूरे तीन शब्दों का अर्थ हुआ "वर्ष 2000" ।

अब प्रश्न उठता है कि वर्ष 2000 में क्या होने जा रहा है? ऐसी कौन सी घटना घटने वाली है जिससे विश्व इतना सहमा हुआ है। इसको समझने के लिए हमें कम्प्यूटर इतिहास में कुछ पीछे जाना होगा। वस्तुतः सूचना प्रौद्योगिकी के प्रारंभिक वर्षों अर्थात् 1950 से 1960 के बीच कम्प्यूटर पर बहुत ही सीमित मैमोरी उपलब्ध होती थी जिस कारण उसे अधिक से अधिक बचाने के प्रयास किए जाते थे। इनको ध्यान में रखते हुए कम्प्यूटर विशेषज्ञों ने ऐप्लीकेशन साफ्टवेयर विकसित करते समय वर्ष के लिए चार अंकों की जगह अंतिम दो अंकों को ग्रहण करने की व्यवस्था अपनाई अर्थात् यदि हमें 5 मार्च, 1968 लिखना है तो कम्प्यूटर उसे 05.03.68 के रूप में स्टोर करेगा।

वर्ष के लिए दो अंकों की यह व्यवस्था अभी तक ठीकठाक चल रही थी। किन्तु वर्ष 2000 आते ही कम्प्यूटर में वर्ष के स्थान पर "00" स्टोर होना प्रारंभ हो जाएगा क्योंकि कम्प्यूटर को तो वर्ष के अंतिम दो अक्षर ही लेने हैं और यहीं से समस्या प्रारंभ होगी। कठिनाई यह है कि कम्प्यूटर "00" का अर्थ समझ नहीं पाएगा। वह यह अंतर नहीं कर पायेगा कि "00" वर्ष 1900 के लिए है अथवा वर्ष 2000 के लिए। इसी कारण बहुत सी गलतियां होने की संभावनाएं बनी रहेंगी। इसे एक उदाहरण से समझने का प्रयास करते हैं । हम सभी के बैंकों में खाते हैं। खातों में जमा राशि पर ब्याज भी दिया जाता है । मान लें कि वर्ष 1999 से वर्ष 2000 के बीच की किसी अवधि के लिए खाते में जमा राशि पर कम्प्यूटर को ब्याज की गणना करनी है। इस कार्य के लिए पहले कम्प्यूटर कुल अवधि की गणना करेगा जिसके लिए ब्याज देना है अर्थात् वर्ष 2000 की तारीख में से 1999 की तारीख को घटाना होगा। चूंकि कम्प्यूटर पर वर्ष के लिए केवल दो अंक प्रयोग किए जाते हैं अतः 00 में से 99 घटाना होगा जो गणित के नियमों के विपरीत है। अतः परिणाम अटपटे आ सकते हैं। इसके अलावा यह भी संभव है कि कम्प्यूटर "00" को फाइल का अंत मान कर कार्य करना बंद कर दे ।

यह समस्या केवल साफ्टवेयर ऐप्लीकेशन तक ही सीमित नही है। हम जानते हैं कि बहुत से इलैक्ट्रॉनिक उपकरणों में ऐसी चिप लगी होती है जिसमें तारीख, समय आदि की सूचना पहले से ही प्रोग्राम कर दी जाती है। ऐसी एम्बेडिड चिप माइक्रो ओवन, मैगनेटिक डोर, बैंक के वोल्ट, लिफ्ट, पेस मेकर, कार में प्रयोग की जाती है। कई बार यह चिप साफ्टवेयर एप्लीकेशन के साथ भी जोड़ दी जाती है। एप्लीकेशन पर कार्य करते समय कम्पयूटर समय व तारीख उक्त चिप से ग्रहण कर लेता है। अतः गणना में गलती हो सकती है तथा तिथियों को पहचानने में भी त्रुटियां संभव हैं। ऐसी चिप समस्याएं उत्पन्न कर सकती हैं। संभवतः वर्ष 2000 में ऐसी लिफ्टें आपरेट करना बंद कर दें, बैंकों के वाल्ट खुल न पाएं, ओवन और मैगनेटिक दरवाजे कार्य करना बंद कर दें।

इस प्रकार मेन फ्रेम कम्प्यूटर एवं पी. सी. आदि द्वारा चलाए जाने वाले एप्लीकेशन साफ्टवेयरों एवं ऐम्बेडिड चिप के कारण निम्नलिखित समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं :—

(1) बैंक लेन-देन में गड़बड़ी।
(2) बिजली, पानी, टेलीफोन आदि के बिलों का गलत आकलन।
(3) खातों के ब्याज एवं प्रीमियम आदि के आकलन में गड़बड़।
(4) सड़क, वायु एवं रेल आरक्षण प्रणाली में कठिनाई।
(5) भविष्य निधि, वेतन की गणना में कठिनाई।

राजभाषा विभाग (मुख्यालय), इण्डियन एयर लाइन्स लि. मुख्यालय, नई दिल्ली

यह कहना ठीक नहीं है कि उक्त समस्या वर्ष 2000 में ही आरंभ होगी। वर्ष 2000 प्रारंभ होने से पूर्व कुछ और भी तिथियां हैं जिन्हें पहचानने में कंम्प्यूटर गलतियां कर सकता है जो इस प्रकार हैं :—

1. 09-09-1999 से 10-09-1999 में जाने पर।

2. 31-12-1999 से 01-01-2000 में जाने पर।

3. 31-12-2000 से 01-01-2001 में जाने पर।

4. लीप वर्ष

9 सितंबर, 1999 की स्थिति में कम्प्यूटर 9-9-99 को फाईल का अंत मानकर कार्य करना बंद कर सकता है। इसी प्रकार 31-12-99 एवं 31-12-2000 को भी यही समस्या उत्पन्न हो सकती है। अमूमन यह माना जाता है कि लीप वर्ष वह होता है जो 4 से भाग हो जाए। वर्ष "1900" 4 से भाग हो जाता है फिर भी वह लीप वर्ष नहीं है। लीप वर्ष जानने के लिए शताब्दी वर्ष को 400 से भाग देना होता है। इसके अतिरिक्त वर्ष 2000 में फरवरी 29 दिन की न होकर 30 दिन की होगी। यदि कम्प्यूटर पर इस तरह से प्रोग्राम नहीं किया गया है तो 29 फरवरी के बाद कम्प्यूटर पर 1 मार्च, 2000 आयेगा जिससे गणनाओं में गलतियां होंगी।

"वाई 2 के" से प्रभावित कम्प्यूटर निम्नलिखित गलतियां कर सकता है :—

1. "00" को वर्ष के रूप में न पहचानने से कम्प्यूटर कार्य करना बन्द कर सकता है।

2. गणना में गलतियां हो सकती हैं।

3. लीप वर्ष की गणना में चूक हो सकती है।

4. सप्ताह के दिन तथा तारीख का सामंजस्य बिगड़ सकता है। कई एप्लीकेशन इस प्रकार के होते हैं कि उसमें दी गई तिथि तथा दिन की जानकारी मांगी जाती है। मसलन किसी पार्टी को आज की तारीख से 180 दिन बाद भुगतान करना है। लीप वर्ष की चूक के कारण संभव है कि कम्प्यूटर 180वें दिन की तारीख व सप्ताह के दिन को गलत दर्शाए।

5. वर्ष से संबंधित कोई सूचना यदि अवरोही या आरोही क्रम में लेनी है तो वर्ष के लिए 2 अंक होने के कारण कम्प्यूटर "00" को सबसे छोटा अंक मानकर उसे पहले व्यवस्थित कर सकता है। जैसे यदि हमें कोई सूचना वर्ष 2000 में पिछले 10 वर्षों के लिए क्रमबद्ध रूप में चाहिए तो कम्प्यूटर इस प्रकार क्रम को व्यवस्थित कर सकता है :— 99, 98, 97 . . . . 91,00। यहां "00" वर्ष 2000 है।

निम्नलिखित क्षेत्र इस समस्या से प्रभावित हो सकते हैं:—

1. ऐसे उद्योग जिनमें कम्प्यूटरों का उपयोग बड़ी मात्रा में किया जाता है।

2. वित्तीय संस्थान।

3. क्रेडिट कार्ड कंपनियां।

4. पॉवर ग्रिड।

5. टेलीफोन उद्योग।

6. रेलवे एवं नागर विमानन।

7. रक्षा क्षेत्र।

8. अंतरिक्ष विज्ञान।

"वाई 2 के" समस्या के निदान के उपाय निम्नलिखित हो सकते हैं :—

(1) वर्ष के कॉलम को 2 अंकों के स्थान पर 4 अंकों का कर दिया जाए। वस्तुत: कम्प्यूटर में डाटा बैंक होता है तथा साफ्टवेयर के माध्यम से डाटा बैंक की सूचनाओं को प्रोसेस किया जाता है। अत: तिथि को 2 अंकों से 4 अंकों का करते समय पहले तो डाटा बैंक के वर्ष संबंधी पिछले सभी आंकड़ों को बदलना होगा तत्पश्चात् प्रोग्राम को भी उसी के अनुसार बदलना होगा।

(2) **विंडोइंग तकनीक**

वस्तुत: यह तकनीक उन क्षेत्रों में अपनाई जा सकती है जहां आंकड़ों का ब्यौरा 100 वर्ष से कम रखा जाता है। इस तकनीक में वर्ष के लिए दो अंक ही रखे जाते हैं। मान लें कि आंकड़ें 1 जनवरी, 1960 से 31 दिसंबर, 2059 के बीच के 100 वर्ष के लिए रखे जाने हैं तो कम्प्यूटर पर निम्नलिखित प्रोग्रामिंग करके समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है :—

(*i*) $XY60=19XY$

(*ii*) $XY59=20XY$

यहां *XY* का अर्थ वर्ष से है। यदि वर्ष 60 के बराबर या उससे बड़ा है तो उसे सन् 1900 मान लिया जायेगा और यदि वर्ष 59 के बराबर या उससे छोटा है तो उसे सन् 2000 माना जायेगा। अधिकतम कम्प्यूटरों पर इसी विधि का प्रयोग किया जा रहा है। यह एक अस्थाई व्यवस्था है। इससे केवल कुछ समय के लिए ही समस्या का निदान होगा। 50 वर्ष बाद यह समस्या पुन: सामने आ जायेगी।

(3) वर्ष 1972 का कैलेण्डर वर्ष 2000 के समान है। अत: सिस्टम क्लॉक को 28 वर्ष पीछे ले जाकर 1972—2000 किया जा सकता है। इस व्यवस्था में 28 वर्ष के टाईम ब्रिज का उपयोग किया जा सकता है।

(4) पूरे सिस्टम को बदल दिया जाए।

(5) कुछ भी न किया जाए।

वस्तुत: विश्व पहली बार "वाई 2के" समस्या का सामना कर रहा है। अत: कोई भी यह निश्चित रूप से नहीं कह सकता है कि वास्तव में विश्व के सम्मुख क्या-क्या समस्याएं आने वाली हैं। फिलहाल तो केवल सम्भावनाओं की पहचान कर उन्हें दूर करने के प्रयास किए जा रहे हैं। कम्प्यूटर इस जगत के लिए एक अभिशाप सिद्ध होगा या वरदान, यह जानने के लिए हमें वर्ष 2000 तक इंतजार करना होगा।

इंटरनेट पर भी "वाई 2के" के संबंध में सूचनाएं उपलब्ध हैं। अधिक जानकारी के लिए *www.y2k.com.* या *www. year 2000. com.* या *www.mitre.org.com.* से सूचना प्राप्त की जा सकती है।

□□

2226 HA/99—3A

इंग्लैंड में अंग्रेजी कैसे लादी गई ?

☐ जगदीश प्रसाद ढौंडियाल

अंग्रेजी आज भारत के अभिजात्य वर्ग की भाषा है, जबकि हिन्दी सबसे अधिक व्यक्तियों द्वारा बोली व लिखी जाती है। आज भारत में जो स्थिति हिंदी की है, वही स्थिति 12-13वीं शताब्दी में इंग्लैंड में अंग्रेजी की थी। तब इंग्लैंड के अभिजात्य वर्ग की भाषा फ्रेंच मानी जाती थी तथा अंग्रेजी देहातियों और अनपढ़ों की भाषा मानी जाती थी।

मानना होगा कि देशभक्त अंग्रेजों ने फ्रेंच भाषा का वर्चस्व अधिक समय तक स्वीकार नहीं किया उन्होंने फ्रेंच और लैटिन को उखाड़ फेंका तथा अंग्रेजी का सम्यक विकास करने में जी जान से जुट गए। इंग्लैंड के सभी कार्यकलापों में अंग्रेजी का ही प्रयोग करने से अंग्रेजी इतनी अधिक विकसित हो गई कि विश्व की सर्वश्रेष्ठ भाषाओं के समकक्ष आ बैठी। इस भाषा के इसी विकास के कारण यह भारत की राष्ट्रभाषा और अन्तर्राष्ट्रीय भाषा समझी जाने लगी और इसीलिए इसके सामने हिंदी तो क्या फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश, रूसी, चीनी और जापानी जैसी समृद्ध भाषाओं को भी इतना महत्व नहीं दिया जाता है।

किसी समय इंग्लैंड में भी फ्रेंच के प्रति उतना ही मोह था, जितना आज भारत में अंग्रेजी के प्रति है। निरन्तर प्रयोग और विकास से यदि अंग्रेजी भाषा अन्तरराष्ट्रीय भाषा बन सकती है, तो वही मार्ग अपनाकर क्या हिंदी अंग्रेजी के समकक्ष नहीं आ सकती? इसके लिए हमें अनुवाद का दमघोटू मार्ग छोड़कर सर्वत्र हिंदी प्रयोग का मार्ग अपनाना होगा। अंग्रेजों ने फ्रेंच का मायाजाल किस प्रकार काटा? उन्होंने अपनी अविकसित अंग्रेजी भाषा को किस प्रकार प्रतिष्ठा प्रदान की?

ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में नार्मण्डी के नार्मनों ने इंग्लैंड पर कब्जा कर लिया तो फ्रेंच भाषा का बोल-बाला हो गया। इंग्लैंड के रईस, शिक्षक, पादरी, और प्रशासक सभी फ्रेंच पढ़ने लगे। सभी सरकारी कामकाज फ्रेंच में होने लगा। इस प्रकार इंग्लैंड फ्रेंच भाषा के माया जाल में डूब गया और वहां फ्रेंच भाषा का वर्चस्व निरंतर बना रहा। उन दिनों अंग्रेजी के विरुद्ध फ्रेंच भाषा के पोषक अंग्रेज बिलकुल वही तर्क प्रस्तुत करते थे, जो आज के हिंदी विरोधी हिंदी के विरुद्ध अंग्रेजी का वर्चस्व बनाए रखने के लिए तर्क देते हैं। जब यह निर्णय लिया गया कि इंग्लैंड की भाषा अंग्रेजी होनी चाहिए तो फ्रेंच संस्कृति से अभिभूत अंग्रेजी के अभिजात्य वर्ग ने इसका कड़ा विरोध किया। अंग्रेजी जैसी गवारू भाषा में वे बातचीत करना अपनी शान के खिलाफ समझते थे। अंग्रेजी उन दिनों किसानों, मजदूरों, नौकरों और भिखारियों की भाषा मानी जाती थी और उदंडता का पर्याय थी।

इंग्लैंड से फ्रेंच शासन समाप्त हुआ पर फ्रेंच का दबदबा बना रहा। फ्रेंच भाषा, फ्रेंच संस्कृति की श्रेष्ठता से अभिभूत इंग्लैंड के राजकुमार और रईसजादे बड़े चाव से पेरिस जाकर फेंच भाषा और संस्कृति का अध्ययन करते थे। वस्तुत: तब यूरोप भर में फ्रेंच की धूम मची थी। अंग्रेजी साहित्य की तुलना में फ्रेंच साहित्य अत्यन्त समृद्ध था। ज्ञान प्राप्ति का माध्यम फ्रेंच ही थी। अत: अंग्रेजों द्वारा अंग्रेजी की निरन्तर उपेक्षा होती रही।

अन्तत: चौदहवी शताब्दी में हालात बदले। सन् 1337 से 1453 तक इंग्लैंड और फ्रांस के बीच युद्ध हुए, जिसके फलस्वरूप शत्रु भाषा के रूप में फ्रेंच का निरादर और स्वभाषा के रूप में अंग्रेजी का आदर होने लगा। दूसरी ओर निम्न और मध्यम वर्ग के लोगों में जागृति पैदा हो रही थी। वे फ्रेंच के स्थान पर अंग्रेजी लाने के लिए संघर्ष करने लगे। परिणामत: सन् 1463 में "स्टेच्यूट ऑफ प्लीडिंग एक्ट" पास हुआ, जिसके अनुसार अदालतों में अंग्रेजी के प्रयोग की स्वीकृति मिल गई। इसका कड़ा विरोध हुआ। अनेक जजों और वकीलों ने कहा विधि और न्याय के क्षेत्र में अंग्रेजी में पुस्तकें तो हैं नहीं, फिर बहस अंग्रेजी में कैसे होगी, अंग्रेजी में निर्णय कैसे दिए जायेंगे। परन्तु इसके बावजूद अंग्रेजी सरकारी कामकाज और न्यायालय की भाषा बन गई, हालांकि कामकाज फ्रेंच में ही होता रहा। चौदहवीं शताब्दी में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के कुछ प्रोफेसरों ने दौड़-धूप और कठिन परिश्रम करके अंग्रेजी पाठ्य पुस्तकें तैयार की, जिससे अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने का निर्णय कार्यान्वित किया जा सका।

सोलहवीं शताब्दी में लोग अंग्रेजी को प्रश्रय देने लगे। यद्यपि कुछ कट्टरपंथी अब भी फ्रेंच वर्चस्व के पक्षधर थे। फ्रेंच

2226 HA/99—3B

वर्चस्व के पक्षधरों में जॉन वर्टन ने तीन प्रमुख तर्क प्रस्तुत किए थे। प्रथम—फ्रेंच आंतरिक और अन्तर्राष्ट्रीय संचार का सशक्त माध्यम है, द्वितीय—कला, विज्ञान, वाणिज्य, विधि और प्रशासन के क्षेत्रों में मानक पुस्तकें फ्रेंच में उपलब्ध है, तृतीय—इंग्लैंड के प्रेमी-युगल अपना प्रेम प्रदर्शन फ्रेंच भाषा में ही करते हैं। इन तर्कों के उत्तर में देशभक्त अंग्रेजों का कहना था हम मानते हैं कि फ्रेंच, लैटिन और ग्रीक की तुलना में अंग्रेजी भाषा और सहित्य नगण्य है, तुच्छ है, हेय है,पर, फिर भी अंग्रेजी हमारी अपनी भाषा है। क्या हम अपनी मां का तिरस्कार इसलिए करेंगे कि अन्य लोगों की माताएं अधिक सुन्दर और संपन्न है। इसी सोच को लेकर उन्होंने अंग्रेजी को शिखर पर बैठाने की ठान ली।

सन् 1552 में एक अंग्रेजी के कवि ने कहा था—

मैं रोम को अवश्य प्यार करता हूं,
पर लन्दन को इससे भी अधिक चाहता हूं;
मैं इटली को समर्थन देता हूं,
पर इंग्लैण्ड को इससे भी ज्यादा समर्थन देता हूं।
मैं लैटिन का आदर करता हूं,
पर अंग्रेजी की पूजा करता हूं।

स्वभाषा के पुजारियों ने इस प्रकार तर्क को चुनौती न देकर हृदय की भावनाओं को, अंग्रेजों की उत्कट देश-भक्ति को उभारा और अन्ततः सफल रहे। सोहलवीं शताब्दी के अन्त तक कट्टरपंथी भी नरम पड़ गए। अंग्रेज़ी का विरोध कम हो गया। सहत्रवीं शताब्दी के आरम्भ तक अंग्रेजो ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि वे अपना सारा कामकाज अंग्रेजी में ही करेंगे।

सबसे पहले शब्दावली की समस्या पैदा हुई। उदाहरण के लिए तब प्रशासन के क्षेत्र में मात्र किंग और क्वीन ही अंग्रेजी के शुद्ध शब्द थे। गवर्नमेण्ट, क्राउन, स्टेट, एम्पायर, रॉयल, पार्लियामेंट, असेम्बली, स्टेच्यूट, मेयर, प्रिंस, ड्यूक, मिनेस्टर, मैडम आदि अनेक शब्द फ्रेंच से लिए गए।

और तो और दैनिक प्रयोग के शब्द ड्रेस, फैशन, कॉलर, वटन, डिनर, फिश, टोस्ट, बिस्कुट, क्रीम, ऑरेंज जैसे अनेक शब्द फ्रेंच से लिए गए। "ए हिस्टरी ऑफ इंगलिश लैंगुएज" के अनुसार फ्रेंच से लगभग दस हजार शब्द लिए गए। सभी अन्य भाषाओं जैसे जर्मन, स्पेनिश लैटिन आदि को मिलाकर पचास हजार से भी अधिक शब्द लिए गए।

विदेशी शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए पारिभाषिक शब्दावलियां तैयार की गईं। उदार दृष्टिकोण अपना कर कहा गया कि सतत प्रयोग से विदेशी शब्द भी अंग्रेजी सांचे में ढल जाएंगे और ऐसा हुआ भी। सन् 1755 में डाक्टर जॉनसन ने अंग्रेजी भाषा के अपने प्रमाणिक शब्दकोश में इन सभी शब्दों का समावेश कर लिया और इस तरह इन पर अंग्रेजी शब्द होने का लेबल लग गया।

भारत में हिन्दी को अंग्रेजी का स्थान लेना है तो उसे भी कुछ ऐसा ही करना पड़ेगा। हमें अंग्रेजी से ही नहीं संविधान की अनुसूची 8 में दी गई मराठी, उर्दू, गुजराती, तमिल, बंगला, उड़िया, पंजाबी आदि भाषाओं से शब्द लेकर उन्हें हिन्दी के सांचे में ढालना होगा और भाषाई परहेज से बचना होगा, अन्य कोई उपाय नहीं है।

देश के प्रसिद्ध साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने निम्न कथन में अति सुन्दर ढंग से स्वभाषा की अभिव्यक्ति को प्रस्तुत किया है—

"निज भाषा उन्नति अहे, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल॥"

□□

(गृह मंत्रालय के जनगणना निदेशालय द्वारा प्रकाशित जनगणना संदेश (प्रथम संस्करण) से साभार)

"राष्ट्र के एकीकरण के लिए सर्वमान्य भाषा से अधिक बलशाली कोई तत्त्व नहीं। मेरे विचार में हिन्दी ही ऐसी भाषा है।"

लोकमान्य तिलक

हिंदी वर्तनी : विवाद एवं भ्रम के मुद्दे

□ डॉ० रवि शर्मा

हिंदी भाषा का प्रयोग करने वालों की संख्या आज विश्व में तीसरे स्थान पर है। केवल चीनी और अंग्रेजी भाषा के प्रयोगकर्ता ही हिंदी से अधिक हैं। हिंदी संस्कृत की बेटी है जो हजारों सालों के लंबे समय में वैदिक संस्कृत-लौकिक संस्कृत-पाली, प्राकृत, अपभ्रंश के शौरसैनी रूप से होते हुए, खड़ी बोली के माध्यम से विकसित हुई। भाषा व्याकरण की रीढ़ होती है, जैसे बिना रीढ़ के कोई व्यक्ति सीधा खड़ा नहीं हो सकता, उसी प्रकार बिना व्याकरण के ज्ञान के किसी भाषा पर अधिकार संभव नहीं है। आज हिंदी भारत की राजभाषा, राष्ट्रभाषा, राज्यभाषा तथा मातृभाषा चारों रूपों में प्रयुक्त होने के साथ-साथ विश्वभाषा बनने की ओर अग्रसर है। ऐसे में, उन लोगों के सामने जो मूलत: हिंदी भाषी नहीं हैं, हिंदी वर्तनी तथा व्याकरण में अनेक ऐसे मुद्दे आ खड़े होते हैं, जिन पर पर्याप्त भ्रम तथा विवाद हैं। ये भ्रामक तथा विवादास्पद बिंदु, हिंदी के विकास के मार्ग में बाधक हैं। अत: आज आवश्यकता है कि इन बिंदुओं पर विद्वानों में निरंतर विचार-विनिमय, चर्चा तथा चिंतन हो। ऐसे बिंदुओं को न्यूनतम किया जाए तथा कुछ ऐसे सुधार किए जाएं, जो कि बहुमत को स्वीकार्य हों। इसी प्रकार के कुछ बिंदुओं को इस लेख के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है। इनके संबंध में सुझाए गए सुधार, केवल सुझाव मात्र हैं, जिन पर भविष्य में विद्वान विचार करें।

सर्वप्रथम तो हिंदी की वर्णमाला में वर्णों की संख्या के संबंध में ही बहुत विवाद है। विद्यालय में बच्चों को पढ़ाई जाने वाली व्याकरण की पुस्तकों में यह अनेकरूपता विद्यमान है। कुछ पुस्तकों में वर्णों की संख्या 47 है तो कुछ में 44, 46, 49 या कुछ और। सबसे पहले तो यह तय किया जाए कि हिंदी वर्णमाला में स्वर और व्यंजन के अतिरिक्त अयोगवाह, अर्थात् अनुस्वार, अनुनासिक तथा विसर्ग को शामिल किया जाए अथवा नहीं। इसके साथ ही, यह भी देखना चाहिए कि संयुक्त व्यंजन वर्णमाला का हिस्सा हैं या नहीं। केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली, जो हिंदी के मानकीकरण का कार्य भी करता है, द्वारा प्रकाशित 'मानक हिंदी वर्तनी' नामक पुस्तिका में मानक हिंदी वर्णमाला के अंतर्गत 11 स्वर, 3 अयोगवाह, 36 व्यंजन, 4 संयुक्त व्यंजन तथा 4 गृहीत स्वर दर्शाए गए है। इस वर्णमाला में 'गागर में सागर' भरने का जो प्रयास हैं, वह कहीं-कहीं अति उत्साह के कारण भ्रम को बढ़ाने वाला भी हो गया है, जैसे य र ल व के सामने 'ल' का एक अन्य रूप 'ळ' भी लिखा है, जो परिवर्धित देवनागरी वर्णमाला में तो जंचता है मगर मानक में नहीं, क्योंकि हिंदी भाषी प्रदेशों में 'ल' के इस रूप (ळ) का प्रयोग प्राय: प्रचलित नहीं है। इसी प्रकार, आज भी विद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली व्याकरण की अधिसंख्य पुस्तकों में 'ड़ ढ़' को वर्णमाला में स्थान नहीं दिया जाता। संयुक्त व्यंजनों को वर्णमाला में गिनने के प्रश्न पर भी मतवैभिन्न्य विद्यमान है। इसी के साथ संयुक्त व्यंजनों की संख्या 3 मानी जाए या 4 या अधिक, यह भी विचारणीय बिंदु है। क्या द्व, द्र, ध, द्ध, ह्म, ह्य आदि को संयुक्त व्यंजन नहीं माना जाता? यदि ये भी संयुक्त व्यंजन हैं तो इन्हें भी वर्णमाला में स्थान देना चाहिए। इसी प्रकार हिंदी का सर्वाधिक भ्रामक वर्ण 'श्र' हालांकि संयुक्त व्यंजन नहीं है, किंतु इसका यह रूप बच्चों क्या, बड़ों-बड़ों को परेशान कर देता है। इन्हीं कारणों से हिंदी वर्णमाला में वर्णों की संख्या को लेकर विवाद तथा भ्रम बना हुआ है। इस लेखक के मत में हिंदी वर्णमाला के वर्णों की संख्या को अनावश्यक रूप से बढ़ाना उचित नहीं है, विशेषकर 8-9 वर्ष की आयु के बच्चे के लिए तो कतई नहीं। वैसे हीं, अंग्रेजी के 26 वर्णों की तुलना में, हिंदी में, आधे से भी अधिक अर्थात् 18 वर्ण पहले ही ज्यादा हैं। उसमें अयोगवाह, संयुक्त व्यंजन आदि शामिल न किए जाएं तो बेहतर रहेगा। उच्च माध्यमिक स्तर पर ये अतिरिक्त जानकारियां दी जा सकती हैं। इस संबंध में एक और सुझाव भी है कि प्राथमिक स्तर पर बच्चे को क वर्ग तथा च वर्ग के पंचमाक्षर (ङ, ञ) का ज्ञान न दिया जाए क्योंकि इनसे न तो कोई शब्द स्वतंत्र रूप से आरंभ होता है और न ही ये वर्ण स्वतंत्र रूप से किसी शब्द में प्रयोग होते हैं। इनके स्थान पर 'ड़' तथा 'ढ़' का ज्ञान दिया जा सकता है क्योंकि ये स्वतंत्र रूप से शब्दों में प्रयोग होते तथा अर्थ परिवर्तित कर देते हैं जैसे कंडा-कड़ा, बाड़-बाढ़, पंडा-पंड़ा, पड़ा-पढ़ा आदि।

डब्ल्यू जैड-1987, रानी बाग, दिल्ली-34

इस प्रकार, निष्कर्षत: हिंदी की वर्णमाला में 11 स्वर तथा 33 व्यंजन कुल 44 वर्ण ही स्वीकार किए जाने चाहिए। विद्यालय स्तर की व्याकरण की प्राय: सभी पुस्तकों में स्वर के तीन भेद- ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत बताए जाते हैं। साथ ही 11 स्वरों को 4 ह्रस्व तथा 7 दीर्घ में बांट दिया जाता है। ऐसे में, बच्चे के बाल मस्तिष्क में यह प्रश्न उठता है कि जब 11 के 11 स्वर दो भेदों में ही बंट गए, तो प्लुत स्वर कौन से हुए? वह यह प्रश्न पूछ नहीं पाता तथा प्लुत स्वर के बारे में यह जान कर ही संतुष्ट हो जाता है कि यह ओउम में प्रयोग होता है; ऐसे में व्याकरण की पुस्तकों में स्वर के दो भेद ह्रस्व तथा दीर्घ ही लिखे जाने चाहिए तथा प्लुत के संबंध में यह बताना चाहिए कि यह स्वर का कोई स्वतंत्र भेद न होकर किसी भी स्वर की विषेष स्थिति है, जिसमें इसे लंबे समय तक उच्चरित किया जाता है, जैसे ओउम, हेऽऽ राऽऽम आदि में। इसी प्रकार अंग्रेजी से आगत नई ध्वनि 'ऑ' को भी व्याकरण पुस्तकों में अलग से बताया जाए, तभी ऑफिस, कॉलेज आदि का शुद्ध प्रयोग संभव होगा।

वर्णमाला में वर्णों की संख्या के पश्चात् दूसरा भ्रामक बिंदु है—कुछ वर्णों का रूप। समय के साथ-साथ अनेक वर्णों का रूप परिवर्तित हुआ है, जिसे हिंदी में स्वीकार किया गया है। ये सभी परिवर्तित रूप अभी भी पूरी तरह लोकप्रिय तथा जन-स्वीकार्य नहीं हुए हैं। ये मानक रूप इस प्रकार हैं—

अमानक अथवा पूर्व प्रचलित रूप—अ, रव, भ्क, रा, ध, भ, ळ, ह्न, क

मानक अथवा वर्तमान रूप—अ, ख, झ, ण, ध, भ, ल, क्ष, क्र

कुछ प्राचीन टंकण मशीनों तथा परंपरावादी विद्वानों द्वारा, अभी भी पूर्वप्रचलित रूपों का ही प्रयोग किया जा रहा है। इसी प्रकार--गये, आये, नयी, गयी, चाहिये, जायेंगे आदि के स्थान पर गए, आए, नई, गई, चाहिए, जाएंगे आदि का प्रयोग आज समय की बचत, लेखन सुविधा तथा उच्चारण की दृष्टि से स्वीकार कर लिया गया है। केन्द्रीय हिंदी निदेशालय ने भी अपनी 'मानक हिंदी वर्तनी' में इसे स्वीकृति दी है। इस संबंध में यह ध्यान रखना चाहिए कि श्रुतिमूलक ये यी के स्थान पर ए ई का स्वरात्मक परिवर्तन वहीं किया जाएगा, जहां य का श्रुतिमूलक व्याकरणिक परिवर्तन अर्थात् गया से गये, गयी, नया से नये, नयी हुआ हो। जहां श्रुतिमूलक व्याकरणिक परिवर्तन न होकर, शब्द का ही मूल तत्व हो, वहां इस स्वरात्मक परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है, जैसे स्थायी, अव्ययी भाव, दायित्व आदि के स्थान पर स्थाई, अव्यई भाव, दाइत्व नहीं लिखा जाएगा।

अनुस्वार तथा अनुनासिकता चिह्न का प्रयोग भी अनेक विवाद तथा भ्रम उपस्थित करता है। आजकल अनुस्वार का बढ़ता प्रयोग कई विद्वानों को अखरता है, उसी प्रकार अनुनासिकता चिह्न का घटता प्रयोग भी भ्रम बढ़ाता है। अक्सर बच्चे पंचमाक्षर के शुद्ध ज्ञान के अभाव में कन्गन, कन्चा, दन्ड आदि लिखते हैं जो कि अशुद्ध हैं। इसी प्रकार पङ्कज, कञ्चन आदि लिखने में स्थान तथा समय का अपव्यय होता है, टंकण गति कम होती है तथा इनका शुद्ध प्रयोग न करने पर अशुद्धियों के बढ़ने की भी आशंका रहती है, इसलिए अनुस्वार के प्रयोग को बढ़ावा दिया जा रहा है। अनुस्वार का कहां प्रयोग किया जाए और कहां नहीं, इस संबंध में नियम बिल्कुल स्पष्ट हैं, किंतु उनकी जानकारी के अभाव में, कई बार पढ़े-लिखे लोग भी परेशान होते देखे गए हैं। नियम यह है कि संयुक्त व्यंजन के रूप में जहां पंचमाक्षर के बाद स्ववर्गीय शेष चार वर्णों में से कोई वर्ण हो तो एकरूपता और मुद्रण/लेखन की सुविधा के लिए अनुस्वार का ही प्रयोग करना चाहिए, जैसे—पंकज, कंचन, दंड, संध्या, संपादक आदि में पंचमाक्षर के बाद उसी वर्ग का वर्ण आगे आता है, अत: पंचमाक्षर के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग होगा, स्वररहित पंचमाक्षर पङ्कज कञ्चन, दण्ड, सन्ध्या, सम्पादक का नहीं। इसी संबंध में, यह भी ध्यान रखा जाए कि यदि पंचमाक्षर के बाद किसी अन्य वर्ग का कोई वर्ण आए अथवा वही पंचमाक्षर दुबारा आए, तो पंचमाक्षर अनुस्वार के रूप में परिवर्तित नहीं होगा। उदाहरण के लिए वाङ्मय, वन्य, अन्न, सम्मान, चिन्मय, उन्मत्त आदि को वांमय, वंय, अंन, संमान, चिंमय, उमंत के रूप में नहीं लिखा जा सकता। अनुस्वार के संबंध में एक भ्रम यह है कि अंश, संस्कृति जैसे शब्दों में यह अनुस्वार किस पंचम वर्ण के स्थान पर लगा है क्योंकि उष्म व्यंजनों में पंचम वर्ण होता ही नहीं।

अनुनासिकता चिह्न अर्थात् चंद्रबिंदु का प्रयोग संस्कृत में नहीं मिलता। संस्कृत में जिन शब्दों में अनुस्वार का प्रयोग होता था, हिंदी में उनके तद्भव रूपों में कहीं-कहीं अनुनासिकता चिह्न लगाया जाता है, जैसे दंत से दाँत, पंच से पाँच, चंद्र से चाँद आदि। आजकल टंकण एवं मुद्रण की सुविधा को ध्यान में रखते हुए चंद्रबिंदु का प्रयोग कम किया जा रहा है। परिणामस्वरूप नियमों में ढील देते हुए, यह स्वीकार किया गया है कि जहां चंद्रबिंदु के प्रयोग से छपाई आदि में बहुत कठिनाई हो (विशेषकर शिरोरेखा के ऊपर जुड़ने वाली मात्रा के साथ) तथा चंद्रबिंदु के

स्थान पर बिंदु (अनुस्वार चिह्न) का प्रयोग किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न न करे, वहां चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु के प्रयोग की छूट दी जा सकती है, जैसे—नहीं, में, मैं आदि। मगर जहां चंद्रबिंदु के बिना भ्रम होता हो जैसे हंस-हँस, अंगना-अँगना आदि में, वहां चंद्रबिंदु का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए। इसी प्रकार कविता आदि में छंद की दृष्टि से तथा छोटे बच्चों की प्रवेशिका में चंद्रबिंदु का उच्चारण सिखाने के लिए, इसका यथास्थान प्रयोग किया जाना चाहिए, जैसे—मां, में, मैं, नहीं आदि।

हिंदी के वर्णों के अंतर्गत ही दो नई ध्वनियाँ (नई इसलिए कि ये संस्कृत में प्रयोग नहीं होती थी) ड़ तथा ढ़—भी अत्यंत कठिनाई उत्पन्न करती हैं। कई पुस्तकों में तो अभी इन्हें वर्णमाला में स्वीकार भी नहीं किया गया, जबकि ये दोनों ध्वनियाँ अत्यधिक प्रचलित हो चुकी हैं। ड़ तथा ढ़ भ्रम इसलिए पैदा करती हैं कि इनके उच्चारण तथा लेखन रूप में सूक्ष्म अंतर हैं। ऊपर से देखने पर ड-ड़ तथा ढ-ढ़ में विशेष अंतर दिखाई नहीं देता, मगर पंडा-पड़ा, गड्ढा-गड़ा, बाड़-बाढ़, बड़ा-बढ़ा, पड़ा-पढ़ा पीड़ी-पीढ़ी, कड़ाई-कढ़ाई-कड़ाही आदि में अर्थ की दृष्टि से बहुत अंतर है। इस संबंध में यह भी ध्यान देने योग्य है कि ड, ढ, शब्द के आदि मध्य और अंत—तीनों स्थानों पर प्रयुक्त होते हैं, जबकि ड़, ढ़ केवल मध्य और अंत में। इसका अर्थ यह है कि ड़ तथा ढ़ से कोई भी शब्द प्रारंभ नहीं होता।

हिंदी में अनेक विदेशी भाषाओं से शब्द आते रहे हैं, मगर सर्वाधिक शब्द अरबी-फ़ारसी या अंग्रेजी से आए हैं। इनमें से कुछ शब्द अपने उच्चारण तथा लेखन में हिंदी के शब्दों के निकट हैं। अरबी-फ़ारसी की पांच ध्वनियाँ—क़, ख़, ग़, ज़, फ़ ऐसी हैं, जो कभी-कभी अर्थ भेद पैदा करती हैं। अतः जहां अर्थ में अंतर आ रहा हो या भ्रम उपस्थित हो रहा हो, वहां नुक्ते का ही प्रयोग करना चाहिए। कुछ ऐसे शब्द, जिनमें नुक्ते से अर्थभेद हो जाता है, इस प्रकार हैं—खाना—ख़ाना, राज-राज़, तेज-तेज़, बाज-बाज़, खुदा-ख़ुदा, जरा-ज़रा, फन-फ़न, गज-गज़, कफ-कफ़, गरज-गरज़ आदि। ऐसे शब्दों में नुक्ते का प्रयोग सही स्थान पर करना आवश्यक है।

इसी प्रकार, अंग्रेज़ी के जिन शब्दों में अर्थ विकृत ध्वनि ऑ (आ तथा ओ के बीच की ध्वनि) का प्रयोग होता है, उनके शुद्ध रूप हिंदी में लिखने के लिए 'आ' की मात्रा (ा) के ऊपर खाली अर्द्ध चंद्र (ऑ, ॉ) का प्रयोग किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए कॉलेज, ऑफ़िस, हॉल, डॉक्टर कॉफी आदि।

कुछ स्वरों की मात्राएं भी कभी-कभी विद्यार्थियों को परेशान करती हैं, जैसे इ, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ। अनेक ऐसे शब्द हैं, जिनमें ये मात्राएँ जुड़ती हैं और भ्रम पैदा करती हैं। उदाहरण के लिए शक्ति, बुद्धि, तपस्विनी, सब्जियाँ आदि में ह्रस्व इ की मात्रा का उच्चारण एवं लेखन स्थान भिन्न-भिन्न हैं। इन शब्दों में ह्रस्व स्वर का उच्चारण क्रमशः त्, ध्, व्, ज् के बाद हो रहा है, मगर इसका लेखन न केवल इन वर्णों के पूर्व अपितु इनसे पहले आ रहे स्वर रहित वर्णों (क्रमशक्, द् स्, ब्,) से पूर्व हो रहा है। इससे हिंदी भाषा में "जैसा बोलते हैं, वैसा लिखते हैं" की गर्व पूर्ण उक्ति का खंडन होता है। आजकल हिंदी वर्तनी में भ्रम कम करने के लिए कुछ संयुक्त व्यंजनों को अलग-अलग करके लिखा जाने लगा है जैसे विद्‌या, बुद्‌ध, ब्राह्‌मण आदि। इनमें ह्रस्व इ का प्रयोग होने पर, उसे संबंधित वर्ण से तुरंत पहले लगाया जाएगा, जैसे बुद्‌धि, द्‌वितीय, प्रसिद्‌धि आदि। इसी प्रकार उ, ऊ की मात्रा र् में रु तथा रू के रूप में जुड़ती है। इनके लेखन में इतना सूक्ष्म अंतर है कि अक्सर विद्वान भी इनका शुद्ध प्रयोग नहीं कर पाते। ऋ स्वर की मात्रा, विशेषतः श् में ऋ भी बहुत भ्रम पैदा करती है। इसका सर्वाधिक ज्वलंत उदारहरण हैं—शृंगार, शृंगाल तथा शृंखला शब्द। टंकण तथा कंम्प्यूटर में श का स्वर रहित 'श्' रूप उपलब्ध न होने तथा इसके स्थान पर श्र (श्+र्+अ) होने के कारण ही आज नवभारत टाईम्स जैसे प्रतिष्ठित समाचार पत्र में भी, इन शब्दों को श्रृंगार तथा श्रृंखला छापा जा रहा है जो पूर्णतः अशुद्ध हैं। इस समस्या का समाधान बहुत आसान है। इन शब्दों तथा ऐसे ही अन्य शब्दों में, 'श्रृ' के स्थान पर 'शृ' के प्रयोग को अपना लेना चाहिए। श्रम, श्रीमान आदि में परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार ऋ स्वर के उच्चारण में सूक्ष्म अंतर होने के कारण इसका बहुत अशुद्ध प्रयोग किया जा रहा है। ऋतु, ऋण, ऋषि के स्थान पर रितु, रिण, रिषि का प्रचलन बढ़ रहा है। त्रिकोण त्रिनेत्र, त्रिवेणी के साथ-साथ तृतीय शब्द का प्रयोग भी शुद्ध होने के कारण भ्रम बढ़ता है और बच्चा क्रिया, कृपा, कर्तृ, कृति, पुत्री, पितृ, भ्रातृ, अभिनेत्री, नेतृत्व वक्तृता, पृष्ठ, प्रिय आदि के विकट जाल में फंस जाता है।

ए, ऐ स्वर का मूल रूप तथा मात्रा रूप भी अक्सर भ्रम उत्पन्न करता है। ए वर्ण के ऊपर े के रूप में तथा ऐ ै के रूप में जुड़ते हैं, जैसे में, मैं, हे, है, के, कै आदि। इसी से प्रभावित होकर, अक्सर विद्यार्थी जैसा, जैसे के समानांतर ऐसा, ऐसे आदि प्रयोग करते हैं, जो कि अशुद्ध हैं। अक्सर इन स्वरों को बचपन में पढ़ाते समय, अशुद्ध ढंग से उच्चरित किया जाता है, जिससे बच्चे के मस्तिष्क में इनका अशुद्ध रूप ही स्थिर हो जाता है।

संयुक्त व्यंजनों ने भी हिंदी वर्तनी को कठिन बनाने में बहुत योगदान दिया है। समय-समय पर इनकी कठिनता कम

करने के भी प्रयास किए गए, जैसे पक्का शक्ति, बच्चा, अन्न, पत्ता, क्रिया, प्राप्त, मिट्टी, विश्वास, श्रेष्ठ, दृष्टि, दफ्तर, दफतर आदि के संयुक्त या द्वित्व वर्णों को अब अलग-अलग लिखा जाता है जैसे पक्का, शक्ति, बच्चा, अन्न, पत्ता, क्रिया, प्राप्त आदि। ये परिवर्तित रूप प्रचलित हो चुके हैं, मगर अभी भी अनेक ऐसे संयुक्त व्यंजन हैं, जो भ्रम पैदा करते हैं, जैसे बद्ध, द्वार, विद्या, पद्ज, उद्देश्य चिन्ह, ब्रह्मा, बाह्य, ह्रास, आह्लाद आहवान आदि। अब धीरे-धीरे इन संयुक्त व्यंजनों को भी अलग करके लिखा जाने लगा है, जैसे बद्ध, द्वार, विद्या, चिह्न, बाह्य आदि। हालांकि ये परिवर्तन अभी कम प्रचलित होने के कारण अटपटे लगते हैं, मगर समय के साथ-साथ ये भी स्वीकार्य हो जाएंगे, जैसे पहले वाले परिवर्तन। इन संयुक्त व्यंजनों को अलग-अलग करके लिखने से निश्चित रूप से बहुत-सी अशुद्धियां कम हो जाएंगी।

संयुक्त व्यंजनों के संबंध में यह भी ध्यान देने योग्य है कि पहले केवल तीन संयुक्त व्यंजन स्वीकार किए गए थे और उन्हें वर्णमाला में अंत में स्थान दिया जाता था। ये संयुक्त व्यंजन थे—क्ष, त्र, ज्ञ; मगर बाद में श्र को भी संयुक्त व्यंजनों में शामिल कर लिया गया। यहां प्रश्न यह है कि इन चार को ही संयुक्त व्यंजन क्यों माना गया, शेष को, जिनकी चर्चा पीछे की जा चुकी है, संयुक्त व्यंजन क्यों नहीं माना गया? इसका एक उत्तर यह है कि इन व्यंजनों के मूल वर्णों का रूप बिल्कुल बदल गया है, उदाहरण के लिए क्ष में क्+ ष्+ अ का मेल है और ज्ञ में ज् +ञ् +अ् का और त्र तथा श्र में क्रमश: त्+ र+ अ+ और श्+ र् +अ का। जबकि इनसे बने संयुक्त व्यंजन अपने मूल वर्णों से अलग दिखते हैं। यदि इसी तर्क को स्वीकार कर लें तो द्य, द्दे भी तो काफी बदल गए हैं, तो इन्हें संयुक्त व्यंजनों की सूची में क्यों नहीं रखा गया? इसी प्रकार 'ज्ञ' व्यंजन का उच्चारण 'ग्य' है जबकि इसमें ज् और ञ का मेल है तथा इसके उच्चारण में 'ग्य' का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। इस कारण प्राय: विद्यार्थी ज्ञान का वर्ण विच्छेद ग् + य् + आ + न् + अ लिखते हैं, जिसे शिक्षक गलत मानकर काट देते हैं, इस भ्रम में बच्चे का क्या दोष?

संयुक्त व्यंजनों के कारण ही शब्दकोश देखने में भी विद्यार्थियों को काफी कठिनाई होती है और इसीलिए हिंदी का शब्दकोश प्राय: विद्यार्थी नहीं खरीदते तथा देखते क्योंकि उन्हें शब्दकोश देखना आता ही नहीं। वे प्राय: क्ष, त्र, ज्ञ, श्र से शुरू होने वाले शब्दों को शब्दकोश के अंत में ढूंढते हैं क्योंकि उन्होंने बचपन में इन वर्णों को वर्णमाला के अंत में पढ़ा था। शब्दकोश में उन्हें ये शब्द वहां नहीं मिलते और वे उस शब्दकोश को ही 'बेकार' घोषित कर देते हैं। हिंदी शब्दकोश देखने की विधि तथा नियमों का ज्ञान भी नियमित रूप से कराया जाना चाहिए।

हिंदी वर्णमाला में एक वर्ण है 'र'। इसका एक से अधिक रूपों में प्रयोग होता है और भ्रम उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए ये शब्द देखें—करम, कर्म, क्रम, ट्रक। इन सभी में 'र' का प्रयोग है, कहीं आधा तो कहीं पूरा। आधा 'र' कभी 'म' के साथ जुड़ रहा है तो कभी पूरा 'र' आधे 'क' के साथ। (यहां आधे और पूरे का प्रयोग जानबूझकर किया जा रहा है क्योंकि सामान्य लोग इसे स्वर रहित या स्वर युक्त न कहकर आधा-पूरा ही कहते हैं।) 'र' के इस माया जाल से प्राय: विद्यार्थी तथा हिंदीतर क्षेत्रों के लोग परेशान हो जाते हैं। इसी के परिणाम स्वरूप आशीर्वाद, प्रकृति, दुर्व्यवहार, कीर्ति, ह्रास, सहस्र, स्रोत, श्रेष्ठ जैसे शब्द आमतौर पर गलत लिखे जाते हैं। इस समस्या का समाधान यही है कि 'र' को संयुक्त व्यंजनों के रूप में न लिखा जाए। जहां भी 'र' का प्रयोग ऐसे रूप में हो, वहां 'र' को हलंत की सहायता से लिखा जाए। जैसे ऊपर बताए शब्दों को करम, कर्म क्रम, द्रक आशीर्वाद, प्रकृति, दुर्व्यवहार, कीर्ति, ह्रास, सहस्र, स्रोत, श्रेष्ठ आदि लिखा जाए। शुरू में यह पढ़ने तथा देखने में अटपटा लगेगा, मगर एक बार प्रचलन में आने पर यह हिंदी की एक बहुत बड़ी कमी को दूर कर देगा।

हिंदी में संधि के प्राय: वही नियम चलते हैं जो संस्कृत में थे। संधि के नियमों का ज्ञान न होने के कारण भी हिंदी वर्तनी में अनेक अशुद्धियां होती हैं। उदाहरण के लिए अत्याधिक, उज्जवल, निरोग, जैसे शब्द संधि के अज्ञान के कारण ही इस अशुद्ध रूप में प्रचलित हैं। यदि संधि का ज्ञान हो तो महोत्सव, अत्याचार, स्वागत, अभयारण्य, सहानुभूति, पूर्णाहुति, दुरुपयोग जैसे शब्दों के अर्थ अपने आप ही समझ में आ जाएं।

अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं की भांति हिंदी में भी श्रुतिसमभिन्नार्थक शब्द बहुत भ्रम पैदा करते हैं। ये शब्द बोलने, सुनने तथा लिखने में एक जैसे लगते हैं मगर इनके अर्थ में ज़बरदस्त अंतर होता है। यह बात अपेक्षा-उपेक्षा, अवधि-अवधी अम्ल-अमल, आदि-आदी, उपयुक्त-उपर्युक्त, ओर-और, जाति-जाती, पिता-पीता, चिता-चीता-चिंता, नियत-नियति-नीयत, सास-सांस-सॉस, निश्चित-निश्चिंत, निधन-निर्धन, ग्रह-गृह, कलि-कली, अचार-आचार, प्रमाण-

प्रणाम-परिणाम-परिमाण जैसे शब्दों का अर्थ जानने पर ही समझ में आ सकती है।

अन्य भाषाओं की तरह हिंदी में भी अनेक शब्द उपसर्ग तथा प्रत्यय की सहायता से बनाए जाते हैं। इनमें 'इक' प्रत्यय से बनने वाले बहुत से विशेषण शब्द प्रचलित हैं। यह 'इक' प्रत्यय भी अक्सर परेशानी पैदा करता है। जहां सामान्य प्रत्यय शब्द के अंत में जुड़कर उसके रूप में परिवर्तन करते हैं जैसे इत (इंसान-इंसानियत, विवाह-विवाहित, प्रमाण-प्रमाणित) ईय (मानव-मानवीय, शासक-शासकीय) आदि। मगर 'इक' प्रत्यय न केवल शब्द के अंत में परिवर्तन करता है, बल्कि प्रायः शब्द के प्रथम स्वर को भी प्रभावित करता है। इसका ज्ञान न होने के कारण बहुत-सी अशुद्धियां हो जाती हैं, जैसे—समाजिक, विवाहिक, इतिहासिक, भूगोलिक आदि। इसमें नियम यह है कि 'इक' प्रत्यय जुड़ने पर मूल शब्द के प्रथम स्वर की वृद्धि हो जाती है तथा अ—आ में, इ ई—ऐ में—, अ ऊ—औ में बदल जाते हैं जिस कारण परिवार से पारिवारिक, नीति से नैतिक, पुराण से पौराणिक शब्द बनते हैं। यहां एक अपवाद है कि क्रम, श्रम में इक प्रत्यय जुड़ने पर प्रथम स्वर में वृद्धि नहीं होती तथा इनसे क्रमिक, श्रमिक शब्द ही बनते हैं।

इसी प्रकार हिंदी वर्तनी के मानकीकरण के अंतर्गत भी केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा कुछ नियम बनाए गए हैं ताकि हिन्दी वर्तनी का मनमाना दुरुपयोग न हो। विभक्ति-चिह्नों के संबंध में यह नियम स्थिर किया गया कि संज्ञा शब्दों में विभक्ति-चिह्न अलग करके लिखे जाएंगे तथा सर्वनाम शब्दों में मिलाकर, जैसे राम ने, स्त्री को, बच्चों को आदि तथा उसने, उसको, मैंने, तुमसे आदि। सर्वनामों के साथ यदि दो विभक्ति-चिह्न हों तो उनमें से पहला मिलाकर और दूसरा पृथक् (अलग) लिखा जाए, जैसे उसके लिए, इसमें से। यदि सर्वनाम और विभक्ति के बीच 'ही' 'तक' आदि का निपात हो तो विभक्ति को पृथक् लिखा जाए, जैसे आप ही के लिए, मुझ तक को आदि। संयुक्त क्रियाओं में सभी क्रियाएं अलग-अलग लिखी जाएं, जैसे पढ़ा करता है, जा सकता है, बढ़ते चले जा रहे हैं आदि। जबकि पूर्वकालिक क्रिया में मिलाकर, जैसे खाकर, हंसकर आदि।

हाइफन का प्रयोग स्पष्टता के लिए किया जाता है। द्वंद्व समास में पदों के बीच हाइफन रखा जाए, जैसे राम-लक्ष्मण, देख-रेख, लेन-देन, खाना-पीना आदि। तत्पुरुष समास में हाइफन का प्रयोग केवल वहीं किया जाए, जहां इसके बिना भ्रम होने की संभावना हो, अन्यथा नहीं, जैसे भू-तत्व (पृथ्वी तत्व), भूतत्व (भूत होने का भाव) अ—नख (बिना नख का) : अनख (क्रोध) अ-नति (नम्रता का अभाव) : अनति (थोड़ा), अ-परस (जिसे किसी ने छुआ न हो) : अपरस (एक चर्म रोग) आदि में समस्त पद में हाइफन न लगाने से अर्थ बदल जाता है। ये विशेष शब्द हैं, सामान्यतः तत्पुरुष समासों में हाइफन लगाने की आवश्यकता नहीं है, जैसे—रामराज्य, गंगाजल, आत्महत्या आदि। तुम-सा, राम-जैसा, चाकू-से तीखे आदि में हाइफन लगाया जाए।

अव्यय के अंतर्गत क्रिया विशेषण (यहां, वहां, अब, जब, तब) संबधबोधक (साथ, सामने, ऊपर, नीचे आदि) समुच्चयबोधक (कि, किंतु, मगर, अथवा, या, तथा आदि) और विस्मयादि बोधक (आह, ओह, अहा, वाह आदि) आते हैं। ये शब्द अनेक भावों का बोध कराते हैं। ये अव्यय सदा पृथक् लिखे जाने चाहिएं, जैसे आपके साथ यहां तक, वहां से, वह इतना भर कर दे, मुझे जाने तो दो, काम भी नहीं बना आदि। सम्मानार्थक 'श्री' और 'जी' अव्यय भी पृथक् लिखे जाएं, जैसे श्री राकेश कुमार, कन्हैयालाल जी, महात्मा जी, आदि। समस्त पदों में प्रति, मात्र, यथा आदि अव्यय पृथक् नहीं लिखे जाएंगे क्योंकि समास होने पर समस्त पद एक माना जाता है, जैसे प्रतिदिन, मानवमात्र यथासमय आदि।

संस्कृतमूलक तत्सम शब्दों की वर्तनी में सामान्यतः संस्कृत रूप ही रखा जाए, परंतु जिन शब्दों के प्रयोग में, हिंदी में हल चिह्न लुप्त हो चुका है, उनमें उसको फिर से लगाने का यत्न न किया जाए, जैसे महान, विद्वान आदि के न में। इसी प्रकार, संस्कृत के जिन शब्दों में विसर्ग का प्रयोग होता है, वे यदि तत्सम रूप में प्रयुक्त हों तो विसर्ग का प्रयोग अवश्य किया जाए, जैसे 'दुःखानुभूति' में। यदि उस शब्द के तद्भव के रूप में विसर्ग का लोप हो चुका हो तो उस रूप में विसर्ग के बिना भी काम चल जाएगा, जैसे 'दुख-सुख के साथी'। संस्कृत के जो शब्द तत्सम रूप में प्रयोग होते हैं, उनकी वर्तनी में बदलाव की छूट नहीं है, जैसे ब्रह्मा को ब्रम्हा, चिह्न को चिन्ह, उऋण को उरिण में बदलना उचित नहीं होगा। इसी प्रकार ग्रहीत दृष्टव्य, प्रदर्शिनी, अत्याधिक, अनाधिकार आदि अशुद्ध प्रयोग स्वीकार्य नहीं है। इनके स्थान पर क्रमशः गृहीत, द्रष्टव्य, प्रदर्शनी, अत्यधिक, अनधिकार ही लिखा जाएगा।

इसी संदर्भ में, केन्द्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा 'हिंदी वर्तनी के मानकीकरण' के अंतर्गत दो छूट दी गईं हैं जो ध्यान देने योग्य हैं—"1. जिन तत्सम शब्दों में तीन व्यंजनों के संयोग की स्थिति में एक द्वित्वमूलक व्यंजन लुप्त हो गया है, उसे न लिखने

की छूट है जैसे अर्द्ध-अर्ध, उज्जवल-उज्वल, तत्त्व-तत्व आदि में रेखांकित रूप भी स्वीकार किए गए हैं।

हिंदी में कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनके दो-दो रूप बराबर चल रहे हैं। विद्वत समाज में दोनों रूपों की एक-सी मान्यता है। फिलहाल इनकी एकरूपता आवश्यक नहीं समझी गई है। कुछ उदाहरण हैं—गरदन-गर्दन, गरमी-गर्मी, बरफ-बर्फ, बिलकुल-बिल्कुल, सरदी-सर्दी, कुरसी-कुर्सी, भरती-भर्ती, फुरसत-फुर्सत, बरदाश्त-बर्दाश्त, वापिस-वापस, आखीर-आखिर, बरतन-बर्तन, दोबारा-दुबारा, दूकान-दुकान, बीमारी-बिमारी आदि।''

हिंदी वर्तनी के मानकीकरण में इस प्रकार की छूट कुछ अखरती है। यदि इनमें से भी केवल व्याकरणिक दृष्टि से शुद्ध रूपों के ही प्रयोग पर बल दिया जाता, तो बेहतर होता।

निष्कर्षत: हिंदी भाषा की वर्तनी में अनेक संशोधनों एवं सुधारों के बावजूद कई विवाद एवं भ्रम विद्यमान हैं। इस संबंध में, विद्वानों को निरंतर विचार-विमर्श एवं चिंतन-मनन करके कुछ परिवर्तन करने चाहिए। केन्द्रीय हिंदी निदेशालय को भी इस दिशा में पुन: प्रयास करना चाहिए तथा हिंदी वर्तनी का मानक रूप पुन: निर्धारित करना चाहिए।

□□

पूर्वोत्तर भारत की प्रमुख भाषाएं

☐ अजयेंद्रनाथ त्रिवेदी

भारत के पूर्वोत्तर भाग में स्थित आठ राज्यों को सम्मिलित रूप से पूर्वोत्तर भारत के नाम से जाना जाता है। ये आठ राज्य हैं—असम, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, त्रिपुरा तथा सिक्किम। हाल तक सिक्किम को पूर्वोत्तर भारत में गिना नहीं जाता था। पूर्वोत्तर के ये आठ राजनीतिक भू-भाग (राज्य) यद्यपि प्रशासनिक दृष्टि से आठ इकाइयों में बंटे हैं परंतु भू-भवैज्ञानिक, ऐतिहासिक तथा जलवायुकी दृष्टि से इनमें गहरी एकता है। पूर्वोत्तर भारत के भौगोलिक विस्तार को ब्रह्मपुत्र तथा बराक सदृश नदियों की घाटियों ने सदियों से एकात्मता की डोर में बांधे रखा है तथा असम हिमालय का दृढ़ आधार, इस भू-भाग के निवासियों में एक सांझी विरासत के जन्म का कारण बना है। नृतत्वशास्त्रियों के लिए देश का यह भाग किसी प्रयोगशाला से कम महत्व नहीं रखता। इस भूभाग को विचारकों ने संस्कृतियोंका समन्वय तीर्थ कहा है।

प्राकृतिक भूभाग की कमोबेश समता तथा जलवायविक विस्तार की समानता होने के बावजूद पूर्वोत्तर भारत में अनेक असमानताएं हैं। ये असमानताएं एक दूसरे से भिन्न होती हुई भी एक दूसरे की पूरक हैं। सम्पूर्ण पूर्वोत्तर के हस्तशिल्प पर सूक्ष्म दृष्टि डाले तो स्थानीय भिन्नता मिलती है, पर सम्पूर्ण पूर्वोत्तर के हस्तशिल्प की आधारभूत सामग्री एक ही है—बांस अथवा लकड़ी। इसी प्रकार पूर्वोत्तर भारत के हर भाग की वस्त्र बुनाई कला यद्यपि एक सी नहीं है, पर उस कला को जिस कच्चे माल का आधार प्राप्त होता है, वह कच्चा माल (सूत) प्राय: एक सा ही है। संपूर्ण पूर्वोत्तर भारत की जनता यद्यपि आमोद-प्रमोद के अपने-अपने अलग-अलग त्यौहार मनाती है, पर उन सभी त्यौहारों के अवसर पर आयोजित होने वाला एक कार्यक्रम प्राय: सभी को प्रिय है—यह कार्यक्रम है, नृत्य। पूर्वोत्तर भारत के लोग नृत्य में अपना कौशल दिखलाते हैं और संगीत में अपनी प्रतिभा। एक वाक्य में कह सकते हैं कि हमारा पूर्वोत्तर विविधताओं में एकता का प्रदर्शन करने वाला एक रम्य-लोक है। वक्ष पर खेलने वाली विविधतामयी लहरों के बावजूद जिस प्रकार सागर एक अखंड रहता है, उसी प्रकार संस्कृति, रीतिरिवाज आदि की विविधताओं के बावजूद पूर्वोत्तर भारत का जनजीवन एक अन्तर्निहित एकात्मता से अनुस्यूत प्रतीत होता है।

पूर्वोत्तर भारत जिन विविधताओं में अपनी अभिव्यक्ति करता है, उसमें भाषागत विविधता का महत्वपूर्ण स्थान है। इस भूभाग की अधिकांश जनता मंगोल जाति की है। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में विभिन्न क्षेत्रों से विभिन्न जातियों का आव्रजन भी हुआ है। यहां आने वाली जातियों में तिब्बती, भूटानी, चीनी, म्यांमारी (बर्मी), थाई प्रमुख हैं। वर्षों तक इन जातियों के आवागमन और मेलजोल ने इस भूभाग के जनजीवन की विविधता को अपने-अपने रंग दिए। इस भूभाग में बसने वाली प्रमुख और उल्लेखनीय जन जातियों में बोडो, गारो, खासी, जयंतिया, अहोम आदि हैं। ये जातियां अपने साथ अपनी-अपनी भाषाऐं भी लेकर आईं। इस प्रकार पूर्वोत्तर भारत की विविधताओं की सूची में भाषाई विविधता भी जुड़ गई।

एक मोटे अनुमान के अनुसार पूर्वोत्तर भारत में बोली जाने वाली भाषाओं की संख्या प्राय: पांच सौ तक पहुंच सकती है। सिक्किम को छोड़ कर पूर्वोत्तर के बाकी सात प्रांतों में निवास करने वाली प्रमुख जनजातियों की ही संख्या 120 से पार कर जाती है। इन जनजातियों की अपनी अलग-अलग भाषाएं हैं। इन स्थानीय भाषाओं के अतिरिक्त पूर्वोत्तर में नेपाली, भूटानी, हिन्दी, बंगला, असमिया तथा अंग्रेजी का भी प्रचलन है। इस प्रकार इस प्रदेश की भाषाई विविधता का रूप और भी जटिल हो जाता है। "संस्कृति संगम : उत्तर पूर्वांचल" नामक अपनी लोकप्रिय पुस्तक में डॉ० विजय राघव रेड्डी ने लिखा है, "सिक्किम, असम, मेघालय, नागालैंड, मणिपुर, त्रिपुरा अरुणाचल प्रदेश और मिजोरम में भारोपीय परिवार की भाषाओं असमिया, बंगला, हिन्दी और नेपाली के अतिरिक्त ऑस्ट्रो एशियाटिक परिवार की कुछ भाषाएं तथा तिब्बती-चीनी परिवार की अनेक भाषाएं एवं बोलियां बोली जाती हैं। जहां एक ओर भारोपीय परिवार की चकमा भाषा बोलने वाले चकमा जनजातीय माने जाते हैं, तो कुकी चिन समूह की भाषा मणिपुरी बोलने वाले मणिपुरी या मैते लोग जनजातीय नहीं माने जाते।" (श्री माता प्रसाद की पुस्तक "पूर्वोत्तर भारत के राज्य"

यूको बैंक, अंचल कार्यालय, शिल्पुखुरी, गुवाहाटी-781003

पूर्वोत्तर भारत का वर्तमान भूभाग बहुत कुछ पूर्ववर्ती असम प्रान्त से अलग होकर अस्तित्व में आया है। सिक्किम जैसा प्रांत तथा पूर्व नेफा और वर्तमान का अरुणाचल प्रदेश जैसे इसके अपवाद भी हैं। आज भी पूर्वोत्तर भारत के एक बड़े भूभाग पर असम स्थित है। इस प्रान्त की भाषाई विविधता सम्पूर्ण पूर्वोत्तर भारत में उल्लेखनीय है। इसके पश्चिमी भाग में बोली जाने वाली प्रमुख भाषा है बोडो। इस भाषा की लिपि देवनागरी है। आज उसे रोमन लिपि में भी लिखा जाये, ऐसा प्रयास किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त प्रान्त की 14 जनजातियां अपनी-अपनी भाषाएं बोलती हैं। इनमें अधिकांश की अपनी कोई लिपि नहीं है और उन्हें असमिया लिपि में लिखा जाये या किसी दूसरी लिपि में इस पर कोई सर्वानुमति भी अभी बन नहीं पाई है। असम के विद्यालयों में बंगला तथा असमिया भाषा के अतिरिक्त बोडो, कुकी तथा गारो भाषाओं की पढ़ाई होती है। असमिया असम प्रान्त की राजभाषा है। असमिया को कुछ विद्वान मागधी अपभ्रंश के क्रोड से निकली भाषा बतलाते हैं। इस भाषा का लिखित साहित्य 13 वीं सदी से प्राप्त होता है। इसके पूर्व इस भाषा की परंपरा प्राय: मौलिक ही रही थी। इस भाषा में वैष्णव साहित्य का प्राचुर्य है। महाप्रभु श्रीमंत शंकरदेव तथा उनके पट्टशिष्य माधवदेव ने असमिया भाषा को काफी कुछ दिया। असमिया साहित्य का आधुनिक काल 19 वीं सदी के द्वितीय चरण में माना जाता है। आज यह भाषा सम्पूर्ण असम की संपर्क भाषा के रूप में समादृत है। संविधान की आठवीं अनुसूची में परिगणित इस भाषा को भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार भी मिल चुका है। असम की ब्रहमपुत्र घाटी में यदि असमिया भाषा का प्रभाव है तो इसकी बराक नदी घाटी में बंगला भाषा का चलन है। बंगला के अतिरिक्त असम में हिन्दी, नेपाली, संथाली, भोजपुरी तथा अन्य भाषाएँ भी बोली जाती हैं।

पूर्वोत्तर भारत के उत्तर दिशा में अरुणाचल प्रदेश स्थित है। चीन की सीमा से सटा हमारा रम्य राज्य "लघु पूर्वोत्तर भारत" का आभास देता है। अरुणाचल प्रदेश एक जनजातीय बहुल राज्य है। यहां की जनजातियों में कोई पन्द्रह जनजातियां प्रमुख हैं। ये जनजातियां धार्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से तो अलग-अलग हैं ही भाषाई दृष्टि से भी एक नहीं हैं। प्राय: सभी जनजातियां अपनी-अपनी भाषा बोलती हैं। यथा, आदि जनजाति यदि आदि भाषा बोलती है तो आपातानी जनजाति आपातानी भाषा बोलती है। यहां की ज्यादातर जनजातीय भाषाओं के विषय में सबसे चौंकाने वाली बात यह है कि उनकी अपनी कोई लिपि नहीं है। फलत: उनका कोई लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं हो पाता। लिपि के अभाव में ये जनजातियां असमिया अथवा हिन्दी भाषा के माध्यम से काम चलाती हैं। औपचारिक रूप से अंग्रेजी अरुणाचल प्रदेश की राजभाषा है, पर संपर्क भाषा तो हिन्दी ही है। इस राज्य में बोली जाने वाली अन्य दो जनजातीय बोलियों, खामती तथा मोंपा की अपनी लिपि है। मोंपा लिपि मात्र धार्मिक ग्रन्थों में ही सिमटी है। इस राज्य में हिन्दी को पर्याप्त समर्थन प्राप्त है। राज्य के चार डिग्री महाविद्यालयों में हिन्दी की पढ़ाई होती है। प्रदेश के सभी विद्यालयों में 10वीं कक्षा तक हिन्दी की पढ़ाई अनिवार्य विषय के रूप में होती है।

मेघालय राज्य में तीन प्रमुख जनजातियां निवास करती हैं। ये हैं गारो, खासी तथा जयंतिया। इनमें खासी तथा जयंतिया थाइलैंड से प्रबजन करके आई "मोन खमेर" जाति से उत्पन्न बताया जाता है। इन जनजातियों की भाषाओं को क्रमश: गारो, खासी तथा जयंतिया भाषा के नाम से जाना जाता है। इन भाषाओं की अपनी कोई लिपि नहीं है। इन्हें रोमन लिपि में लिखा जाता है। कोई सौ साल पहले यहां की भाषाओं के लिए बंगला लिपि प्रयोग में लाई जाती थी। इन भाषाओं में खासी भाषा सबसे समृद्ध है। यहां की भाषाओं का कुछ साहित्य चमड़े की पट्टियों पर सुरक्षित था। पर प्राकृतिक शक्तियों के प्रभाव से चमड़े पर लिखा साहित्य आज विलुप्त हो गया है। मेघालय की राजभाषा अंग्रेजी है। संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी, असमिया और बंगला का भी प्रयोग किया जाता है। खासी भाषा में दैनिक समाचार पत्र भी प्रकाशित हो रहा है।

असम और म्यांमार (वर्मा) के बीच पहाड़ी भूमि की एक पतली पट्टी के रूप में नागालैंड स्थित है। यहां की प्राय: 15 बोलियों को मान्यता दी गई है। ये सभी बोलियां लिपि विहीन हैं। इनमें आओ, कोन्याक, चाखेसांग, अंगामी, सेमा तथा लोथा बोलियां प्रमुख हैं। सम्पर्क भाषा के रूप में नागालैंड में नागामीज भाषा के साथ अंग्रेजी भाषा का भी प्रयोग किया जाता है। नागामीज भाषा असमिया, नागा, हिन्दी और अंग्रेजी भाषा का मिला जुला रूप है। नागालैंड की जनजातियों में तेरह जनजातियों की पहचान की जा सकी है। ये सभी अलग-अलग भाषाएं बोलती हैं। ये भाषाएं तिब्बती-बर्मी परिवार की कही जाती हैं। नागालैंड की अन्य गौण बोलियों में लाओ, लोथा तथा फोम बोलियां हैं। जनजातीय बोलियां अपनी गोष्ठियों में ही समझी जा सकती हैं। अंग्रेजी इस राज्य की राजभाषा है। व्यापारिक और सेवा क्षेत्र में हिन्दी भी समझी जाती है। विद्यालयों में हिन्दी की पढ़ाई के प्रति सरकार जागरूक है।

पूर्वोत्तर भारत का एक प्रमुख राज्य है मणिपुर। सांस्कृतिक दृष्टि से जाग्रत यह राज्य, भाषा और साहित्य की दृष्टि से भी

समूचे पूर्वोत्तर में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इस राज्य की जनजातियों में 28 की पहचान की गई है। मणिपुर समाज के एक वर्ग को मैते कहा जाता है। इनकी गणना जनजाति के रूप में नहीं की गई है। यहां के अधिकांश लोग मणिपुरी भाषा बोलते हैं। बाकी क्षेत्रों में 9 अन्य भाषाओं का पता चला है। अपने प्राकृतिक सौंदर्य के लिए विख्यात मणिपुर राज्य के निवासी आमतौर पर मंगोल वंश के हैं। अतः इनकी भाषा पर मंगोल प्रभाव भी दिखता है। मणिपुर राज्य की संपर्क भाषा मणिपुरी, काफी समृद्ध भाषा है। विद्वानों की राय में इसकी लिपि का विकास शताब्दियों पूर्व हो गया था। इस भाषा में लिपिबद्ध मणिपुरी साहित्य में काव्य, उपन्यास, कहानी आदि विधाओं में लगातार साहित्य सृजन हो रहा है। इस भाषा में हिन्दी आदि भाषाओं की प्रतिनिधि रचनाओं का अनुवाद भी हो रहा है। मणिपुरी भाषा को संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान देकर उसको यथोचित मान्यता भी दी गई है। असम और अरुणाचल प्रदेश की तरह ही मणिपुर में भी हिन्दी का प्रचलन है। मणिपुर के सभी भागों में हिन्दी बोली और समझी जाती है। मणिपुर विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग भी काम कर रहा है तथा वहां से गत 39 वर्षों से एक हिन्दी मासिक "युमशकैश" लगातार प्रकाशित होता आ रहा है।

पूर्ववर्ती लुशाई हिल जिले को हम आज मिजोरम के नाम से जानते हैं। यह पूर्वोत्तर भारत का एक और रमणीक राज्य है। एक सर्वेक्षण के अनुसार यहां की प्रमुख जनजातियों की संख्या 13 है। इनमें अनेक जनजातियों की अपनी उपजातियां भी हैं। यहां की जनजातियों में लुशाई, लाखेर, राल्ते तथा चावूंगू प्रमुख हैं। मिजोरम के मध्य तथा उत्तरी क्षेत्र में मिजो निवास करते हैं। मिजो का अर्थ है ऊँची भूमि के निवासी। इसके अतिरिक्त दक्षिण पूर्व मिजोरम में "पोवि" जनजाति निवास करती है। पोवि तथा लाखर जनजातियों की अपनी भाषाएं हैं। इसके अतिरिक्त समस्त मिजोरम के लिए संपर्क भाषा है—मिजो। तिब्बती-बर्मी परिवार की ये तीनों भाषाएं —पोवि, लाखैर तथा मिजो रोमन लिपि में लिखी जाती हैं। इनकी कोई अपनी लिपि नहीं है। यहां मिजो भाषा को संपर्क भाषा के अतिरिक्त राजभाषा का भी दर्जा प्राप्त है। व्यापार, वाणिज्य तथा केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से जुड़े लोगों की संपर्क भाषा का काम कभी-कभी हिन्दी भी सफलता से पूर्ण करती है। इसके साथ ही स्थानीय स्तर पर हमार, रियांग तथा चकमा बोलियां भी प्रचलन में हैं।

त्रिपुरा नामक इस पूर्व रजवाड़े को आज भारत संघ के राज्य का दर्जा प्राप्त है। यहां आमतौर पर 19 जनजातियां पाई जाती हैं। यहां का व्यापारिक संबंध हमेशा से बंगाल से रहा था जो स्वाधीनता के बाद पूर्वी पाकिस्तान के अस्तित्व में आने के बाद समाप्त हो गया। बंगला यहां की प्रमुख भाषा तो है ही संपर्क भाषा भी है। इसके अतिरिक्त यहां त्रिपुरी, कोबकनक तथा मणिपुरी भाषा भी बोली जाती है। त्रिपुरा की त्रिपुरी जाति को विद्वानों ने बोडो जनजाति की एक शाखा माना है। यह जनजाति काक-बराक भाषा बोलती है। इसकी कोई अपनी लिपि नहीं है। अतः इसे बंगला लिपि में लिखा जाता है। व्यापारिक, प्रशासनिक तथा सेवा क्षेत्र में अंग्रेजी तथा हिन्दी को संपर्क भाषा के रूप में यहां स्वीकार किया जाता है।

गोआ को राज्य का दर्जा मिलने तक सिक्किम भारत का लघुतम राज्य था। आज यह पूर्वोत्तर परिषद का सबसे नया सदस्य है। इस राज्य को चीन तथा भूटान की अन्तर्राष्ट्रीय सीमाएं छूती हैं। यहां की प्रमुख भाषा है नेपाली। इसके अतिरिक्त राज्य का भोटिया समाज भोटिया तथा लेपचा समाज लेपचा भाषा बोलता है। यहां तिब्बती लिपि के साथ-साथ देवनागरी लिपि भी व्यवहार में लाई जाती है। इस राज्य की प्रमुख भाषा नेपाली है जिसे देवनागरी लिपि में लिखा जाता है। इसका साहित्य बहुत ही समृद्ध है। इस भाषा को भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल कर लिया गया है। इस राज्य में बोली जाने वाली अन्य बोलियां हैं—लिंबो, मागर, गुरुंग, शेरपा, तमांग, नेवारी आदि। इसके अतिरिक्त हिन्दी, बंगला तथा अंग्रेजी का भी प्रचार है। भारत के हृदय प्रांत के अपेक्षाकृत ज्यादा नजदीक होने के कारण कुछ और भारतीय भाषाएँ यहां बोली-समझी जाती हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि पूर्वोत्तर भारत नृतत्व शास्त्रियों का स्वर्ग ही नहीं भाषा शास्त्रियों की वाटिका भी है। यहां की जनजातियों की विविधता, वनस्पति की अनेकता और संस्कृति की बहुलता की तुलना में यहां की भाषाओं और बोलियों की बहुरूपता ज्यादा मनोहारी तथा चिंतन-प्रेरिका है। यह सही है कि पूर्वोत्तर की भाषाओं और बोलियों की अपनी विशिष्ट लिपियों के न होने से उनका अध्ययन कर पाना कठिन है। पर इससे उन भाषाओं और बोलियों का सौन्दर्य और उनकी समृद्ध विरासत को कोई ग्रहण नहीं लग सकता। इन भाषाओं और बोलियों में निहित है शताब्दियों के प्रकृति-साहचर्य में बीते जीवन का अनुभव। इस अनुभव से आज के सभ्य तथा व्यस्त समाज को बहुत कुछ सीखना है। हमारे भाषा विज्ञानी और साहित्य रसिक यदि पूर्वोत्तर भारत की भाषाओं के अध्ययन की ओर उन्मुख हों तो उन्हें इन भाषाओं में छिपे अद्भुत ज्ञान-अनुभव-अनुभूति भंडार का लाभ निश्चय ही होगा, इसमें लेखक को रंच मात्र संदेह नहीं है। □□

राजभाषा पत्रकारिता : प्रबंधन प्रक्रिया

☐ डॉ० चन्द्रपाल

पत्रकारिता परिभाषा

पत्रकारिता विचारों को जन जन तक पहुंचाने का महत्वपूर्ण संसाधन है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में तथ्यों और विचारों को लोगों तक पहुंचाने के लिए समाचारपत्र, रेडियो, टेलीविजन, विज्ञापन एवं पत्रिकाएं प्रमुख माध्यम हैं। वस्तुत: इन माध्यमों से सूचनाओं के प्रचार-प्रसार की प्रक्रिया को ही पत्रकारिता कहा जा सकता है। पत्रकारिता अंग्रेजी के जर्नलिज्म शब्द का पर्याय है। जर्नलिज्म, जर्नल शब्द से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है दैनिक अथवा दिन-प्रतिदिन। अर्थात् दिन-प्रतिदिन की घटनाओं एवं क्रिया कलापों के रोचक विवरण को जर्नल कहते हैं। जर्नल शब्द से बना जर्नलिज़म अत्यंत व्यापक अर्थ में प्रयोग किया जाता है। जर्नलिज़म अर्थात् पत्रकारिता शब्द के अंतर्गत समाचार पत्रों, पत्रिकाओं और समाचारों के प्रसार के विविध माध्यमों के संपादन, लेखन एवं तत्संबंधी प्रकार्यों को समाहित किया जा सकता है। अब चूंकि पत्र-पत्रिकाओं के अलावा आकाशवाणी, दूरदर्शन एवं अन्य समाचार माध्यम पत्रकारिता के अंतर्गत आते हैं। अत: पत्रकारिता की परिभाषा भी व्यापक रूप में होना स्वाभाविक है। पत्रकारिता को विभिन्न विद्वानों द्वारा अनेकश: परिभाषित किया गया है।

इन्द्रविद्यावाचस्पति ने पत्रकारिता को परिभाषित करते हुए लिखा है "पत्रकारिता पांचवां वेद है, जिसके द्वारा हम ज्ञान विज्ञान संबंधी तथ्यों को जानकर अपने बंद मस्तिष्क को खोलते हैं।" इसी प्रकार **डॉ० अर्जुन तिवारी** द्वारा पत्रकारिता को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया गया है:- "समय और समाज के संदर्भ में सजग रहकर नागरिकों में दायित्व बोध कराने की कला को पत्रकारिता कहते हैं। "..... पत्रकारिता वह विधा है, जिसमें पत्रकारों के कार्यों, कर्तव्यों और उद्देश्यों का विवेचन किया जाता है, जो अपने युग और अपने संबंध में लिखा जाए, वही पत्रकारिता है। **सी०जी० मुलर** के अनुसार "सामयिक ज्ञान का व्यवसाय ही पत्रकारिता है।" **डॉ० मधु धवन** ने पत्रकारिता को जनसेवा का सशक्त माध्यम कहा है और पत्रकारिता के प्रमुख कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "पत्रकारिता का प्रमुख कर्तव्य अन्याय का उद्घाटन करना, विसंगतियों का सुधार करना, परामर्श देना, समाज का मार्गदर्शन करना तथा व्यक्ति-परिवार-समाज-राष्ट्र का बहुआयामी उत्थान करना होता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि पत्रकारिता सूचनाओं का उद्घाटन, कर्तव्यों का संदेश, 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' का बोध और व्यक्ति-समाज-राष्ट्र जागृति का प्रबल प्रकाश है। समाज की गतिविधियों को दर्शाने, तथ्यों के सत्य को उजागर करने मानव-मूल्यों को पोषित करने और लोकहित साधने का सशक्त एवं लोकप्रिय संसाधन है पत्रकारिता। समय के साथ-साथ पत्रकारिता भी विकसित और पल्लवित हुई है। फलस्वरूप पत्रकारिता में अनेक रूप एवं परिदृश्य उभर कर आए हैं।

पत्रकारिता : परिदृश्य एवं प्रकार

पत्रकारिता विचारों को जनता तक पहुंचाने का एक सुव्यवस्थित प्रयास है। विचारों और परिस्थितियों के साथ-साथ पत्रकारिता की प्रवृत्ति ने विविध रूप एवं परिदृश्य धारण किए हैं। पत्रकारिता घटनाओं और समाचारों को लोगों तक पहुंचाने के साथ-साथ व्याप्त कुरीतियों, बुराइयों और संभावित गलतियों को भी उजागर करती है। अत: पत्रकारिता का प्रमुख परिदृश्य समाज के दर्पण के रूप में उजागर होता है। पत्रकारिता भाषा विकास की ऐसी सीढ़ी है जिसके माध्यम से भाषा सहज, सरल, सुबोध स्वरूप को प्राप्त करती है। पत्रकारिता के माध्यम से भाषा की संरचना, अर्थ अभिव्यंजना और प्रयोग क्षमता धीरे-धीरे विकास को प्राप्त होती है। अत: पत्रकारिता का प्रमुख परिदृश्य भाषा विकास भी है। वैज्ञानिक खोज, तकनीकी विकास, प्रौद्योगिकी उन्नयन, साहित्य संवर्द्धन संगीत एवं कला का प्रचार-प्रसार आदि पत्रकारिता के अत्यंत उपयोगी परिदृश्य नित्य नए रूप में विकसित हो रहे हैं। राजनैतिक प्रौढ़ता, देश भक्ति की प्रबलता और सांस्कृतिक श्रेष्ठता आदि प्रवृत्तियां पत्रकारिता के विभिन्न परिदृश्य विषय, परिस्थिति, विचार और तथ्यों के आधार पर निरंतर विकसित हो रहे हैं और पत्रकारिता के विविध प्रकारों का निर्धारण कर रहे हैं।

भारतीय विमान पत्तन प्राधिकरण, क्षेत्रीय कार्यालय, दक्षिणी क्षेत्र, चेन्नई हवाईअड्डा, चेन्नई-27

पत्रकारिता का मुख्य मंतव्य है सूचनाओं की जानकारी देना। यह सूचना किस प्रकार की है, किस माध्यम से दी गई है के आधार पर पत्रकारिता का स्वरूप एवं प्रकार सुनिश्चित किया जाता है। सूचना के प्रकार के आधार पर ही पत्रकारिता के विविध रूप एवं प्रकार सुनिश्चित किए जा सकते हैं। यथा- सूचना खेल जगत से संबंधित है तो खेल पत्रकारिता, यदि विज्ञान जगत की है तो विज्ञान पत्रकारिता इत्यादि। इस तरह सूचना के प्रकार और सूचना दिए जाने के माध्यम के आधार पर पत्रकारिता के विविध रूप एवं प्रकार उभरते हैं। सूचना की मूल प्रकृति के आधार पर पत्रकारिता के प्रकार निम्नलिखित हो सकते हैं। राजनैतिक पत्रकारिता, आध्यात्मिक पत्रकारिता , सामाजिक पत्रकारिता, वाणिज्य उद्योग पत्रकारिता, श्रम पत्रकारिता, आर्थिक पत्रकारिता, बैंकिंग पत्रकारिता, विज्ञान पत्रकारिता , खेल पत्रकारिता, सांस्कृतिक पत्रकारिता, समाज कल्याण पत्रकारिता, कृषि पत्रकारिता , विधि पत्रकारिता, अनुसंधान पत्रकारिता इत्यादि अन्यान्य विषय हो सकते है। इसी प्रकार सूचना के माध्यम के आधार पर पत्रकारिता के निम्नलिखित प्रकार निर्धारित किए जा सकते हैं। समाचार पत्र पत्रकारिता, रेडियो पत्रकारिता, दूरदर्शन पत्रकारिता, फोटो पत्रकारिता, ब्रेल पत्रकारिता, भित्ति पत्रकारिता, वृत्तांत पत्रकारिता, हास्य व्यंग्य पत्रकारिता, चित्रपट पत्रकारिता, साहित्यिक पत्रकारिता, कलात्मक पत्रकारिता इत्यादि माध्यम के आधार पर पत्रकारिता के प्रमुख प्रकार में हो सकते हैं। स्थान के आधार पर भी पत्रकारिता के भेद किए जा सकते हैं। यथा राष्ट्रीय पत्रकारिता, क्षेत्रीय पत्रकारिता, स्थान विशेष से संबंधित, उत्तर प्रदेश की पत्रकारिता, मध्य प्रदेश की पत्रकारिता, तमिलनाडु की पत्रकारिता, महाराष्ट्र की पत्रकारिता, इत्यादि। इसी प्रकार भाषा के आधार पर हिन्दी की पत्रकारिता, अंग्रेजी की पत्रकारिता, तमिल की पत्रकारिता, राजभाषा की पत्रकारिता आदि प्रकार निर्धारित किए जा सकते हैं।

भारत में संवैधानिक उत्तरदायित्व एवं भाषा वैविध्य के फलस्वरूप राजभाषा पत्रकारिता सहज एवं सोद्देश्य विकसित हुई है। राजभाषा पत्रकारिता का शुभारंभ भारत सरकार की राजभाषा नीति के कार्यान्वयन से संबंधित है। अत: राजभाषा पत्रकारिता का अभिप्राय, उद्देश्य, क्षेत्र आदि राजभाषा नीति पर आधृत हैं, जिनका विस्तृत विवरण आगे दिया गया है।

राजभाषा पत्रकारिता : अभिप्राय, स्वरूप एवं क्षेत्र

राजभाषा पत्रकारिता राजभाषा संबंधी राष्ट्रीय नीति का दर्पण है। लोकतांत्रिक शासन प्रणाली और राष्ट्रीय गतिविधियों में नवीनता उत्पन्न करने के लिए पारदर्शी राजभाषा पत्रकारिता आवश्यक है। सरकारी सूचनाओं का प्रचार-प्रसार करते हुए सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, बौद्धिक विशिष्टताओं को विकसित करने का मुख्य कार्य राजभाषा पत्रकारिता करती है। राजभाषा पत्रकारिता के माध्यम से सुनिश्चित की गई राजभाषा को संपर्क भाषा के रूप में विकसित करना और राजभाषा की विभिन्न भूमिकाओं को उभारना राजभाषा पत्रकारिता का प्रमुख प्रकार्य है। राजभाषा का अभियोजन हिन्दी से है और राजभाषा पत्रकारिता राजभाषा हिन्दी पत्रकारिता से अभिप्रेत है। अत: यहां राजभाषा हिन्दी पत्रकारिता का अभिप्राय, स्वरूप, उद्देश्य आदि विवेच्य हैं।

राजभाषा हिन्दी पत्रकारिता का सरल अर्थ है राजभाषा हिन्दी संबंधी नीति विषयक नियमों, विचारों और तत्संबंधी घटनाओं को जनता तक पहुंचाने की सुव्यवस्थित प्रकाशन प्रक्रिया। प्रारंभ में राजभाषा पत्रकारिता के माध्यम से सरकारी संगठनों एवं कार्यालयों में राजभाषा संबंधी गतिविधियों एवं घटनाओं को प्रमुख रूप से उजागर करना मुख्य मंतव्य था। परंतु धीरे-धीरे राजभाषा पत्रकारिता का स्वरूप बदला और विस्तृत हुआ। संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी का विकास करना राजभाषा हिन्दी की भूमिकाओं को उभारना, राजभाषा संबंधी गतिविधियों एवं सूचनाओं को प्रचारित करना, राजभाषा हिन्दी के बारे में प्रचलित मतों एवं विचारों को लोगों तक पहुंचाना आदि प्रकार्य राजभाषा पत्रकारिता के जरिये प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से निष्पादित होते रहे। इस प्रकार राजभाषा पत्रकारिता का एक व्यापक स्वरूप उभर कर आया और पत्रकारिता के प्रमुख प्रकार के रूप में उसे अमिट पहचान मिली। वस्तुत: राजभाषा पत्रकारिता हिन्दी विकास के साथ-साथ भारतीय भाषाओं के विकास की दिशा और दशा भी दर्शाती है। इस तरह राजभाषा पत्रकारिता राष्ट्रीय स्तर पर राजभाषा नीति का दिग्दर्शन, भारतीय भाषाओं का मार्गदर्शन, भाषा कौशल अभिवृद्धि का निदर्शन आदि के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है।

पत्रकारिता का कार्यक्षेत्र अत्यंत व्यापक और असीमित है। पत्रकारिता की इसी व्यापकता के फलस्वरूप उसके विविध रूप और विभिन्न प्रकार उभरे हैं। राजभाषा पत्रकारिता भी केवल राजभाषा के प्रचार-प्रसार तक ही सीमित नहीं है अपितु लोगों में भाषाई जागरूकता जगाना, साहित्यिक कलात्मक रुझान को बढ़ाना, राष्ट्रीय मूल्यों की स्थापना, लोकहित का मार्ग प्रशस्त करना, भाषाई संकीर्णता को मिटाना आदि गतिविधियों तक राजभाषा पत्रकारिता की व्यापकता देखी जा सकती है। हिन्दी में सहज

लेखन को प्रोत्साहित करना और अन्य भाषाओं में अनुवाद की प्रवृत्ति को बढ़ाना राजभाषा पत्रकारिता के क्षेत्र में सम्मिलित हैं। हिन्दी भाषा की संरचनात्मक विशेषताओं को उजागर करना भी राजभाषा पत्रकारिता का कार्यक्षेत्र है। इस प्रकार राजभाषा पत्रकारिता का क्षेत्र अत्यंत व्यापक और दूरदर्शिता से अभिपूरित है।

लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में पत्रकारिता का महत्व संसद के बाद दूसरे स्थान पर अभिगणित किया जाता है। राजभाषा पत्रकारिता भी दिन-प्रतिदिन चलने वाली संसद है, जिसके माध्यम से सरकारी निर्णयों और नीतियों का खुलासा किया जाता है। इस प्रकार राजभाषा पत्रकारिता के माध्यम से सरकार की नीतियों, गतिविधियों एवं तत्संबंधी प्रतिक्रियाओं के विश्लेषण का कार्य निष्पादित होता है। राजभाषा के प्रचार-प्रसार की दिशा सुनिश्चित होती है और भाषाई विकास को नए आयाम मिलते हैं। वस्तुतः राजभाषा पंत्रकारिता का महत्व राष्ट्रहित के समान सर्वोपरि और देशभक्ति तुल्य अन्यतम है।

पत्रकारिता ऐसी मार्गदर्शिका है, जो समाज की विकृतियों को विश्लेषित करके उन्हें दूर करती है और सुधारात्मक विकल्पों को खोजती है। इस प्रकार पंत्रकारिता का प्रमुख उद्देश्य उपयोगी लोकहित उपायों को खोजकर विकास के नए आयाम विकसित करना है। गाँधीजी के अनुसार पत्रकारिता का प्रमुख उद्देश्य सेवा है। अतः राजभाषा पत्रकारिता का उद्देश्य भी देश सेवा के नवीन आविष्कारों को उजागर करते हुए देश को विकास के सुदृढ़ मार्ग पर अग्रसर करना होना चाहिए। राष्ट्रहित की घटनाओं को संकलित करके उनका विश्लेषण करना और देश सेवा के लिए लोगों को प्रेरित करने हेतु इन विश्लेषणों के विवरणों को लोगों तक पहुंचाना राजभाषा पत्रकारिता का प्रमुख उद्देश्य है। राजभाषा हिन्दी की गतिविधियों एवं भाषा विकास की वैज्ञानिक प्रविधियों की जानकारी उपलब्ध कराना भी राजभाषा पत्रकारिता का मंतव्य होना आवश्यक है। राजभाषा हिंदी के प्रति लोगों में जागरूकता पैदा करना और उन्हें राजभाषा के प्रति प्रोत्साहित करना राजभाषा पत्रकारिता का महत्वपूर्ण उद्देश्य है। राजभाषा प्रशिक्षण की पीठिका निर्मित करके लोगों को हिंदी पढ़ने, बोलने और हिंदी में कार्य करने के लिए प्रेरित करना राजभाषा पत्रकारिता का लक्ष्य अवश्य होना चाहिए। राजभाषा संबंधी नीति, नियम, अधिनियम आदि की सुबोधात्मक जानकारी देकर उनके कार्यान्वयन के लिए आधार तैयार करना राजभाषा पत्रकारिता की प्रमुख वरीयता होना आवश्यक है। हिंदी प्रयोग के नए क्षेत्रों की तलाश करके हिंदी लेखन को बढ़ावा देना राजभाषा हिंदी पत्रकारिता का प्रभावक उद्देश्य होना चाहिए। वस्तुतः सरकारी राजभाषा नीति कार्यान्वयन की विकासात्मक दशा और दिशा निर्धारित करते हुए भाषा के सरल और सुबोध स्वरूप के आविष्कार के माध्यम से हिन्दी प्रयोग को अधिकाधिक बढ़ावा देना राजभाषा पत्रकारिता का प्रमुख उद्देश्य है।

राजभाषा पत्रकारिता : प्रबंधन, प्रक्रिया और प्रयोग

प्रबंधन बहुआयामी संकल्पना है, जिसके माध्यम से कार्य निष्पादन के उपयोगी उपायों के विकल्पों की खोज की जाती है। वर्तमान वैज्ञानिक एवं गतिशील युग में प्रत्येक कार्य से उत्कृष्ट परिणामों की अपेक्षा है। अतः ऐसी स्थिति में कार्य प्रबंधन अत्यंत आवश्यक और विशेष महत्वपूर्ण है। परिणामस्वरूप प्रबंधन विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित हो रहा है। यथा कार्मिक प्रबंधन, वित्तीय प्रबंधन, सामग्री प्रबंधन, विपणन प्रबंधन, हवाई अड्डा प्रबंधन, राजभाषा प्रबंधन आदि क्षेत्रों में प्रबंधकीय प्रक्रिया का महत्व सर्वविदित है। इसी प्रकार कार्य महत्ता की दृष्टि से राजभाषा पत्रकारिता प्रबंधन भी महत्वपूर्ण विषय है।

राजभाषा पत्रकारिता का संबंध राजभाषा हिंदी के वैधानिक एवं व्यावहारिक क्षेत्रों की सुव्यवस्थित कार्य प्रक्रिया और राजभाषा संबंधी विशिष्टताओं को उजागर करने की महत्वाकांक्षा से है। अतः राजभाषा पत्रकारिता प्रबंधन से अभिप्राय है कि राजभाषा पत्रकारिता संबंधी समस्त कार्यकलापों की सुव्यस्थित एवं सुनियोजित अभियोजना। इस अभियोजना के अंतर्गत राजभाषा पत्रकारिता के लिए कुशल कार्मिकों की व्यवस्था, प्रभावी हिंदी प्रशिक्षण की सुनिश्चित पीठिका, तत्संबंधी उपयुक्त सुविधाओं का सुनियोजन, राजभाषा पत्रकारिता संबंधी कार्यों का वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक दृष्टि से अनुशीलन, प्रोत्साहन और अनुसंधान का सुनियोजन राजभाषा पत्रकारिता तथा समाचार पत्रों का कुशल संकलन एवं सक्षम संपादन, राजभाषा संबंधी गतिविधियों के समस्त कार्यकलापों का प्रभावी प्रवर्तन एवं पत्रिका प्रकाशन संबंधी कार्यप्रक्रियाओं की सुविचारित व्यवस्था को राजभाषा पत्रकारिता प्रबंधन कहते है।

राजभाषा पत्रकारिता प्रबंधन की आवश्यकता

वर्तमान औद्योगिक युग में प्रबंधन की सुविचारित व्यवस्था सभी कार्यकलापों में आवश्यक है। बढ़ती हुई तकनीकी प्रविधियों में पत्रकारिता के मानदण्डों में भी अपेक्षानुसार सुधार की

की विशेष भूमिका इसलिए भी है कि इसके माध्यम से राजभाषा प्रचार-प्रसार के साथ कर्मचारियों को भाषा विशेषता की ओर आकर्षित और प्रेरित भी किया जाता है। राजभाषा कार्यान्वयन की सर्वाधिक भूमिका प्रकाशन प्रक्रिया पर निर्भर करती है। राजभाषा पत्रिका के प्रकाशन के साथ-साथ तत्संबंधी अपेक्षित संदर्भ साहित्य का प्रकाशन भी राजभाषा पत्रकारिता का अभिन्न अवयव है। अत: राजभाषा पत्रकारिता प्रबंधन में प्रकाशन प्रक्रिया की सराहनीय भूमिका रहती है।

10. राजभाषा पत्रकारिता—प्रबंधन एवं प्रचार-प्रसार की प्रक्रिया :

वर्तमान विज्ञापन के युग में प्रचार-प्रसार श्रेष्ठ प्रबंधन का आधारभूत प्रकार्य है। किसी भी कार्य की सफलता के लिए प्रबंधन की दृष्टि से प्रचार-प्रसार महत्वपूर्ण माध्यम है। प्रचार-प्रसार के द्वारा समस्याओं का समाधान, तत्संबंधी योजनाओं का कार्यान्वयन, सामूहिक तौर पर सहज रूप से हो जाता है। राजभाषा पत्रकारिता प्रबंधन की दृष्टि से भी प्रचार-प्रसार की आवश्यकता है। क्योंकि राजभाषा संबंधी पत्रकारिता का क्षेत्र सरकारी राजभाषा नीति के साथ-साथ हिंदी साहित्य के प्रचार-प्रसार तक विस्तृत है। राजभाषा पत्रिका के प्रचार-प्रसार के माध्यम से कर्मचारियों में छिपी हुई साहित्यिक सृजन प्रतिभा को उजागर किया जा सकता है। उनकी देश भक्ति और कार्यकुशलता को प्रेरित करके कार्यालयीन कार्य में श्रेष्ठ परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। अत: राजभाषा पत्रिका प्रबंधन के लिए प्रचार-प्रसार संबंधी प्रक्रिया की सदैव आवश्यकता है।

11. राजभाषा पत्रकारिता प्रबंधन एवं प्रेरणा—प्रोत्साहन की प्रक्रिया :

प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रबंधन का महत्वपूर्ण संसाधन है, जिसके द्वारा कार्मिकों को श्रेष्ठ कार्य निष्पादन हेतु अभिप्रेरित किया जा सकता है। प्रेरणा के मुख्य आधार कार्मिक की व्यक्तिगत क्षमता, नैतिकता एवं आवश्यकता आदि होते हैं। प्रेरणा का सकारात्मक पहलू प्रोत्साहन है। प्रेरणा को परिभाषित करते हुए सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जूसियस ने लिखा है कि प्रेरणा व्यक्ति को अपेक्षित कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करने की प्रक्रिया है। राजभाषा पत्रकारिता में प्रेरणा और प्रोत्साहन की प्रक्रिया की महत्वपूर्ण भूमिका है। राजभाषा पत्रकारिता के श्रेष्ठ प्रबंधन हेतु प्रेरणा एवं प्रोत्साहन की प्रक्रिया में सतर्कता की आवश्यकता है। क्योंकि कार्मिकों को प्रेरित करने के साथ-साथ राजभाषा पत्रकारिता के उद्देश्य को लागू करना भी आवश्यक है। इस प्रकार प्रेरणा और प्रोत्साहन की प्रक्रिया के माध्यम से राजभाषा पत्रकारिता प्रबंधन को सुनिश्चित ढंग से सुव्यवस्थित किया जा सकता है।

उल्लिखित प्रबंधन संबंधी सभी सैद्धांतिक प्रक्रियाओं के माध्यम से राजभाषा पत्रकारिता को श्रेष्ठ, उपयोगी, प्रेरक और प्रभावक बनाया जा सकता है। हमारे देश में राजभाषा कार्यान्वयन राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम है। विश्व के बदलते परिवेश में इस कार्यक्रम के निष्पादन और मूल्यांकन को व्यावसायिक दृष्टिकोण और प्रबंधकीय सिद्धांतों के अनुरूप व्यवस्थापित करने हेतु राजभाषा पत्रकारिता को प्रबंधकीय दृष्टि से विकसित करना आवश्यक है। राजभाषा पत्रकारिता के माध्यम से जो भी प्रकाशित किया जाए, एक विशेष उद्देश्य और प्रभाव के साथ अवश्य होना चाहिए। अनमने ढंग से प्रकाशित की गई सामग्री न तो कार्मिकों को प्रभावित कर पाती है और न ही राजभाषा कार्यान्वयन के उद्देश्य की पूर्ति। अत: राजभाषा पत्रकारिता में प्रबंधकीय दृष्टिकोण, तत्संबंधी सिद्धांत एवं प्रक्रिया का समावेश अत्यंत आवश्यक है।

राजभाषा पत्रकारिता प्रबंधन की वस्तुस्थिति एवं संभावनाएं :

जिस प्रकार पत्रकारिता का व्यवसाय जन सहयोग पर निर्भर करता है, उसी प्रकार राजभाषा पत्रकारिता के नियामक और निर्धारक उसके पाठक और कार्मिक हैं। राजभाषा पत्रकारिता राजभाषा नीति के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ, कार्यालय अथवा विभाग की विभिन्न गतिविधियों, परिस्थितियों, कार्मिकों की अभिरुचि और जीवन शैली को दर्शाती है। विभागीय गतिविधियों के प्रकाशन में किसी भी प्रकार के आरोप, आलोचना, अवमानना एवं असत्य क्रियाकलापों को स्थान न देने का ध्यान रखना आवश्यक है। सामान्यत: पत्रकारिता आचार संहिता के अनुसार भी प्रशासनिक नीतियों में अनावश्यक दखल न दिया जाए और विचारों के प्रकाशन में अन्य बाहरी अनावश्यक तथ्यों से प्रभावित घटनाएं प्रकाशित न की जाएं। सांप्रदायिक तनाव भड़काने वाले संभावित लेखों के प्रकाशन से हर संभव बचा जाए। सूचना अथवा घटना स्वतंत्र एवं उच्च परंपरा तथा मान्यता के आधार पर प्रकाशित की जाएं। जातीय, धार्मिक और आर्थिक मतभेदों से उत्पन्न विवादों को संपादित करते समय सावधानी और नियंत्रण का ध्यान रखा जाए। जानबूझकर गलत घटना प्रकाशित करना और अपुष्ट लेख को पत्रकारिता में स्थान देना पत्रकारिता के अहित को आमंत्रित करना है। व्यक्तिगत हितों की साधना के लिए पत्रकारिता का दुरुपयोग न किया जाए। उल्लिखित सभी विनियमों का अनुपालन करते हुए राजभाषा पत्रिका में श्रेष्ठ आलेख एवं स्तरीय रचनाओं को महत्व दिया जाना चाहिए।

2226 HA/99—4B

राजभाषा संबंधी घटनाओं की रिपोर्टिंग में रोचकता एवं प्रोत्साहनपरक अभिरुचि को स्थान देना आवश्यक है। पुरस्कृत रचनाओं के प्रकाशन से कर्मचारियों को अधिकाधिक प्रेरित किया जा सकता है। स्तरीय सामग्री के प्रकाशन हेतु संपादक एवं प्रकाशक को पत्रकारिता संबंधी नवीन एवं वैज्ञानिक जानकारी अवश्य होनी चाहिए। लेकिन कुछ गिनी चुनी राजभाषा पत्रिकाओं को छोड़कर राजभाषा संबंधी अधिकांश पत्रिकाएं उल्लिखित आचार संहिता की अनदेखी में प्रकाशित हो रही हैं। निस्संदेह जिन पत्रिकाओं को कुशल संपादन का हाथ मिला है वे श्रेष्ठता की सूची में अभिगणित हैं।

प्राय: देखा गया है कि राजभाषा पत्रकारिता संबंधी कार्य के कारगर समन्वयन और प्रभावी प्रबंधन हेतु नियोजित तथा व्यवस्थित किए जाने वाले विशेष प्रयासों का अभाव-सा रहा है। कार्यालयों द्वारा अधिकांश हिन्दी पत्रिकाएं केवल हिन्दी सप्ताह की रिपोर्ट कार्यालय अथवा विभाग की विभिन्न गतिविधियों से संबंधित वार्षिक अथवा अर्ध-वार्षिक लकीरी विवरण को प्रकाशित करने का कार्य कर रही हैं। राजभाषा पत्रकारिता के समुचित विकास हेतु अभी तक सुनियोजित योजनाओं, समुचित कार्यक्रमों तथा आवश्यक संसाधनों की अपेक्षानुसार सुव्यवस्था की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। फलस्वरूप राजभाषा पत्रकारिता में अनमनी अभिरुचि और काम चलाऊ कार्यकुशलता का बाहुल्य है। राजभाषा संबंधी अधिकांश पत्रिकाओं में शोधपरक लेखों का सर्वत्र अभाव है। लेखों एवं रचनाओं का संपादन स्तरानुसार न होकर छापने तथा जल्दी-जल्दी प्रकाशित करने की मानसिकता पर आधृत रहता है। अत: राजभाषा पत्रिकाओं में प्रकाशित सभी लेख एक निर्धारित कार्यालयीन भाषा के साँचे में प्रकाशित किए जाते हैं, जो पाठकों को आकर्षित और प्रेरित करने में असमर्थ हैं। रोचक एवं साहित्यिक रचनाओं को समुचित स्थान न देकर विभागीय विवरणों एवं फोटों चित्रों को सर्वोपरि महत्व दिया जाता है। इससे राजभाषा पत्रकारिता अरुचिकर सी होती जा रही है। राजभाषा पत्रिका में विभागीय विवरण के साथ-साथ हिन्दी की प्रेरक कविताओं, कहानियों, सूक्तियों, चुटकुलों, हास्य व्यंग्यों, आदि को सुव्यवस्थित ढंग से प्रकाशित करने की आवश्यकता है। वस्तुत: हिंदी सप्ताह, कार्यशाला आयोजन आदि की रिपोर्टिंग के अलावा राजभाषा पत्रिका में मौलिक लेखन के स्थायी स्तंभों को स्थान देकर राजभाषा पत्रकारिता के विकास का नया आयाम होगा। अत: राजभाषा पत्रकारिता संबंधी प्रक्रियाओं को सुचारु रूप से नियोजित करने के साथ-साथ उनके वैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक मूल्यांकन के आधार पर राजभाषा पत्रकारिता को गतिशील एवं नवीन दिशा और दशा देने की महत्ती आवश्यकता है।

राजभाषा पत्रकारिता प्रबंधन की संभावनाएं :

प्रामाणिकता और न्यायनिष्ठा पत्रकारिता के आभूषण हैं। संवैधानिक नियम एवं कानून का अनुपालन पत्रकारिता की पहली शर्त है। प्रकाश्य लेख या समाचार का दृष्टिकोण व्यापक एवं उदार होना आवश्यक है। राजभाषा पत्रकारिता भी राजभाषा हिन्दी की संवैधानिक स्वीकार्यता को सुरक्षित रखने के आधार पर आधृत है। इसलिए संवैधानिक निष्ठा का निर्वाह राजभाषा पत्रकारिता का प्रथम प्रकार्य है। वर्तमान वैज्ञानिक एवं तकनीकी युग में कंप्यूटर पर राजभाषा पत्रकारिता का कार्य करने की संभावनाएं अत्यंत व्यापक हैं। राजभाषा पत्रकारिता का क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप विकसित करने की भी आवश्यकता है। बहुभाषी विकासशील भारत में भाषा संबंधी नित्य नवीन चुनौतियां कार्मिकों के समक्ष उपस्थित हो रही हैं। इन परिस्थितियों में राजभाषा पत्रकारिता संबंधी समस्त क्रिया-कलापों में समन्वय स्थापित करके राजभाषा पत्रकारिता प्रगति की संभावनाओं को सार्थक परिणाम दिए जा सकते हैं। राजभाषा पत्रकारिता संबंधी नवीन अनुसंधान और व्यावसायिक अभिरुचि को विकसित करके तकनीकी उपकरणों-कंप्यूटर, वर्ड प्रोससर टेलीप्रिंटर आदि के उपयोग की जानकारी से राजभाषा पत्रकारिता के क्षेत्र में नए प्रतिमान स्थापित करने की आवश्यकता है। राजभाषा पत्रकारिता केवल कार्यालय/संस्थान/संगठन की गतिविधियों का लेखा-जोखा अथवा विभागीय कटपुतला न बने अपितु राष्ट्रीय चेतना की संचारिका, भाषाई सौहार्द की संचालिका और साहित्यिक सृजन की मार्गदर्शिका होनी चाहिए। अत: भाषाई विकास राष्ट्रीय भाईचारा विकसित करने के लिए राजभाषा पत्रकारिता में नए प्रयोगों से संबंधित नवीन खोज की आवश्यकता है। राजभाषा पत्रकारिता के माध्यम से हिन्दी के प्रयोजनमूलक व्याकरण, शब्द संरचना, वाक्य संरचना, अर्थ वैविध्य आदि विषयक शोधपरक सामग्री के अनुसंधान की संभावनाएं हिंदी कार्मिकों के समक्ष दस्तक दे रहीं हैं। हिन्दीतर क्षेत्रों में राजभाषा पत्रकारिता के माध्यम से नए कीर्तिमान स्थापित करने की संभावनाएं भी पग-पग पर संभावित हैं। हिंदीतर क्षेत्र में आदर्श राजभाषा पत्रकारिता के रूप को हिन्दी भाषी प्रदेशों के समक्ष प्रस्तुत करने की भी आवश्यकता है। राजभाषा पत्रकारिता के माध्यम से हिंदी भाषा की सहज संप्रेषणीयता और भाषाई संरचना की मौलिकता को विकसित करने का दायित्व राजभाषा पत्रिका संपादकों के समक्ष अवश्यक होना चाहिए। राजभाषा पत्रकारिता

में नए हिंदी लेखकों को सृजित करने एवं नव संपादक निर्माण करने की प्रबल संभावनाएं विद्यमान हैं। राजभाषा पत्रकारिता में सहज लेखन को विकसित करने की अनुपम शक्ति है, जिसके माध्यम से लोगों में छिपी सृजन प्रतिभा को उजागर किया जा सकता है। इस प्रकार राजभाषा पत्रकारिता प्रबंधन के माध्यम से हिन्दी पत्रकारिता की भावी संभावनाओं को परिणामजनक अवसर दिए जा सकते हैं। राजभाषा पत्रकारिता के क्षेत्र में नवीन नियोजन की नित्य-निरंतर आवश्यकता है। अतः प्रबंधन के तथ्यों के आधार पर राजभाषा पत्रकारिता की संभावनाओं का विश्लेषणात्मक चिंतन, अनुसंधान का विषय है, अब समय आ गया है कि देश में राजभाषा पत्रकारिता प्रबंधन की कार्यप्रक्रिया को भी नवीन दिशा और सुव्यवस्था प्रदान करने के लिए भाषाविदों एवं प्रबंधन मर्मज्ञों की होनहार लेखनी का भरपूर उपयोग किया जाए और राजभाषा पत्रकारिता प्रबंधन को श्रेष्ठ एवं सफल आयाम दिए जाएं, जिससे देश के कार्यों को देश की भाषा में किया जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम —डॉ. वेदप्रताप वैदिक
2. जन संचार और हिन्दी पत्रकारिता —डॉ. अर्जुन तिवारी
3. पत्रकारिता एवं परिचय —डॉ. मधु धवन
4. हिन्दी पत्रकारिता —डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र
5. पत्रकारिता के परिप्रेक्ष्य —जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी
6. पत्रकारिता के सिद्धांत —डॉ. रमेश चन्द्र त्रिपाठी

□□

"जो लोग देश में हिंदी चलाने के विरोधी हैं उन्हीं के कारण तमिलनाडु में तमिल, बंगाल में बंग्ला, आंध्र में तेलगू और केरल में मलयालम का प्रचलन रुका हुआ है। यह एक ऐसा जटिल षड्यंत्र है जिसे जनता को बारीकी से समझना चाहिए। यह षड्यंत्र यदि सफल हो गया तो भारत का इतिहास विफलता बोध से ग्रस्त हो जाएगा और हम जिन मनसूबों के साथ किस्मत को बदलने और सभ्यता को नई दिशा की ओर मोड़ने की तैयारी कर रहे हैं वे धूल में मिल जाएंगे।"

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर'

राजभाषा प्रबन्ध-विकास में मुख्य अधिशासियों का योगदान

☐ प्रभाकर राम त्रिपाठी

भारतीय संविधान में हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिए जाने के उपरांत भारत सरकार के कार्यालयों, उपक्रमों, बैंकों तथा अन्य विभिन्न संस्थाओं के कामकाज की भाषा हिंदी हो गई। किन्तु, इससे पहले से उक्त कार्यों के संपादन में संप्रेषण के माध्यम के रूप में प्रयोग की जा रही अंग्रेजी को एकाएक हटाना और उसकी जगह हिंदी का प्रयोग अनिवार्य करना संभव न था। भाषा की संप्रेषणीयता को सहज स्वाभाविक गति देने के लिए आवयश्क व्यवस्था यथा; पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण, हिंदी न जानने वाले कर्मचारियों के लिए समुचित हिन्दी प्रशिक्षण तथा कामकाज से सम्बद्ध भाषिक उपकरणों में हिन्दी के समावेश के साथ आवयश्क सहायता और अनुकूल पद्धतियों के विकास की व्यवस्था भी की जानी थी। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए राजभाषा हिंदी को सरकारी कार्यालयों में लागू करने के भारत सरकार के आदेश-अनुदेश के साथ राजभाषा अधिनियम, 1963 (संशोधित 1967) तथा उसके अन्तर्गत राजभाषा नियम 1976 तथा अन्य नियमों-विनियमों का निर्माण इस रूप में किया गया कि चरणबद्ध रूप से हिंदी के प्रयोग को क्रमशः बढ़ा कर धीरे-धीरे अंग्रेजी को निरस्त करते हुए हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में पूरी तरह प्रतिष्ठित करने में सफलता प्राप्त की जा सके।

इस प्रसंग में, इस बात की चर्चा करना आवश्यक होगा कि राजभाषा अधिनियम और नियमों के तहत भारत सरकार के आदेश-अनुदेश और वार्षिक कार्यक्रमों के अनुपालन के क्रम में विभिन्न संगठनों में राजभाषा विभाग-अनुभाग की संगठनात्मक संरचना की गई, अनुवाद की व्यवस्था की गई, हिंदी न जानने वाले कर्मचारियों के लिए हिंदी शिक्षण वर्ग चलाए गए, क्रमशः भाषिक उपकरणों में हिंदी, हिंदी-अंग्रेजी के प्रावधान और उनके उपयोग पर भी पहल किया गया तथा विभिन्न प्रकार के प्रपत्रों, आदेशों के साथ साईन बोर्ड, रबड़ की मुहरों, लेखन-सामग्रियों आदि में भी हिंदी को लाने के प्रयास हुए। संसदीय राजभाषा समिति के निरीक्षण, राजभाषा विभाग, अपने-अपने मंत्रालय तथा सम्बद्ध मुख्यालयों के निरीक्षण और पहल पर कालान्तर में मूल रूप से भी थोड़ा-बहुत काम हिंदी में होना शुरू हुआ। परन्तु, इतना होते हुए भी, अधिकांश संगठनों में हिंदी के प्रयोग के क्षेत्र में जो परिणाम प्राप्त होना चाहिए था, वह नहीं हो पाया। हाँलाकि कुछ ऐसी संस्थाएं भी हैं, जहाँ के अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने भाषा के प्रयोग के सम्बन्ध में भारत सरकार की नीतियों का समुचित अनुपालन किया है और उनकी रूचि और प्रयासों के परिणामस्वरूप इन संस्थाओं में राजभाषा के कार्यकलापों का व्यापक विस्तार हुआ है।

यह विचार करने का विषय है कि किसी कारणवश राष्ट्रीय स्तर पर सरकारी कार्यालय, उपक्रम बैंक तथा अन्य सम्बद्ध संगठनों में कुछ संगठन राजभाषा हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने में समर्थ हुए और, अपने अधिकांश कार्यालयीन कार्यों को निपटाने में हिंदीको भाषिक संप्रेषण का माध्यम बनाकर राजभाषा के स्थान के अनुरूप इसे सम्मान दिया; किन्तु इसी के साथ अधिसंख्य संगठन ऐसे रहे हैं, जहां राजभाषा हिंदी को लागू करने के प्रावधानों को अमल में नहीं लाया जा रहा है या वे बहुत ही कम अंशों में प्रयोग कर पा रहे हैं। इस विषय में कारणों का विश्लेषण आवश्यक है। मैंने एक सरकारी क्षेत्र के उपक्रम में वरिष्ठ अधिशासी और मुख्य अधिशासी के दायित्वों का निर्वाह करते हुए इस स्थिति के कारणों को भीतर से जानने का प्रयास किया। कुछ तथ्य जो मुझे सही जान पड़ते हैं, वे निम्नलिखित हैं :—

1. हिंदी को आजादी के बाद संघ की राजभाषा की प्रतिष्ठा तो मिल गई, परन्तु, पूर्व शासक अंग्रेजी की भाषा होने के कारण आज भी हिंदी की अपेक्षा अंग्रेजी की प्रतिष्ठा अधिक है।
2. पारंपरिक रूप में अंग्रेजी के माध्यम से काम निपटाने के आदी होने के चलते अधिकारियों और कर्मचारियों को अंग्रेजी में काम करने में सुविधा का अनुभव होता है।
3. अंग्रेजी की पारिभाषिक शब्दावली की जगह, नई हिंदी पारिभाषिक शब्दावली से परिचय का अभाव।
4. अपनी भाषा के प्रति लगाव की कमी, तथा
5. भाषा को अमल देने वाली एजेन्सियों में निष्ठा की कमी।

नेशनल मिनरल डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन लि., खनिज भवन-10-3-311/, मासाब टैंक, हैदराबाद-500028

मैं यह नहीं मानता कि उपर्युक्त कारण कहीं न कहीं राजभाषा हिंदी के विकास को गति देने में बाधक नहीं हैं। किन्तु, यह भी नहीं मानता कि केवल ये ही वे तत्व हैं, जिनके चलते राजभाषा हिंदी का व्यवहार सम्बद्ध कार्यालयों में नहीं हो पा रहा है। संदेह नहीं, उपर्युक्त कारणों के साथ ही राजभाषा विभाग–अनुभाग के अधिकारियों में हिंदी–अंग्रेजी का समुचित ज्ञान, विषय की जानकारी, लगन और उत्साह, समुचित, प्रशिक्षण आदि ऐसी बाते हैं जिन पर किसी संगठन में हिंदी का प्रयोग निर्भर है। परन्तु इस सम्बन्ध में गंभीर अन्वेषण और लम्बे अरसे से प्राप्त अनुभव के आधार पर मैंने यह महसूस किया कि इसका उपर्युक्त के अतिरिक्त सबसे बड़ा कारण इस विभाग–अनुभाग के प्रसंग में—**प्रबन्धकीय संकल्पना का अभाव है।** इस सम्बन्ध में, मुझे इस बात की चर्चा करते हुए प्रसन्नता है कि एन. एम. डी. सी. के राजभाषा विभाग ने इस विषय को पहले से समझा है और आवश्यक प्रबन्धकीय आधार भी प्रस्तुत किया है और, इसे अमल देने के लिए वर्ष 1994 से ही **अखिल भारतीय राजभाषा प्रबन्ध प्रशिक्षण कार्यक्रम** चला रहा है, जिसमें भारत सरकार के कार्यालयों, उपक्रमों, बैंकों आदि के वरिष्ठ अधिकारियों को राजभाषा प्रबन्धकीय कौशल से परिचय कराया जाता है। अत: मैं यह महसूस करता हूं कि राजभाषा हिंदी को पहल देने के लिए सबसे पहले इस बात को समझना जरूरी है कि इसकी प्रबन्धकीय व्यवस्था क्या हो ? राजभाषा एकक के लिए दूसरे उत्पादक विभाग की तरह ही, किन्तु इससे भी अधिक सजगता की जरूरत है, क्योंकि भाषा का प्रयोग मानवीय संवेदनों से जुड़ा है। फलस्वरूप सर्वप्रथम यह जरूरी है कि हम राजभाषा प्रबन्ध की संभावना से और राजभाषा प्रबन्ध की व्यवस्था से, राजभाषा के प्रयोग से जुड़े अधिकारियों और कर्मचारियों को परिचित कराएं। परन्तु, इससे भी पहले यह आवश्यक है कि संगठनों के मुख्य अधिशासी इस बात पर ध्यान दें कि अपने संगठन में वे समुचित अधिकारियों और कर्मचारियों को लेकर किस रूप में संगठनात्मक संरचना खड़ा कर उसे क्रियाशील करेंगे, राजभाषा एकक को कहां तक प्रशासनिक, कार्मिक, वित्तीय आदि शक्तियों से मजबूत करेंगे; इस एकक को किस प्रकार समुचित भाषिक उपकरण उपलब्ध कराएंगे और किस रूप में इस विभाग के अधिकारियों और कर्मचारियों को प्रोत्साहन देकर उनकी शक्तियों का विकास कर उसका संगठन के हित में उपयोग करेंगे।

किसी संगठन का मुख्य अधिशासी यदि राजभाषा प्रबन्ध व्यवस्था से अपने को भली–भांति परिचित करा पाता है, और तदनुरूप राजभाषा एकक का संरचनात्मक ढाँचा बनाता है, एकक के अधिकारियों को उनके कार्यों, दायित्वों के प्रति जवाबदेह बनाने के साथ–साथ समुचित प्रशासनिक, कार्मिक एवं वित्तीय शक्तियों से सम्पन्न करता है, और इनका संगठन के हित में सफल उपयोग कैसे किया जाए, इस सम्बन्ध में उसे समुचित प्रबन्धकीय प्रशिक्षण दिलाता है, तो इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि राजभाषा हिन्दी संगठन के विकास में सशक्त भाषिक माध्यम की भूमिका निभाने में कोई कसर **नहीं उठा रखेगी।**

अत: वर्तमान परिवेश में भी, जहां अभी तक संघ सरकार के संगठनों के अधिकारियों–कर्मचारियों ने अपनी एक मात्र वैधिक भाषिक माध्यम, राजभाषा हिंदी को अपने कार्यालयीन संस्कार में रचा–पचा नहीं पाए हैं, किसी संगठन का मुख्य अधिशासी अपने कार्यालयीन कार्यों में हिंदी के मूल रूप से प्रयोग को स्वयं पहल देना प्रारम्भ करे और, ऐसा करने के लिए अपने अधीनस्थ वरिष्ठ अधिकारियों–कर्मचारियों को प्रोत्साहित करे तो संगठन के सभी विभागों में राजभाषा हिंदी का प्रयोग अपने आप होने लगेगा। ऐसी स्थिति में संगठन का मुख्य अधिशासी न केवल अपने राजभाषा संबंधी वैधानिक दायित्व को अमल देकर अपने कर्तव्य के निर्वाह में सफल होगा, अपितु, हिंदी के व्यावसायिक स्वरूप को अपना कर कम से कम देशीय कारोबार को व्यापक जन–समूह तथा उपभोक्ताओं तक पहुंचाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। ऐसी स्थिति में "एक पंथ दो काज" होगा, और संगठन के भीतर निर्वाध और प्रभावी संप्रेषणीयता का विकास हो सकेगा।

□□

सरकारी कामकाज में हिंदी के प्रयोग में आने वाली कठिनाइयां एवं समाधान

□ ओम प्रकाश सेठी

भारत एक प्रजातांत्रिक देश है और किसी भी प्रजातंत्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उस देश का राजकाज उसकी जनता की भाषा में हो। भारत में कई भाषाएं बोली जाती हैं, जिनमें से 18 भारतीय भाषाओं को संविधान में मान्यता दी गई है। वे इस प्रकार हैं :—

—हिन्दी/पंजाबी/उर्दू/कश्मीरी/संस्कृत

—गुजराती/मराठी/सिन्धी

—असमिया/उड़िया/बंगला

—तमिल/तेलुगु/मलयालम/कन्नड़/मणिपुरी/कोंकणी/नेपाली

भारत की संविधान सभा ने 14-9-1949 को हिन्दी को संघ की राजभाषा स्वीकारा है क्योंकि यह देश के अधिकांश वर्ग द्वारा बोली व समझी जाती है। इसके साथ भारत की धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक परम्पराएं जुड़ी हुई हैं।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार 26 जनवरी, 1950 से देवनागरी लिपि में लिखी हिंदी, संघ की राजभाषा है, किन्तु यह विचार करके कि हिंदी न जानने वालों को तत्काल इसका प्रयोग करने में कठिनाई न हो, 15 वर्षों तक अंग्रेजी के चलते रहने की भी व्यवस्था की गई थी। ऐसा करने का एक कारण यह भी था कि इस अवधि में प्रशासनिक भाषा के रूप में हिंदी का समुचित विकास कर लिया जाएगा और इसका प्रयोग करने के लिए सभी प्रकार के अपेक्षित साधन और सुविधाएं उपलब्ध हो जाएंगी।

संविधान में, संसद को यह भी अधिकार दिया गया है कि यदि वह चाहे तो अधिनियम पास करके 1965 के बाद भी सरकारी कामकाज में अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने के संबंध में व्यवस्था कर सकती है।

15 वर्षों की समाप्ति पर भारतीयों के मानसिक पटल से अंग्रेजी का प्रभाव समाप्त नहीं हुआ। परिणामस्वरूप हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने के उद्देश्य से राजभाषा अधिनियम 1963 पारित किया गया । इस अधिनियम की धारा 3(3) के अंतर्गत कुछ कागजात् हिंदी और अंग्रेजी में एकसाथ जारी होने चाहिए। वे इस प्रकार हैं:—

1. संकल्प
2. सामान्य आदेश
3. नियम
4. अधिसूचनाएं
5. प्रशासनिक व अन्य रिपोर्टें
6. प्रेस विज्ञप्तियां
7. संसद के समक्ष रखी जाने वाली प्रशासनिक व अन्य रिपोर्टें
8. सरकारी कागज-पत्र
9. अनुबंध
10. करार
11. लाइसेंस
12. परमिट
13. टेंडर नोटिस
14. टेंडर फार्म

राजभाषा अधिनियम को लागू करने के उद्देश्य से 1976 में राजभाषा नियम बनाए गए। इन नियमों के अन्तर्गत हिंदी के प्रयोग की दृष्टि से, सम्पूर्ण राष्ट्र को तीन क्षेत्रों में वर्गीकृत गया :—

"क" क्षेत्र (हिंदी भाषी क्षेत्र)

उत्तर प्रदेश/मध्य प्रदेश/हरियाणा/हिमाचल/राजस्थान/बिहार/दिल्ली और अण्डमान निकोबार।

"ख" क्षेत्र (अर्ध-हिंदी भाषी क्षेत्र)

गुजरात/महाराष्ट्र/पंजाब/चंडीगढ़।

खान विभाग, शास्त्री भवन, नई दिल्ली

"ग" क्षेत्र (अहिंदी भाषी क्षेत्र)

इस क्षेत्र में "क" और "ख" क्षेत्र को छोड़कर शेष सभी राज्य/संघ शासित क्षेत्र आते हैं। तथापि "ग" क्षेत्र में आने वाले राज्य/संघ शासित क्षेत्र इस प्रकार हैं:—

तमिलनाडु/आंध्र प्रदेश/केरल/कर्नाटक

असम/उड़ीसा/पश्चिम बंगाल

त्रिपुरा/अरुणाचलप्रदेश/नागालैंड/मणिपुर/मिजोरम/मेघालय/सिक्किम गोवा/दमन-दीव/दादरा और नागर हवेली/लक्षद्वीप/पांडिचेरी/जम्मू और कश्मीर।

राजभाषा अधिनियम 1963 और राजभाषा नियम 1976 के तहत केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में हिंदी और अंग्रेजी में कार्य करना अपेक्षित है। इस प्रकार आज हम द्विभाषिकता के दौर से गुजर रहे हैं। प्रत्येक कार्यालय में सभी मोहरें/नामपट्ट द्विभाषी होने चाहिए। कहीं से भी हिंदी में प्राप्त पत्र का उत्तर अनिवार्य रूप से हिंदी में दिया जाना चाहिए। राजभाषा नियम की धारा 3(3) में उल्लिखित सभी दस्तावेज अनिवार्य रूप से एक साथ (हिन्दी और अंग्रेजी में) जारी किये जाने चाहिए। इस प्रकार केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में, सरकारी कामकाज में हिंदी का प्रयोग होने लगा है। कई कार्यालयों में अधिकांश कार्य हिंदी में हो रहा है। परन्तु इसके बावजूद प्राय: यह देखने में आता है कि सरकारी कामकाज में हिंदी के प्रयोग के मामले में कई कठिनाइयां सामने आती हैं, जिनका हम सबको मिलकर समाधान निकालना है।

कठिनाईयां :—

1. सरकारी कामकाज में हिंदी के प्रयोग के सिलसिले में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि आज अंग्रेजी में कार्य करना एक झूठी प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया है। हिंदी में कार्य करने वाले अधिकारी/कर्मचारी को हेय दृष्टि से देखा जाता है। परिणामस्वरूप अधिकारी/कर्मचारी हिंदी के प्रयोग के प्रति निरुत्साहित हो जाता है।
2. केन्द्रीय सरकार के अधिकांश वरिष्ठ अधिकारियों की प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रहा होता है, जिसके कारण उन्हें हिंदी में कार्य करने में काफी कठिनाई महसूस होती है।
3. जब वरिष्ठ एवं उच्च अधिकारी अंग्रेजी में कार्य करते हैं तो उनके अधीन कार्यरत कर्मचारियों को भी मजबूरन अंग्रेजी में ही कार्य करना पड़ता है।
4. सरकारी कामकाज में प्रयुक्त होने वाले शब्दों में हिंदी के शब्दों की अपेक्षा अंग्रेजी के शब्द अधिक सरल प्रतीत होते हैं क्योंकि हम अंग्रेजी शब्दों से भलीभांति परिचित हो चुके हैं। इस कारण भी सरकारी कामकाज में अंग्रेजी का अधिक प्रयोग किया जाता है।
5. प्रायः प्रयोग में आने वाले फार्मों को अंग्रेजी में ही भरा जाता है जिससे हिंदी के प्रयोग में बाधा पहुंचती है।
6. सरकारी कार्यालयों में हिंदी टाइपिस्टों की कमी के कारण भी हिन्दी के प्रयोग में कठिनाई महसूस की जाती है।
7. कम्प्यूटरीकरण के कारण भी आज हिंदी के प्रयोग में बाधा आ रही है।
8. छोटे-छोटे दफ्तरों के लिए यह संभव नहीं है कि वे अंग्रेजी और हिंदी में (दोनों में) पत्राचार करें। अत: वे अंग्रेजी का ही प्रयोग करते हैं।
9. सरकार की दोहरी नीति के कारण भी आज हिंदी का प्रचार-प्रसार नहीं हो रहा है।
10. सरकारी अधिकारियों/कर्मचारियों की मानसिकता के कारण भी आज हिंदी का अपेक्षित प्रयोग नहीं हो पा रहा है।

(1) क्या आप बोलचाल में हिंदी का प्रयोग करते हैं?

(2) क्या आप अपने घर में अपना नामपट्ट हिंदी में लगवाते हैं?

(3) क्या आप अपने संबंधियों को पत्र अपनी मातृभाषा/हिंदी में लिखते हैं?

(4) क्या आप अपने हस्ताक्षर हिंदी में करते हैं?

(5) क्या आपके घर में पत्र/पत्रिकाएं हिंदी में आती हैं?

(6) क्या आपके बच्चे हिंदी माध्यम स्कूलों में पढ़ते हैं?

जी नहीं । तो इस तरह हिंदी कैसे आएगी? हिंदी का प्रचार-प्रसार कैसे होगा? क्या सरकारी अनुवाद से। **नहीं**। हम और आप सबकी मदद से। हम और आपकी कोशिश से।

जीवन में तैरना, तैरने से आता है। हिंदी का ज्ञान भी सीखने से ही आएगा। आप आज से ही हिंदी में लिखना शुरू कीजिए। हिंदी अपने आप आ जाएगी।

"हिंदी में काम
बहुत ही आसान,
समझना आसान
समझाना आसान।"

समाधान :—

1. सबसे पहले हमें अधिकारियों/कर्मचारियों के मन में उनकी हीन-भावना को दूर करना होगा। उनके मन में यह गलत धारणा बैठ गई है कि अंग्रेजी में काम करने से उनकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी और हिंदी में काम करने से उनकी प्रतिष्ठा घटेगी। हम उन्हें रूस, जर्मनी, जापान व चीन का उदाहरण दे सकते हैं कि इन विकसित देशों ने अपनी-अपनी भाषा के माध्यम से आज कितनी उन्नति कर ली है—यह सभी जानते हैं। इस प्रकार हम ऐसे उदाहरण दे कर अपने अधिकारियों/कर्मचारियों के मन से हीन-भावना दूर कर सकते हैं और उन्हें हिंदी में कार्य करने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।

2. यदि उच्च अधिकारियों की प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रहा है और उन्हें अच्छी हिंदी नहीं आती है तो उन्हें हिंदी में प्रशिक्षण दिलवाने की व्यवस्था की जानी चाहिए। उच्च वर्ग के अधिकारियों को हिंदी में कार्य करता देख कर उनके अधीन कार्य करने वाले कर्मचारी भी हिंदी में कार्य करने लगेंगे। उन्हें हिंदी में कार्य करने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा तथा उनके मन से हीन भावना दूर हो जाएगी।

3. सरकारी कार्यालयों में आमतौर पर प्रयुक्त होने वाले अंग्रेजी शब्दों का हिंदी में सरल अनुवाद कराया जाना चाहिए ताकि कर्मचारी अपना सरकारी कामकाज आसानी से हिन्दी में कर सकें।

4. कर्मचारियों को हिंदी में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु हर वर्ष कुछ प्रतियोगिताएं आयोजित की जानी चाहिए तथा सफल होने वाले प्रतिभागियों को पुरस्कार और प्रशस्ति-पत्र आदि दे कर सम्मानित किया जाना चाहिए। इससे हिंदी में कार्य करने की उनकी भावना को बल मिलेगा।

5. सरकारी कार्यालयों में सभी फार्मों आदि को द्विभाषी (हिंदी व अंग्रेजी) में उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

6. हिंदी न जानने वाले अधिकारियों/कर्मचारियों को प्रशिक्षण संस्थानों में हिन्दी का प्रशिक्षण दिलवाया जाना चाहिए। प्रशिक्षण उपरान्त उनसे हिंदी में कार्य भी लिया जाना चाहिए। प्रशिक्षण को मात्र औपचारिकता नहीं मानना चाहिए।

7. कर्मचारियों को नियुक्ति के अवसर पर उनके हिंदी ज्ञान पर ध्यान दिया जाना चाहिए और नए कर्मचारियों को शुरू से ही हिंदी में कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।

8. राजभाषा नियम/अधिनियम का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए। इसका उल्लंघन करने वाले कर्मचारी को दण्ड देने की व्यवस्था होनी चाहिए।

9. हिंदी टाइपिस्टों की अधिक संख्या में नियुक्ति की जानी चाहिए ताकि हिंदी के कार्य में वृद्धि हो सके।

10. सरकारी कर्मचारियों/अधिकारियों के लिए हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन किया जाना चाहिए जिनमें उन्हें प्रशासनिक शब्दावली से अवगत कराया जाए ताकि वे अपना अधिक से अधिक सरकारी कामकाज हिंदी में कर सकें।

11. सरकारी काम अनुवाद के सहारे न चलाया जाए। मौलिक रूप से हिंदी का प्रयोग किय जाए। मौलिक रूप से हिंदी में सोचना और लिखना आसान है।

12. अंग्रेजी/उर्दू/अरसी/फारसी के प्रचलित शब्दों को हिंदी में शामिल कर लेना चाहिए। इससे हिंदी को अखिल भारतीय भाषा के रूप में विकसित होने का अवसर मिलेगा।

इस प्रकार मैंने अनुभव के आधार पर सरकारी कामकाज में हिंदी के प्रयोग में आने वाली कठिनाइयों और उनके समाधानों को सुझाया है। वैसे पिछले कुछ वर्षों की तुलना में, आज हम देखते हैं कि पहले की अपेक्षा आज हिंदी में अधिक कार्य हो रहा है। यदि हम अपने मन में हिंदी में ही कार्य करने का संकल्प कर लें तो हम आज से ही अपना सारा सरकारी काम हिंदी में आसानी से कर सकते हैं। हिंदी हमारी मातृभाषा है। भाषा, माता के समान होती है। माता के प्रति जो आदर हममें होना चाहिए, वह हम लोगों में नहीं है। माता चाहे कुरूप ही क्यों न हो, माता, माता ही होती है। दूसरे की सुन्दर माँ से अच्छी होती है। अत: हमें अपनी माता पर, मातृभाषा पर गर्व होना चाहिए।

□□

भारत की जनगणना (1991) के संदर्भ में भारत की भाषाएं और मातृभाषाएं

☐ डॉ आनंद स्वरूप पाठक

भारत का भाषाई सर्वेक्षण जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने योजनाबद्ध तरीके से किया जो (1894 से 1927 तक) ग्यारह बड़े-बड़े जिल्दों में प्रकाशित हुआ था। इस भाषा सर्वेक्षण ग्रन्थ में भाषाओं और बोलियों का संक्षिप्त व्याकरण देने के साथ-साथ प्रत्येक के नमूने और मानचित्र भी दिए गए हैं। यह भारत की भाषाओं और बोलियों के सीमा निर्धारण का प्रथम प्रयास था जो अब तक प्रामाणिक माना जाता है। यद्यपि अब कुछ अपवाद भी सिद्ध हो चुके हैं फिर भी भारत में भाषाविषयक सर्वेक्षण का यही एक मात्र आधार ग्रन्थ है। यद्यपि हिन्दी के प्रसिद्ध कवि और फारसी विद्वान, अमीर खुसरो ने भी तत्कालीन भाषा और बोलियों की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए एक "नूसेपहर" नाम से रचना की थी वह रचना भी इस दिशा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है पर उसका क्षेत्र सीमित है।

जार्ज ग्रियर्सन के "भाषा सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 179 भाषाएँ तथा 744 बोलियाँ थीं। भाषा शास्त्रीय दृष्टि से ग्रियर्सन ने इन भाषाओं और बोलियों को (1) भारोपीय (2) द्रविड़ (3) आस्ट्रिक (4) तिब्बत चीनी तथा (5) अवर्गीकृत परिवार में वर्गीकृत किया है।

उक्त सर्वेक्षण के उपरान्त सार्वदेशिक स्तर पर भाषाई सर्वेक्षण का कोई प्रयास नहीं हुआ है। यद्यपि विभिन्न विश्वविद्यालयों में उपाधि प्राप्ति के लिए क्षेत्रीय भाषाओं बोलियों पर काम हुआ है तथा कुछ विद्वानों ने स्वान्तः सुखाय भी कुछ प्रयास किए हैं। ये प्रयास श्लाघ्य हैं पर अत्यल्प हैं इस दिशा में बृहत्कार्य करने का अवकाश है। इधर स्वतंत्रता प्राप्ति के अनन्तर 1971, 1981 और 1991 में देश में जनगणना प्रत्येक दशाब्दि के आरंभिक वर्ष में की गई है। इन प्रयासों में भारतीय जनता की गणना के साथ-साथ अन्य बहुमूल्य सूचनाएं भी एकत्र की गई हैं। क्षेत्र विशेष के निवासियों की मातृभाषा सम्बन्धी जानकारी भी एक इसी प्रकार की महत्वपूर्ण सूचना है। इस सूचना को प्राप्त करने में तथा इसका संयोजन करने में प्रत्येक सावधानी बरती गई है। मातृभाषा की परिभाषा तथा जनगणना करने वालों को दिए गये निदेशों से इस तथ्य की पुष्टि होती है।

मातृभाषा-परिभाषा :—

किसी व्यक्ति के बचपन में उसकी माँ के द्वारा उससे बोली गई भाषा मातृभाषा है। यदि माँ बचपन में मर गई हो तो बचपन में उस व्यक्ति के घर में बोली जाने वाली भाषा मातृभाषा कहलाएगी। गूंगे और बहरे बच्चों के प्रकरण में माँ द्वारा बोली जाने वाली भाषा मातृभाषा लिखी जायेगी। सन्देहास्पद प्रकरणों में परिवार में बोली जाने वाली भाषा लिखी जाएगी।

जनगणना करने वालों को निदेश :

पूछे जाने पर बताई गई मातृभाषा के नाम को पूरे तौर पर लिखा जाना चाहिए उसे संक्षेप में नहीं लिखा जाना चाहिए।

क. यदि बताई गई भाषा किसी भाषा की बोली है तो गणनाकर्ता को उसका निर्धारण स्वयं नहीं करना चाहिए।

ख. गणनाकर्ता को धर्म और मातृभाषा में सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।

ग. व्यक्ति द्वारा बताई गई भाषा को लिखने के लिए गणनाकर्ता बाध्य है, उससे तर्क नहीं करना चाहिए और न उसके द्वारा बताई गई भाषा के अतिरिक्त अन्य कोई भाषा लिखनी चाहिए।

घ. किसी क्षेत्र में सकारण शक होता है कि किसी आयोजित आन्दोलन द्वारा वास्तविक मातृभाषा नहीं लिखवाई जा रही है तो भी व्यक्ति द्वारा बताई गई मातृभाषा को ही लिखें और अपने पर्यवेक्षक अधिकारी को इसके सत्यापन के लिए प्रतिवेदित करें। आप स्वयं कोई सुधार करने के लिए प्राधिकृत नहीं हैं।

मातृभाषाओं की संख्या एवं उनका विभिन्न भाषाओं में समाहार :—

उपर्युक्त निदेशों के अन्तर्गत 1991 की जनगणना में देश के निवासियों द्वारा दर्ज कराई गई मातृभाषाओं की संख्या—10400 है। (इसमें जम्मू-कश्मीर तथा महाराष्ट्र की धूले जिले की अक्रानी और अक्कलकुआ तहसील के—33 गांवों की

डी-106, पुष्पांजलि एन्क्लेव, दिल्ली-34

मातृभाषाएं सम्मिलित नहीं हैं यहां जनगणना परिस्थितिवश नही हो सकी थी)।

मातृभाषाओं की इतनी बड़ी संख्या वास्तव में उनके द्वारा बोली जाने वाली मातृभाषा के उनके द्वारा दिये गये नाम हैं। अतएव भाषाशास्त्रीय दृष्टि से इनकी संवीक्षा की गई और सम्पादित कर भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से संगत किया गया। फलतः भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से संगत 1576 मातृभाषाएं बनीं तथा 1796 नाम अवर्गीकृत माने गये और वे "अन्य" मातृभाषाओं की कोटि में रखे गए। वर्गीकृत 1576 भाषाओं को उपलब्ध भाषाशास्त्रीय ज्ञान के आधार पर भाषाशास्त्रीय विधि से पुनः वर्गीकृत किया गया। इस प्रकार 10,000 या इससे अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली मातृभाषाओं को अखिल भारतीय स्तर पर उपयुक्त भाषा के अन्तर्गत वर्गबद्ध करके 1991 की मातृभाषाओं का प्रस्तुतीकरण किया गया है। ऐसी भाषाओं की संख्या-114 है। इन भाषाओं को दो भागों में प्रस्तुत किया गया है।

भाषाएं :—

1. **सूचीबद्ध भाषाएँ :**—इसमें संविधान की आठवीं अनुसूची में निर्दिष्ट **अठारह** भाषाएं - अर्थात् असमी, बंगला, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, ओड़िया, पंजाबी, संस्कृत, सिन्धी, तमिल, तेलुगु, और उर्दू भाषाएँ आती हैं।

2. **सूची से इतर भाषाएँ :**—संविधान की आठवीं अनुसूची में जो भाषाएँ नहीं हैं वे इस भाग में आती हैं जिनकी संख्या 96 है। जो इस प्रकार हैं :— आदि अनल, अंगामी आओ, अरबी, भीली, मोटिया, भूमिज, विष्णुप्रिया, बोड़ो चाखेसांग, चाकरू, चांग, कुर्गी देउरी दीमासा, डोंगरी, इंगलिश, गडाबा, गांगटे, गोरो, गोंडी, हलबी, हलम, हमार, हो जतापू, जुआंग, काबुई, करबी (मिकिर) खानदेशी, खारिया, खासी, खेजा, खीमनूनगन खोंड, किन्नोरी किसान, कोच, कोडा (कोरा) कोलामी, कोम, कोंडा कोन्याक, कोरक, कोरबा कोया, कुई कूकी, कुडुख (उरांव) लाहुली, लँहदा, लाखेर, लालुंग, लेपचा, लियांगमेई, लिम्बू, लोथा, लुशाई (मिंजो) माल्टो, माओ, मरम, मारंग, मिरी (मिसिंग) मिशमी, मोद्य, मोनपा, मुण्डा मुण्डारी नीकोबारी, निश्शी (डालफा) नोक्चे, पेटे परजी, पावी, फोम, पोचुरी, राभा, रेगमा, सन्ताली, सवारा, सेमा, शेरपा, तांड. खुल तांगसा, थाड़ो तिब्बती, त्रिपुरी, तुलु वाइफेई, वान्चो, यिमचुगग्री, जेलियांग जे.मी जोउ।

संविधान की अष्टम अनुसूची में निर्दिष्ट भाषाओं में हिन्दी को भारत की राजभाषा का स्थान दिया गया है। हिन्दी के अन्तर्गत—10,000 (दस हजार) से अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली मातृभाषाएँ 48 मानी गई हैं। जो निम्न प्रकार है:—

मातृभाषा का नाम		मातृभाषा लिखने वालों की संख्या
(1)	(2)	(3)
1.	अवधी	48,316
2.	बघेली	13,87,160
3.	बागडी राजस्थानी	5,93,730
4.	बंजारी	8,87,632
5.	भरमौरी/गद्दी	18,919
6.	भोजपुरी	2,31,02,050
7.	ब्रजभाषा	85,230
8.	बुन्देली	16,57,473
9.	चम्बेआली	63,408
10.	छत्तीसगढ़ी	1,05,95,199
11.	चूराही	45,107
12.	ढूंढ़ारी	9,65,006
13.	गढ़वाली	18,72,578
14.	हाडौती	12,35,252
15.	हरयाणवी	3,62,476
16.	हिन्दी	23,34,32,285
17.	जौनसारी	96,995
18.	कांगड़ी	4,87,999
19.	खैरारी	14,307
20.	खोरठा(खोट्टा)	10,49,655
21.	कुलवी	1,52,442
22.	कुमायूंनी	17,17,191
23.	कुर्माली थार	2,36,856
24.	लवाणी	13,722
25.	लमानी/लम्बाड़ी	20,54,537
26.	लारिया	64,903
27.	लौधी	68,145
28.	मागधी/मगही	1,05,66,842
29.	मैथिली	77,66,597
30.	मालवी	29,70,103
31.	मंडेआली	4,40,421

(1)	(2)	(3)
32.	मारवाडी	46,73,276
33.	मेवाडी	21,14,622
34.	मेवाती	1,02,916
35.	नागपुरिया	7,77,738
36.	नीमाड़ी	14,20,051
37.	पहाड़ी	21,79,832
38.	पंचपरगनिया	1,51,599
39.	पंगवाली	14,780
40.	पवारी/पौवारी	2,13,874
41.	राजस्थानी	13,328,581
42.	सदन/सदरी	15,69,066
43.	सनोरी	11,537
44.	सौदवारी	37,958
45.	सिरमौरी	18,280
46.	सुगाली	1,13,491
47.	सरगूजिया	10,45,455
48.	सुरजापुरी	3,70,558

इस प्रकार कुल हिन्दी बोलने वालों की संख्या—337, 272, 114 आंकी गई है। संविधान की अष्टम सूची की 18 अठारहों भाषाओं के अन्तर्गत आने वाली और 10,000 से अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली मातृभाषाओं की संख्या 85 है जिसमें हिन्दी की 48 मातृभाषाएं भी सम्मिलित है। सूचीबद्ध भाषाओं/मातृभाषाओं को भारत की 96.29 प्रतिशत जनसंख्या बोलती है जबकि 3.71 प्रतिशत जनसंख्या अन्य भाषाओं/मातृभाषाओं का प्रयोग करती है।

हिन्दी से इतर सूचीबद्ध 17 भाषाओं के अन्तर्गत आने वाली 37 भाषाओं की तालिका निम्न प्रकार है।

1. असमी
2. बंगाली
3. चकमा
4. हेजोंग
5. राजवंग्सी
6. कन्नड़
7. गुजराती
8. गुजराऊ
9. सौराष्ट्री

(1)	(2)	(3)
10.	बड़गां	
11.	कश्मीरी	
12.	सीराजी	
13.	कोंकणी	
14.	मलवाणी	
15.	मलयालम	
16.	येडवा	
17.	मणिपुरी (मैतेयी)	
18.	मराठी	
19.	नेपाली (गोरखाली)	
20.	ओडिया	
21.	भतरी	
22.	ओजा	
23.	रेल्ली	
24.	सम्बलपुरी	
25.	पंजाबी	
26.	बागरी	
27.	भटेआली	
28.	विलासपुरी/कल्हूरी	
29.	संस्कृत	
30.	सिन्धी	
31.	कच्छी	
32.	तमिल	
33.	केकडी	
34.	येडुकला	
35.	तेलुगु	
36.	वड़ारी	
37.	उर्दू	

अष्टम सूची से इतर भाषाओं (96) के अन्तर्गत 131 मातृभाषाएं आती है जिनकी नामावली नीचे दी गई है।

आदि आदिगैलोंग, आदि मिनियोंग, अनाल, अंगामीं, आओ, अरबी, बाउरी, बारेल, भीली (भीलोडी) ढोडिया, गामी गामीती (गावित) कोकना (कोकनी, कु कना) मावेची, पारधी पावरी, राठी, टाडवी, वारली, वागंडी भोटिया, भूमिज, विष्णुप्रिया, बोडो (बोरों) कछारी चाकरू (चौकरी) चांग, कुर्गी (कोडगू) देउरी, दिमासा, डोगरी, अंग्रेजी, गडाबा, गेगटी गोरा दोरली, गन्डा,

(गंडो) गोंडी, कलारी, मरिया, मुरिया हलबी, हलम, हमार, हो, जतापू, जुआंग, काबुई, रोंगमेइ, करबी, (मिकिर) अहीडानी, डांगी, खानदेशी, खारिया, खासी पनार (स्येन्तेंग) खेजा, खीमनुनगान खोंड (कोड़) कूवी, किन्नोरी, किसान, कोच कोडा (कोरा) कोलामी, कोम, कोडा (कोडू) कोरकू, मुवासी, कोराकू, कोरवा, कोया कुई, कुंडुख (उरांव) लोहुली लंहदा (मुल्तानी) लाखेर, लालुंग, लेपचा, लाइगमेई, लिम्बू लोथा, लुशाई, (मिजो) माल्टो (पहाडिया) माओ, मरम, मारिंग, मिरी, (मिसिंग) मीशमी, मोघ, मोनपा, क्वेल, मुण्डा, मुण्डारी, नीकोबारी, निश्शी, (डालफा) आपातानी, बंगनी, निशांग, तागिन, नोक्चे पेटे, धूखा, पावी, फौम, पोंचूरी, राभा, रेगमा, संगटाम, कूरमाली, माहिली, सन्ताली, संवारा, सेमा शेरपा, तांडखुल, तांगसा, थोड़ा, तिब्बती, कोकबराक, रियांग, त्रिपुरी तूलू, वैफेई, वान्चों,यिमचुंगरी, जीलियांग, जेमी, जोऊ।

सूचीबद्ध और सूची से इतर वर्गों के अन्तर्गत आने वाली 114 भाषाएं पांच भाषा परिवारों के अन्तर्गत आती हैं जो निम्नप्रकार है:—

1. भारत यूरोपीय परिवार

2. भारतीय आर्य भाषाएं

1. असमी, 2. बंगाली 3. भीली/भीलोडी 4. विष्णुप्रिया 5. डोंगरी 6. गुजराती 7. हलबी 8. हिन्दी 9. कश्मीरी 10. खानदेशी 11. कोंकणी 12. लॅहदा 13.मराठी 14. नेपाली 15. ओडिया 16. पंजाबी 17 संस्कृत 18. सिन्धी 19. उर्दू

ख. जर्मनिक—1 इंगलिश

2. द्रविड परिवार की भाषाएं

1. कुर्गी/कोडगु 2. गोंडी 3. जतापु 4. कन्नड़ 5. खोडा कांड 6. किसान 7. कोलामी 8. कोडा 9. कोया 10. कुई 11. कुडुख/उरॉव 12. मलयालम 13. माल्टो 14. परजी 15. तमिल 16. तेलुगु 17. तुलु

3. आस्ट्रो-एशियाई भाषाएं

1. भूमिज, 2. गदाबा 3. हो 4.जुआंग 5. खरिया 6. खासी 7. कोडा/कोरा 8.कोर्कू 9. कोरबा 10. मुण्डा 11. मुण्डारी 12 नीकोबारी 13. सन्ताली 14. सवारा

4. तिब्बत वर्मी परिवार की भाषाएं

1. आदि 2. अनल 3. अंगामी 4.ओ 5. भोटिया 6. बोडो 7. चाकेसांम 8. चकरू/चोकरी 9. चांग 10. देउरी 11. दिमासा 12. गांगते 13. गारो 14. हलम 15. हमार 16. काबुई 17. करबी/मिकिर 18. खेजा 19. खीमनुंनगन 20. किन्नौरी 21. कोच 22. कोम 23. कोंयक 24. कुकी 25. लाहुली 26. लाखेर 27. लालुंग 28. लेपचा 29. लैंगमेई 30. लिम्ब 31. लोथा 32. लुशाई/मिजो 33. मणिपुरी 34. माओ 35. मरम 36. मारिंग 37. मिरी/मिसिंग 38. मिशमी 39. मोघ 40. मोनपा 41. निश्शी/डालफा 42. नोक्चे 43. पेते 44. पावी 45. फोम 46. पोचुरी 47. राभा 48. रेंगमा 49. संगतम 50. सेमा 51. शेरपा 52. तांखुल 53. तांगसा 54. थाडो 55. तिब्बती 56. त्रिपुरी 57. वेफेई 58. वान्चो 59. यिमचुंगरी 60. जीलियांग 61. जेमी 62. जोऊ

5. सैमेटिक—हैमेटिक :—अरबी

जनगणना में विभाषाओं/बोलियों के आंकड़े कितने विश्वसनीय हैं इन पर कोई टिप्पणी करना निरर्थक है, क्योंकि ये सूचनाएं स्वयं प्रयोक्ताओं ने दी हैं। वैसे अवधी, व्रजभाषा, हरयाणवी, पहाड़ी, आदि के बोलने वालों की संख्या एक- एक करोड़ से अधिक ही है किन्तु राष्ट्रभाषा हिन्दी के मोह में सभी ने अपनी मातृभाषा हिन्दी लिखवाकर अपने राष्ट्र ऋण को चुकाने का प्रयास किया है। ऐसा लगता है यह स्थिति तो केवल हिन्दी से सम्बन्धित है। अन्य सूचीबद्ध और सूची से इतर भाषाओं के प्रति प्रतिबद्ध जनों की स्थिति भी कुछ इसी प्रकार की हो सकती है। भाषाई दृष्टि से सर्वेक्षण करने वालों को तो भाषा के नमूने इकट्ठे करके भाषा का निर्णय करना होता है। दो विभाषाओं और बोलियों के मिलने के क्षेत्रों में तो भाषा प्रयोग के नमूने ही सहायक होते हैं फिर भी इससे भाषाई स्थिति का एक आकलन तो हुआ ही है।

उक्त विवेचन के उपरान्त यह निष्कर्ष निकलता है कि जनगणना (1991) के अनुसार भारत में 18 सूचीबद्ध भाषाएं तथा 96 सूची से इतर भाषाएं अर्थात् 114 भाषाएं हैं तथा 10000 से अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली 216 मातृभाषाएं है जिनमें 85 सूचीबद्ध भाषाओं से सम्बद्ध है तथा 131 सूची से इतर भाषा वर्ग में है। इन भाषाओं, मातृभाषाओं को पांच भाषा परिवारों में बांटा गया है। जनगणना के उक्त भाषा विषयक विवेचन से भारत का भाषाविषयक परिप्रेक्षय पूर्णत : स्पष्ट है।

□□

साहित्यिकी

संस्कृत साहित्य में विमान

□डॉ. उर्वी

आधुनिक वैज्ञानिक युग में अत्यन्त विस्तार को प्राप्त विमान विज्ञान भारत में केवल आधुनिक युग की देन नहीं है। आधुनिक युग में हवाईजहाज की प्रथम उड़ान 17 दिसम्बर सन् 1903 को ऑरविल राइट नामक अमरीकी ने की थी। वह भी केवल 12 सैकेण्ड की उड़ान थी। उसी दिन उसके भाई बिल्वर राइट ने 59 सैकेण्ड की उड़ान ली थी। परन्तु विमान विज्ञान उससे भी पूर्व अत्यन्त प्राचीन काल में वेदों में आविर्भूत हो चुका था। वेदों में विमान प्रयोग के अनेक प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष उल्लेख प्राप्त होते हैं।

ऋग्वेद[1] में स्पष्ट कहा गया है कि धन की कामना करने वाला मनुष्य जल-थल-वायु-यान विद्या से यान बनाकर उनमें आए-जाए तो उसकी उन्नति होती है। ये यान अश्विनौ से युक्त होने चाहिए। अश्विनौ दो हैं जिनमें से एक सबको रस से व्याप्त करता है तथा दूसरा ज्योति से। अभिप्राय यह है कि रस अर्थात् जल तथा ज्योति अर्थात् अग्नि आदि पदार्थो में जो शीघ्रगमन आदि गुण विद्यमान हैं उस गुण से युक्त ये सभी यान हों। अश्विनौ से अग्नि जल के अतिरिक्त, अग्नि-वायु भी ग्रहण किया जा सकता है क्योंकि गति वायु में भी है। इससे अगले मंत्र में कहा गया है कि वे यान इतने सुगठित हों कि तीन दिन और तीन रात तक वे चलते रहें अर्थात् इतनी लम्बी अवधि तक चलने पर भी उनमें किसी प्रकार का अवरोध न उत्पन्न हो, वे गति नियन्त्रक युक्त हों तथा उन्हें अपनी इच्छानुसार चलाया या रोका जा सके[2]। इस मन्त्र में विद्यमान पतङ्गैः शतपद्भिः तथा षडश्वैः ये तीनों शब्द उन् यानों की गति के सूचक हैं अर्थात् पतङ्ग जो बहुत गति से उड़ते हैं अतः वे यान उसके समान उड़ान में या प्रत्येक दौड़ में गति (करते हैं) करने वाले हों, शतपद्भिः अर्थात् जैसे कोई सौ (असंख्य) पैरों से अर्थात् तीव्र वेग से दौड़े, ये यान उसी प्रकार तीव्र वेग दौड़ने अथवा उड़ने वाले हैं, षडश्वैः—जिनमें छः अश्व जुते हैं, यह सर्वविदित ही है कि अश्व शक्ति का प्रतीक है मार्ग को तय करने के कारण ही घोड़े को अश्व कहते हैं। यहाँ पर छः अश्व से अभिप्राय यानों में प्रयुक्त तीव्र गति वाले छः यन्त्रों से है। इस प्रकार इतनी उपमाएं देकर गति को इस यन्त्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण बताया गया है। आज भी यानों और यन्त्रों की शक्ति अश्व-शक्ति से मापी जाती है। इससे अगले मन्त्र में कहा गया है कि यान अरित्रों[3] से युक्त होने चाहिए। हे मनुष्यों! जिसमें कोई आलम्बन (सहारा) नहीं है जिसमें बिना यान के कोई ठहर नहीं सकता, जिसमें हाथ से पकड़ने का कोई सहारा नहीं मिलता ऐसे अन्तरिक्ष में (अन्तरिक्ष को भी वेद में समुद्र कहा गया है) वे अश्वौं अर्थात् पार्थिव पदार्थ तथा तेजस पदार्थ यानों को चलाने में साधन बनते है, वे दोनों अश्वी जहां चाहें वहां रोकने के लिए जिनमें सौ कलें लगी हैं, अथवा यानों के अवयवों को परस्पर दृढ़ एवं संयुक्त रखने के लिए जिनमें सौ खम्भे लगे हैं ऐसे विशाल वायुयान को चलाकर (गति देकर) अन्य स्थान पर ले जाते हैं उनमें रखे भोज्य पदार्थ को प्राप्त कराते हैं। मन्त्र में प्रयुक्त अरित्र शब्द से अभिप्राय आधुनिक युग में प्रयुक्त किये जाने वाले अंग्रेजी के ब्रेक से है। यान का जल, थल, वायु कोई भी स्थान हो, अरित्र होने आवश्यक हैं, वे भी कम नहीं पूरे सौ (शतारित्राम्)। वायुयानों में ब्रेक या रोधक (कलें) होते हैं जिनमें यानों को आवश्यकतानुसार रोका जा सके तथा यान पतित या क्षतिग्रस्त न हो। यानों के अवयवों को दृढ़तापूर्वक परस्पर जोड़ने वाले बन्धन भी अरित्र कहलाते हैं। उन स्तम्भों को भी अरित्र कहते हैं जिनमें रोधकयन्त्रों (कतायन्त्रों) को स्थिर किया जाता है। एक अन्य मन्त्र में यान की बनावट की चर्चा की गई है। वह यान लम्बे से लम्बे मार्ग को भी कम से कम समय में पार करा दे, इस प्रकार के यान को मधुवाहन रथ कहा गया है अर्थात् मधुर गति वाला यान, जिससे यात्रा-कष्ट तनिक भी न हो है । विमान तीन धातुओं से बना होना चाहिए। ये तीन धातु पीतल, लोहा, ताँबा, सोना, चाँदी में से कोई तीन हो सकती हैं। इनसे बने हुए यान हमें भूमि तथा अन्तरिक्ष में परिभ्रमण कराते हैं। अग्नि तथा जल से युक्त ये यान ऊँचे, नीचे तथा समतल भागों में वेगपूर्वक आवागमन करते हैं। हमें लाते हैं तथा ले जाते हैं। इसके लिए उपमा देकर कहा गया है कि जैसे आत्मा या मन, वायु या प्राण अपने-अपने समयानुकूल दिनों में शीघ्रता से आते जाते हैं अर्थात् जैसे जीव अन्तरिक्ष आदि मार्गों से शीघ्रता के साथ दूसरे शरीर में चला जाता है और जैसे

53 बी, एम. आई. जी. फ्लैट्स, पॉकिट-सी, फेज़-III, अशोक विहार, दिल्ली-110052

वायु वेग के साथ चलता है वैसे संसार सुख की इच्छा करने वाले लोग पृथ्वी आदि के विकारों से प्रेरक यन्त्र युक्त यानों को रचकर और उनमें जल अग्नि (अश्विनौ) आदि का अच्छे प्रकार से प्रयोग करके अभीष्ट दूर देशों को शीघ्रता से प्राप्त कर सकते हैं।[4] जल की भाप ही विमानों को आकाश में उड़ाती हैं। जब अच्छी प्रकार से गमन कराने वाले अग्नि वायु आदि जलों से युक्त होते हैं तो वे यान को आकाश में उड़ा ले जाते हैं।[5] अभिप्राय यह है कि विमानों में एक जलाशय होता है। उस जलाशय में पानी भरकर नीचे ईंधन प्रज्वलित करने से पानी खौलता है और भाप बनती है। वह भाप ही प्रेरकयन्त्रों को घुमाती है, जिससे विमान आकाश में उड़ने लगता है। वेदों में यानों के लिए केवल जल, अग्नि, वायु आदि का वर्णन ही नहीं है अपितु इन यानों को रचने की पद्धति भी बताई गई है कि यान में बारह खम्भे बनाने चाहिए। जिनमें सब प्रेरकयन्त्र लगाए जाएं। एक चक्र बनाना चाहिए जिससे सब कलाएं घूमें। तीन यन्त्र मध्य के अवयवों को धारण करने के लिए हों। उनके साथ यान में तीन सौ पैंच लगाने चाहिएं और साठ (प्रेरकयन्त्र) कलायन्त्र स्थापित करने चाहिएं जिनमें कुछ यान को चलाने वाले और कुछ यान को रोकने वाले हों।[6] इस प्रकार यह बहुत ही दक्ष कार्य है जिसे साधारण व्यक्ति नहीं जान सकते। केवल यान निर्माण कार्य में संलग्न शिल्पी ही इस विद्या को जानते हैं।

इस प्रकार इन यानों में धातुओं के अतिरिक्त आवश्यकतानुसार लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। ये यान बहुत ही सुदृढ़ होते हैं। इन पर वायु, ताप आदि आघातों से क्षति नहीं होती। ये बिना विश्राम लिए तीन दिन-रात तक चल सकते है। ये यान पक्षियों के समान आकाश में उड़ते हैं।

इस रथ रूपी विमान के वेग की कल्पना मन से की गई है कि यह विमान मन से भी अधिक वेग वाला हो, उसके पंख पक्षी के पंखों के समान हों, तीन बन्धनों वाला तीन धातुओं से युक्त। (इस विषय में लेख के प्रारम्भ में भी चर्चा की जा चुकी है।) तथा तीन चक्रों वाला हो।[7] यहां चक्र से अभिप्राय विमान के नीचे लगे हुए तीन पहियों से हैं जो विमानावतरण के समय बाहर निकल आते हैं अन्यथा वे विमान के अन्दर रहते हैं। इस प्रकार की विशेषताओं से युक्त विमान ही एक राष्ट्र को उत्तम राष्ट्र बनाने में सहयोग प्रदान करता है।

वैदिक ज्ञान आधुनिक विज्ञान के (विद्युत् बहुल) युग के सर्वथा अनुकूल है। अत: अग्नि के अतिरिक्त विद्युत् से चलने वाले विमान की चर्चा भी वैदिक मन्त्रों में की गई है— हे उत्तम बुद्धि वाले मनुष्यों तुम हमारे अत्यन्त समृद्ध, उत्तम अन्न आदि पदार्थों से पूर्ण, श्रेष्ठ विचार वाले विद्वानों से पूर्ण, कलायन्त्रों को घुमाने वाले, दण्डों और शस्त्रास्त्रों से पूर्ण, अग्नि रूपी घोड़ों से उड़ने वाले, जिनमें तारयन्त्रों से सम्बद्ध बिजलियां विद्यमान हैं ऐसे विमान रूपी रथों से पक्षियों के समान उड़ जाओ, उड़ जाओ।[8] इस मन्त्र में यह स्पष्ट हो जाता है कि विमानों में उत्तम प्रकार के अन्न होने चाहिएं। यहां अन्न से अभिप्राय भोजन की सुव्यवस्था से है, विमान का ढांचा इस प्रकार निर्मित हो कि उसमें प्रचुर मात्रा में अन्न रखा जा सके, अधिकाधिक यात्री सुविधापूर्वक यान में बैठ सकें। आज भी विमानों में यात्रियों के लिए भोजन की पूर्ण व्यवस्था होती है। श्रेष्ठ कल्याणकारी विचारों वाले विद्वान् जो विमान में किसी प्रकार की बाधा आने पर उस बाधा को दूर कर सकें, विमान में आई गड़बड़ी को जो पहचान सकें, विमान में अवश्य होने चाहिएं। विमान अपने आप में पूर्ण होना चाहिए।

वेदों में विमानविद्या के वर्णन के पश्चात् रामायण में आकाश में उड़ने वाले विमान के वर्णन से उस काल में विमानों की उपस्थिति का बोध होता है। लङ्का पर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् श्री रामचन्द्र का सीता-लक्ष्मण-सहित पुष्पक विमान (वह विमान इच्छानुसार कार्य करने वाला तथा सब प्रकार से सुखद था)[9] से अयोध्या लौटने से यह स्पष्ट हो जाता है कि विमान विद्या रामायणकाल में विद्यमान रही होगी। अभिज्ञानशाकुन्तल में महाकवि कालिदास वर्णन करते हैं—राजा दुष्यन्त दैत्यों को मारने के लिए जिस रथ पर गए तथा मार कर इन्द्रलोक से भूलोक पर जिस रथ से उतर रहे थे वह एक प्रकार का विमान ही था क्योंकि उसके प्रसंग में ऊर्ध्वस्य वायु का उल्लेख है।[10] उस समय अत्यन्त वेग से उतरने के कारण दुष्यन्त को ऐसा लगता है जैसे मनुष्य लोक उसके पास उछाला जा रहा हो।[11]

एवमेव महाकवि कालिदास के रघुवंशमहाकाव्य में दिलीप की संतानहीनता का कारण बताते हुए गुरु वसिष्ठ कहते हैं कि एक बार इन्द्रलोक से लौटते हुए दिलीप कल्पतरु की छाया में आश्रित सुरभि के प्रति शिष्टआचरण न करने के कारण, दिलीप को वह शाप दे देती है परन्तु आकाश गङ्गा के नाद के कारण दिलीप अथवा उसके सारथि को शाप नहीं सुनाई देता। यहां यह सब बताने का उद्देश्य यह है कि दिलीप विमान में रहे होंगे क्योंकि आकाशगङ्गा वायुओं के परिवह नामक मार्ग में ही है। इतना ही नहीं रघुवंश के पाँचवे सर्ग में रघु तथा कौत्स के वर्णन प्रसंग में रघु के निर्बाध (तीव्र) गति वाले रथ का कालिदास वर्णन करते हैं।[12] वस्तुत: यह रथ ही विमान है। इसी प्रकार रघुवंश के ही त्रयोदश सर्ग में लङ्का पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् सीता के साथ राम जिस पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या लौटते हैं वह विमान राम की इच्छा के अनुसार चलता है।[13]

महर्षि भारद्वाज प्रणीत वैमानिक प्रकरण में इस पुष्पक विमान को मन के समान गति वाला, इच्छानुसार रूप धारण करने वाला तथा सभी ऋतुओं में सुख देने वाला कहा है।[14] पुष्पक विमान का इसी प्रकार का वैशिष्ट्य आदि कवि वाल्मीकि रामायण में बताते हैं।[15]

श्रीमद्भागवत् पुराण में भी एक अन्य भ्राजिष्णु नाम के विमान का वर्णन प्राप्त होता है। वह भ्राजिष्णु विमान ही महर्षि कर्दम के आकाश में सञ्चरण का साधन था। पुष्पक विमान के समान ही यह विमान भी दिव्य, सभी ऋतुओं में सुखदायक, कामदुघ, लोक-लोकान्तरों में सञ्चरणशील था।[16]

महाभारतकाल में भी इन विमानों को कार्य व्यवहार में लाया जाता था जैसे, भागवत् पुराण में शाल्व का यदुवंशियों के साथ युद्ध का वर्णन है। शाल्व ने भगवान् शङ्कर जी से यादवों को भयभीत करने वाला ऐसा विमान मांगा जो चालक की इच्छानुसार सर्वत्र जा सके और जिसे देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प तथा राक्षस कोई भी न तोड़ पाए। तब भगवान् शङ्कर ने सौभ नाम का एक लोहे का विमान बनाकर शाल्व को दिया। उस इच्छाचारी, अभेद्य विमान को प्राप्त करके शाल्व यादवों (वृष्णियों) के वैर का स्मरण करता हुआ द्वारकापुरी पहुंचा।[17] वहां उस विमान से विविध अस्त्रशस्त्रों की वर्षा होने लगी। वह मयदानवनिर्मित विमान कभी अनेक रूप और कभी एक रूप का दिखाई देता था, कभी दिखाई देता था तो कभी अदृश्य हो जाता था, इस प्रकार शत्रुओं को उसकी गति का बोध भी नहीं होता था। वह सौभविमान किसी एक स्थान में स्थित नहीं होता था, कभी पृथ्वी पर, कभी आकाश में, कभी पर्वत शिखर पर और कभी जैसे जलती हुई मशाल घूम रही हो इसी प्रकार जल में घूमता हुआ दिखाई पड़ता था।[18]

महाभारत के उद्योगपर्व में उल्लिखित है कि उशीनर ने पर्वतों की कन्दराओं में नदियों की धाराओं पर, झरनों के आसपास, विचित्र उद्यानों में, वनों और उपवनों में, रमणीय अट्टालिकाओं में, प्रासादशिखरों पर, वायु के मार्ग से उड़ने वाले विमानों पर तथा पृथ्वी के भीतर बने हुए गर्भगृहों में ययातिकन्या माधवी के साथ विहार किया।[19] आदिपर्व में वर्णन है कि राजा उपरिचर वसु के द्वारा घोर तपस्या को देखकर इन्द्र आदि देवों ने उन्हें श्रेष्ठ देश का श्रेष्ठ विमान तथा कभी न मुरझाने वाली माला इत्यादि प्रदान किए। विमान के लिए इन्द्र कहते हैं कि जो देवताओं के उपयोग में आने योग्य है, ऐसा स्फटिक मणि का बना हुआ एक दिव्य, आकाशचारी एवं विशाल विमान मैंने (इन्द्र ने) तुम्हें भेंट किया है। सम्पूर्ण मनुष्यों में एक तुम्ही इस श्रेष्ठ विमान पर बैठकर शरीरधारी देवता की भांति सबके ऊपर विचरण करोगे। विश्वकर्मा के विषय में कहा गया है कि उन्होंने देवताओं के असंख्य विमान बनाए गए हैं।[20] इसी पर्व में महर्षि दुर्वासा के द्वारा दिये गये मन्त्र से कुन्ती ने भगवान् धर्म का आवाहन किया।

भगवान् धर्म सूर्य के समान तेजस्वी विमान पर बैठकर उस स्थान पर आए जहां कुन्ती जप में लगी हुई थी।[21] वनपर्व में इन्द्र पाण्डवों के पास आते हैं। उनके साथ गन्धर्वों और अप्सराओं के समूह सूर्य के समान तेजस्वी विमानों द्वारा शत्रुदमन देवराज को चारों ओर से घेर कर उन्हीं के पथ का अनुसरण कर रहे थे।[22]

अर्जुन हिमालय से विदा लेकर मातलि के साथ इन्द्ररथ से स्वर्गलोक को प्रस्थान करते हैं, ऊपर जाकर उन्होंने सहस्त्रों अद्भुत विमान देखे।[23] यहां यह ध्यान देने योग्य है कि महाभारत में चर्चित ये सभी विमान मानवनिर्मित न होकर मायावी हैं।

ग्यारहवीं शताब्दी में राजा भोज के एक (वास्तु विज्ञान पर आधारित) सुप्रसिद्ध ग्रन्थ समराङ्गसूत्रधार के एक विशेष अध्याय यन्त्रविधानम् से ज्ञात होता है कि राजा भोज ने स्वयं भी विमान बनाने का प्रयोग सफलतापूर्वक किया था। उनके अनुसार पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण और वायु की गति से विपरीत दिशा में विमान को ले जाने की समस्या का समाधान किया गया था। इसके लिए एक प्रकार की गैस और पंखे के प्रयोग का उल्लेख मिलता है। भोजराज कहते हैं कि हल्की लकड़ी को एक पक्षी के समान आकार दिया जाए और उसके भीतर (उदर में) रसयंत्र रखें और उसके नीचे (आधार में) अग्नि से प्रज्वलित कोई ज्वलनशील पदार्थ हो (भट्टी हो)। (वहां पारे को भी विमान उड़ाने के लिए प्रयुक्त किये जाने का उल्लेख है, इस पारद शक्ति को ऊर्जा प्रदा कहा गया है।) महर्षि भारद्वाज ने वैमानिक प्रकरण में 'शक्त्युदगमाद्यष्टौ' इस सूत्र से विमानों को आकाश में संचरण कराने वाली आठ शक्तियों का संकेत किया है जिसे बोधानन्द ने वर्णित किया है।[24] उस पर आरुढ़ होकर मनुष्य उसके दोनों पक्षों को चलाकर, वायु द्वारा अत्यन्त ऊंचाई पर उड़ाते हुए, और इसके अन्दर प्रयुक्त (सुप्त) पारे की शक्ति से विचित्र कार्य करते हुए आकाश में दूर तक जाता है। इस प्रकरण में विमान को सुरमन्दिर के समान माना गया है।[25]

पारे की शक्ति का प्रयोग करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल में यन्त्रों को चलाने में यद्यपि पेट्रोल काम में नहीं लाया जाता था तथापि पेट्रोल का काम वायु, जल, अग्नि जलचाप (हाईड्रोलिक्स) से किया जाता था। इनके अतिरिक्त पारा, (जिसका उल्लेख ऊपर भी किया जा चुका है) रसायन,

और रत्नों से ऊर्जा उत्पन्न की जाती थी। भोज विचरित समराङ्गण सूत्रधार में कहा गया है कि देवमन्दिर के समान बड़ा (भारी) यह काष्ठनिर्मित विमान चलता है इसके भीतर चार पारे से भरे हुए पक्के घड़ों को रखे।[26] जब लोहे की कटोरी में रखी हुई मन्दी अग्नि से घड़ों को तपाया जाता है तो घड़ों में उत्पन्न गुण से सन्तप्त वह पारा गरजने वाला हो जाता है, यहां पारे को रसराज कहा गया है, इस पारे (रसराज) की शक्ति से आकाश में (विमान) झटपट आभूषण बन जाता है अर्थात् उड़ जाता है।[27] इस पारे की गर्जना इतनी भीषण होती है कि हाथी भी भयभीत होकर भाग जाते हैं, लोहे के यन्त्र (अर्थात् चक्र क्योंकि प्रत्येक यन्त्र में चक्र एक आवश्यक उपकरण है) को वृत्त में बांध कर उस यन्त्र को भीतर से (अर्थात् चक्र के किनारे कुछ उठे होने पर उसमें किसी भी प्रकार की महीन लुगदी भरी जा सकती है (रसराज) पारे से पूर्ण करके ऊंचे स्थान पर स्थापित उस तप्त पारे को सिंह की गर्जना के समान मृदङ्ग के शब्द वाला बना देता है।[28]

एक अन्य श्लोक में कहा गया है कि विमान को किस प्रकार का रूप देना चाहिए कीलें लगाकर उसके सब अंगों को जोड़कर लकड़ी वाले उस विमान को सब ओर से चमड़े से ढककर (जिससे उसका लकड़ी वाला भाग न दिखे) पुरुष अथवा युवति का सुन्दर रूप बनाना चाहिए।[29] यह विमान सब प्रकार की सुविधाओं से सम्पन्न था। इसमें राजाओं के लिए सब प्रकार की क्रीड़ाओं की व्यवस्था थी।

उन्नीसवीं शताब्दी में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका नामक ग्रन्थ में नौ विमानादिविद्या प्रकरण में अनेक मन्त्रों को उद्धृत करते हुए विमानविज्ञान का आदि स्त्रोत वेदों में ही प्रमाणित किया है। वास्तव में, विमानशास्त्र के प्रणेता महर्षि भारद्वाज भी अपने द्वारा रचित आकाशयान के (व्योमयान के) स्वरूप का साधन वैमानिक प्रकरण वेदत्रयी का मुख्य साररूप ही मानते हैं।[30] पर अपनी वृत्ति में बोधानन्द स्पष्ट करते हुए प्रतिपादित करते हैं कि "उस वेद रूपी समुद्र का मन्थन करके महामुनि भारद्वाज ने सभी यन्त्रों के स्वरूप का साधन रूपी नवनीत निकाल कर (हमें दिया है।)[31] भारद्वाज का वैमानिक प्रकरण आठ अध्यायों, 100 अधिकरणों तथा 500 सूत्रों में निबद्ध है। ऐसा स्वयं भरद्वाज ने वैमानिक प्रकरण के प्रारम्भ में लिखा है।[32] उनके लिए हुए 500 सूत्र कहां हैं यह ज्ञात नहीं होता परन्तु श्री बोधानन्द ने कुछ सूत्र दिए हैं और इन पर वृत्ति लिखी है। उन्होंने इसमें तीन सहस्त्र श्लोक लिखे हैं। इसमें विमान शब्द का अर्थ बताते हुए लिखा है कि जो पक्षी के समान एक देश से दूसरे देश को जाता है, एक लोक से दूसरे लोक को जाता है।[33] भरद्वाज के वैमानिक प्रकरण में विमानों की साङ्गोपाङ्ग निर्माण विधि सहित विमानपरिचालकों के लिए आवश्यक 32 विमान रहस्य का वर्णन है।

सूर्य और भिन्न-भिन्न ऋतुओं की विष शक्तियां आकाशमार्ग में यात्रियों की त्वचा, मांस मेद, चर्बी, हड्डी आदि को नष्ट करती हैं। इन तत्वों से रक्षा के लिए विशेष प्रकार से तैयार किए गए वस्त्र पहिनने चाहिएं। इन वस्त्रों से चालक तथा सभी यात्री सुरक्षित रहते हैं तथा बल वृद्धि होती है— सर्वदोषविनाशस्स्यात्, तस्यहिबलवर्धनम्। लोहाधिकरणम्—इसमें विमान जिस लोहे से बनाए जाते हैं उस लोहे को बनाने की विधि बताई गई है। विमान की संपूर्ण रचना में 16 प्रकार का भारहीन लोहा काम में लिया जाता है।

विमान-शक्तियों के लिए सात यंत्र निश्चित किए गए हैं। उन यन्त्रों से ही उनकी क्रिया होती है।[34] विमान का ऊपर उठना उद्गमा शक्ति से, नीचे उतरना पंजरा शक्ति से, सूर्याशक्त्यपकर्षिणी सूर्य की गर्मी को हटाने वाली शक्ति है। इस प्रकार कुल सात शक्तियां कार्य करती हैं। प्रत्येक शक्ति के लिये अलग-अलग रसायनों का उपयोग किया गया है।

एवमेव विद्युत् यंत्र की भी स्थापना की जाती थी और उससे जन-शक्ति केन्द्रों को तारों से जोड़ दिया जाता था।[35] विमान में यात्रियों के बैठने के स्थान तथा तारों को लपेटने आदि के लिये गेण्डा, कछुआ, कुत्ता, चूहा और खरगोश के चमड़े का उपयोग किया जाता था।[36] विमान में उसकी गति-वेग के नापने का यन्त्र, गर्मी को नापने का यन्त्र तथा समय जानने के यन्त्र भी लगाए जाते थे।[37]

भारद्वाज के वैमानिक प्रकरण में एक त्रिपुर विमान का भी उल्लेख है। इस विमान में छत्रियां अर्थात पंख (पंखे के पंख) लगे हुए होते हैं उनके ऊपर कुछ ऐसी मणियां लगी होती हैं जो उत्पन्न की गई बिजली की शक्ति को अत्यन्त वेग से ग्रहण कर लेती हैं। उसके पश्चात् इस शक्ति के महान् वेग से ये मणियां यन्त्र को घुमाती हैं। यन्त्र के घूमने से पांचों (पंखे के) पंख चुटकी जितने समय में अर्थात् एक सेकेण्ड से भी कम समय में अत्यन्त वेग से घूमते हैं।[38] इस त्रिपुर विमान के निर्माण में वैज्ञानिक विधि से तीन लोहों के सही सम्मिश्रण से उत्पन्न किये गए एक विशेष प्रकार के त्रिणेत्र नामक लोहे का ही प्रयोग हो यह महर्षि भरद्वाज ने वैमानिक प्रकरण में प्रतिपादित किया है। क्योंकि वह त्रिणेत्र नामक लोहा जल, अग्नि, वायु और आतप आदि से विकृत न होने वाला, न जलने वाला, न काटा जा सकने वाला, न तोड़ा जा सकने वाला भार रहित नीलाभ कान्तिमय मोर के पंखों

2226 HA/99—5A

के समान मृदुल कोमल, अच्छी प्रकार से ढक लेने वाला तथा आरामदायक होता है।[39]

इसी प्रकार एक अन्य विमान है रूक्म विमान। जिसकी गति थी 250 मील एक घटिका (लगभग 30 मिनट) में।[40]

प्राचीन भारतीय विज्ञान और तकनीक की अनेक शाखाओं के लेखक विद्वानों के नाम उपलब्ध होते हैं, यथा नारायण—विमानचन्द्रिका, शौनक—व्योमयान, गर्ग-तन्त्रयान, वाचस्पति-कल्पयानबिन्दु, चाक्रायणि खेटयानप्रदीपिका, धुण्डिनाथ-व्योमयानार्कप्रकाश। इनके अतिरिक्त ऋषियों के नाम भी प्राप्त होते हैं जिन्होंने विज्ञान में नए-नए अन्वेषण किये थे परन्तु आज का समाज उन सभी को पौराणिक कथाओं में परिगणित करता है। विज्ञान पर प्राचीन ग्रन्थों के उपलब्ध न होने से हम यह नहीं कह सकते कि प्राचीन काल में विज्ञान के क्षेत्र में विद्वान् ऋषि अज्ञानी थे। यह माना जाता है कि वस्तुत: प्राचीन काल में विद्वानों की मान्यता थी कि विज्ञान और तकनीकी ज्ञान के रहस्यों को गुप्त रखना चाहिए, जो व्यक्ति अपने हैं जो रहस्य को प्रकट नहीं करने वाले हैं केवल उन्हीं को बताए जाएं जिससे शत्रु कोई लाभ न उठा सके। इस प्रकार के रहस्यों को लिखकर रखने में उन्हें संकोच और भय रहता था और यदि लिखते भी थे तो ऐसे गुप्त भाषा में या सूत्रों में जिसे उनके कुछ विश्वस्त शिष्य ही समझ सकें। आज भी आणविक, अस्त्र-शस्त्रों के रहस्य गुप्त रखे जाते हैं। एक देश दूसरे देश को नहीं बताता।

भरद्वाज अथवा भारद्वाज के ग्रन्थ-यन्त्र-सर्वस्व के अतिरिक्त एक अन्य ग्रन्थ अंशुबोधिनी, जिसमें सूर्य की किरणों से शक्ति प्राप्त करने के सुझाव हैं, प्राप्त होता है, इस प्रकार महर्षि भारद्वाज आदि प्रमुख महर्षियों ने परम विज्ञानमयी इस वैमानिकी विद्या का आविष्कार कर मनुष्यों के अन्तरिक्षगमन करने की, लोक-लोकान्तर में जाने की प्रक्रिया प्रस्तुत की। अब यह सब प्राचीन ज्ञान-विज्ञान का रहस्य केवल कथाओं, वार्ताओं का विषयमात्र कहीं कहीं ग्रन्थों के भीतर परिलक्षित होता है। यह विद्या किस प्रकार प्रचार प्रसार को प्राप्त हो, कैसे यह व्यवहार में लाई जाए जिससे यह सभी जनमानस के लिए सहायक, सुख का साधन बन जाए इसके लिए विद्वानों को मिलकर प्रयास करना चाहिए। इसके लिए भौतिक विज्ञान अनुसन्धानरत, सूर्य की किरणों से शक्ति अथवा ऊर्जा को प्राप्त करने के इच्छुक, व्योमयान (आकाशयान) के निर्माण में लगे हुए वैज्ञानिकों के द्वारा भी संस्कृत वाङ्मय का अध्ययन तथा अनुशीलन अर्थात् निरन्तर अभ्यास अथवा प्रयत्न किया जाना चाहिए।

1. तुग्रो ह भुज्युमंश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवां अवाहाः। तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षुदभिरपोदकाभिः॥—ऋ० 1.116.3, 2. तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिर्नासित्या भुज्युमूहथुः पतद्भिः। समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभिः रथैः शतपद्भिः षडश्वैः॥—ऋ० 1.116.4, 3.अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे। यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम्॥—ऋ० 1.116.5, 4. त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवी मशायतम्। त्रिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम्॥—ऋ० १.३४.७, 5. कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति॥—ऋ० १.१६४.४७, अथर्व० ६.२२.१, ९.१०.२२, १३.३.९, 6.द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत। तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः॥—ऋ० १.१६४.४८, नि० ४.२७, अथर्व० १०.८.४, 7. तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिबन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः। येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः॥—ऋ० १.१८३.१ 8. आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कैः रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः। आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः॥—ऋ० १.८८.१, 9. काञ्चनस्तम्भंसवीतं वैदूर्यमणितोरणम्॥ मुक्ताजालप्रतिच्छन्नं सर्वकालफलदुमम्। मनोजवं कामगमं कामरूपं विहंगमम्॥ मणिकाञ्चनसोपानं तप्तकाञ्चनवेदिकम्। निर्मितं सर्वकामैस्तु मनोहरमनुत्तमम्॥ नतु शीतं न चोष्णं च सर्वर्तुसुखदं शुभम्। १५.३८-४२ (उत्तरकाण्ड), 10. कतमस्मिन् मरुतां पथि वर्त्तामहे। इस प्रश्न के उत्तर में मातलि कहता है—त्रिस्त्रोतसं वहति यो गगनप्रतिष्ठां ज्योतीषि वर्तयति च प्रविभक्तरश्मिः। तस्य द्वितीयहरिविक्रम निस्तमस्कं वायोरिमं परिवहस्य वदन्ति मार्गम्॥ (अभिज्ञानशाकुन्तलम् ७.६), 11. केनाऽप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वमानीयते। अभि. ७.९, 12. वशिष्ठमन्त्रो क्षणजात् प्रभावाद् उदन्वदाकाशमहीधरेषु। मरुत्सखस्येव बलाहकस्य गतिर्विजघ्ने नहि तद्रथस्य॥ (रघु. महा. ५.२७), 13. क्वचित्पथा संचरते सुराणांक्व चिद् घनाना पतता क्वचिद्य। यथा-यथा मे मनसोऽभिलाषः प्रवर्त्तते पश्य तथा विमानम्। (रघु. महा. १३.१९), 14. मनोजवं कामगमं कामरूपं सर्वर्तु सुखदम् आसीत्। 15. पुष्पकं तस्य जग्राह विमानं जयलक्षणम्। मनोजवं कामगमं कामरूपविहंगमम्॥ बहुश्चर्य भक्तिचित्रं ब्रह्माणा परिनिर्मितम्। न तु शीतं न चोष्णञ्च सर्वर्तुसुखदं शुभम्॥ (वाल्मीकि रामायण, उत्तर काण्ड ५.३८-४२), 16. प्रियायाः प्रियमन्विच्छन् कर्दमो योगमास्थितः। विमानं कामगं क्षत्तस्तर्हीवाऽऽविरचीकरत्॥ (भा. पु. १०/७६/७-८) दिव्योपकरणोपेतं सर्वकाल सुखावहम्। भ्राजिष्णुना विमानेन कामगेन महीयसा। वैमानिकानत्यशेत चरेल्लोकान् यक्षनिलः॥ (भा. पु. ३.२३.१२, १४,४१), 17. पुरं निर्माय शाल्वाय प्रादात्सौभमयस्मयम्। स लब्धवा कामगं यानं तमोधाम दुरासदम्॥ ययौ द्वारवतीं शाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन्। स तत्र योधितो राजन् कुमारैर्वृष्णिपुङ्गवैः। आगतः कामगं सौभमारुलक्षैवनृशंसवत्॥ (महा० भा० वनपर्व, 14.6), 18. बहुरूपैकरूपं तद्दृश्यते न च दृश्यते॥ मायामयं मयकृतं दुर्विभाव्यं परैरभूत॥ क्वचिच्भूमौ क्वचिद्व्योम्नि गिरिमूर्धि जले क्वचित्। अलातचक्रवद्भ्राम्यत् सौभं तद्दुरवस्थितम्।। (भा० पु० 10.76.21.22), 19. कन्दरेषु च शैलानां नदीनां निझरेषु च। उद्यानेषु विचित्रेषु वनेषूपवनेषु च॥ हर्म्येषु रमणीयेषु प्रासाद शिखरेषु च॥ वातायन विमानेषु तथा गर्भगृहेषु च॥ (महा भा० उद्योग पर्व 118.18,19) 20. यो दिव्यानि विमानानि त्रिदशानां चकार ह॥ वही, आदिपर्व 66, 29, 21.आजगाम ततो देवो धर्मो मन्त्रबलात् ततः। विमाने सूर्यसंकाशे कुन्ती यत्र जपस्थिता॥ (वही, आदिपर्व। 122.3), 22. ते समन्तादनुययुर्गन्धर्वाप्सरसां गणाः। विमानैः सूर्यसंकाशैर्देवराजमरिंदमम्।। (वही, वनपर्व 166.4) 23. ददर्शाद्भुतरूपाणि विमानानि सहस्त्रशः। (वनपर्व 42.32), 24. शक्तयुद्गमो भूतवाहो धूमयान शिखोद्गमः। अंशुवाहस्तारामुखो मणिवाहो मरुत्सखः। इत्यष्टकाधिकरणे वर्गाण्युक्तानि शास्त्रतः॥ (वैमानिक प्रकरण पृ० ३९५-३९६, संस्करण सं० १९९६) आठ शक्तियां निम्नलिखित हैं— १. शक्त्युद्गमः—विद्युतशक्तिः। २. भूतवाहः—अग्निजलवाच्यवादिः। ३. धूमयानः-वाष्प शक्तिः। ४. शिखोद्गमः—पञ्चशिखीतैलशक्तिः। ५. अंशुवाहः—सूर्यांशुसमुद्भूतशक्तिः। ६. तारामुखः—चुम्बकशक्तिः। ७. मणिवाहः—सूर्यकान्तप्रभृतिमणीनां शक्तिः। ८. मरुत्सखः—वायुशक्तिः। 25. लघु दारुमयं महाविहङ्गमं दृढसुशिलष्टतनुं विधाय तस्य। उदरे रसयन्त्रमादधीत ज्वलनाधारमधोऽस्य चाग्निपूर्णम्॥ तत्रारुढ़ः पुरुषस्तस्य पक्षद्वन्द्वोच्चाल प्रोज्झितेनाऽमिलेन।

2226 HA/99—5B

सुप्तस्माऽन्तः पारदस्याऽस्य शक्त्या चित्रं कुर्वन्नम्बरे याति दूरम्। इत्थमेव सुरमन्दिरतुल्यं संचलत्यलघु दारुविमानम्॥ (समराङ्गण सूत्रधार अध्याय यन्त्रविधान, ३९ ।९५, ९६.९७) 26. इत्थमेव सुरमन्दिर तुल्यं च चलत्यलघु दारुविमानम्। आदधीत विधिना चतुरोन्तस्तस्य पारदभृतान् दृढकुम्भान्॥९७॥, 27. अंयः कपाला हितमन्दवह्निप्रतप्तकुम्भभुवा गुणेन। व्योम्नो झगित्याभरणत्वमेति सन्तप्तगर्जद्रसराजशक्त्या ॥१८॥ 28. वृत्तसन्धितमथायसयत्रं तद् विधाय रसपूरितमन्तः। उच्चदेशविनिधा पिततप्तं सिंहनादमुरजं विदधाति ॥१९॥ स कोऽपयस्य स्फारः स्फुरति नरसिंहस्य महिमा, पुरस्ताद, यस्यैता मदजलमुचोऽपि द्विपघटाः। मुहुः क्षुत्वा श्रुत्वा निनदमपि गम्भीर विषमं, पालयन्ते भीतास्तवरितमवधूयाङ्कुशमपि ॥१००॥, 29. श्लिष्टं कीलकविधिना दारुमयं सृष्टचर्मणा गुप्तम्। पुंसोऽथवा युवत्या रूपं कृत्वातिरमणीयम् ॥१०२॥ (समराङ्गण सूत्रधार, मन्त्रविधानं ३१ वां अध्याय), 30. बृहद्विमानशास्त्रम् मंगलाचरणम्—श्लोक—३, 31. निर्मथ्य तद्वेदाम्बुधि भरद्वाजो महामुनिः। नवनीतं समुदधृत्य यन्त्रसर्वस्वरूपकम्॥ (बृहद्विमान शास्त्र श्लोक १०), 32. सूत्रैः पंचशतैर्युक्तं, शताधिकरणं तथा। अष्टाध्यायसमायुक्तमतिगूढमनोहरम्॥ वैमानिकप्रकरणं कथ्यतेऽस्मिन् यथामति। वैमानिकप्रकरण १.१, 33. वेगसाम्याद् विमानोऽण्डजानामिति। देशाद् देशान्तरं तद्वद्द्वीपाद्द्वीपान्तरं यथा॥ लोकलोकान्तरं चापि, योऽम्बरे गन्तुमर्हति। स विमान इति प्रोक्तः खेटशास्त्रविदांवर॥ 34. शक्तिप्रसवयंत्रेण मूलशक्तिरुदीरिता। एवं क्रमात् सप्तयन्त्रशक्तयः परिकीर्तिताः परिकीर्तिताः॥, 35. विद्युत्यन्त्रं प्रतिष्ठाप्य तन्त्रीस्तस्मिंश्च योजयेत्।, 36. गेण्ड-कूर्म श्वाखुशशनक्रकणं च यथा क्रमम्। चर्माणि पंच प्रोक्तानि वेष्टनासन निर्णये॥, 37. एतद्वेगपरीणामे यन्त्रवेगप्रमाणकम्। संस्थापयेत् तद्दुष्णप्रमापकमपिक्रमात्॥ कालप्रमापकं चैव॥, 38. एतद् भ्रमणतः छत्रयोऽपि भ्रमन्ति हि। एतैनैकच्छोटिकाऽवछिन्नकालेऽतिवेगतः। सहस्रलिङ्कप्रमाणा विद्युत संजायते क्रमात्। वैमानिकप्रकरणम् (बृहद्विमानशास्त्र) त्रिपुरविमानप्रकरणम् ३९५-३९९, 39. समीकृतं चेन्मृदुलं केकापिच्छसमप्रभम्। अदह्यमच्छेद्यमत्रोदयं भारवर्जितम्। जलाग्निवाताऽऽतपाद्यैरभेद्यं नाशर्जितम्। शुद्धं सूक्ष्मस्वरूपं भवेल्लोहं त्रिणेत्रकम्॥ (बृहद् विमानशास्त्र, त्रिपुर विमानप्रकरणम् श्लोक-१७, १८, १९), 40. वैमानिक शास्त्र १४६ पृष्ठ, मैसूर संस्करण।

"भारतीय भाषाएं नदियाँ हैं और हिन्दी महानदी। हिन्दी देश के सबसे बड़े हिस्से में बोली जाती है। हमें इसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करना ही चाहिए। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि हिन्दी के बिना हमारा काम चल नहीं सकता।"

—रवीन्द्र नाथ ठाकुर

एकात्मता के दो छोर : एकनाथ तथा तुलसी

☐ डॉ. रामगोपाल सोनी

सोलहवीं शताब्दी का काल भारतीय समाज के पतन तथा पराजय का काल था। अवसाद तथा नैराश्य भारतीय जीवन को जर्जर बनाए दे रहा था। जीवन के प्रति कहीं कोई सुरक्षा न थी, शासकों के अत्याचारों से लोकजीवन बुरी तरह संत्रस्थ था। सामान्य जनता दोहरी मार से पीड़ित थी। एक तरफ इस्लाम धर्म उसके लिए चुनौती बनकर आया था, दूसरी तरफ ऊंची जाति तथा अधिकारी वर्ग गरीब तथा अस्पृश्य कही जाने वाली जनता के साथ अत्याचार कर रहा था। वह जातीय दर्प तथा सत्ता के मद में डूबा हुआ अछूतों को पशुओं से भी हीन समझ रहा था। ऊंच-नीच, जाति-पांति की भावना इतनी अधिक बढ़ गई थी कि मनुष्य मनुष्य के लिए हेय बन गया था। अनेक प्रकार के अत्याचारों तथा दमनचक्र से समाज पिसा जा रहा था। यही कलिकाल था, जहां प्रभु के जन्म की संभावना होती है, गीता में कहा गया है :—

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत: ।"
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम॥"

तुलसीदास जी ने भी अनुभव किया और कह उठे:—

"जब जब होय धरम की हानी।
बाढहिं असुर अधम अभिमानी।
तब तब प्रभु धरि मनुज संरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥"

इस प्रभु की प्राप्ति का, नज़दीक पहुंचने का मार्ग भक्ति थी, इस परिस्थिति ने समाज में एक अकुलाहट, एक असंतोष पैदा कर दिया जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप भक्ति आंदोलन का प्रादुर्भाव हुआ। इस आंदोलन के बीज यहां से अंकुरित होने लगे और समय पाकर वे वटवृक्ष के रूप में उभरे। किसी भी आंदोलन की पृष्ठभूमि इसी तरह तैयार होती है और समय पाकर उसका विस्फोट होता है। कोई भी आंदोलन एक दीर्घकालीन अंसतोष की प्रतिक्रिया है। भक्ति आंदोलन भी हमारी सामाजिक प्रतिक्रिया का परिणाम है। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य इस भक्ति आंदोलन के अगुवा हैं। दक्षिण के आचार्यों ने भक्ति आंदोलन को उत्तर भारत में सक्रिय किया, जो एक सामाजिक और धार्मिक क्रांति के रूप में विकसित हुआ। यह भक्ति आंदोलन देशव्यापी था, उसने देश के प्रत्येक कोने में अपना स्वर मुखर किया। दक्षिण भारत को भक्ति को जन्म भूमि कहा जा सकता है। भागवत पुराण में कहा गया है—

"उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धि कर्नाटके गता।
क्वचित चिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णता गता॥"

अर्थात् भक्ति द्रविड़ देश में जन्मी, कर्नाटक में विकसित हुई, महाराष्ट्र में विहार किया और गुजरात में आकर बूढ़ी हो गई। इस सम्बन्ध में यह दोहा भी प्रचलित है—

"भक्ति द्राविड उपजी लाये रामानन्द।
प्रकट किया कबीर ने सप्त द्वीप नवखंड॥"

इसी समय देश के विभिन्न प्रदेशों में अनेक संत तथा भक्त कवियों ने जन्म लिया जिन्होंने हिन्दू धर्म को प्रतिष्ठित किया, उसका प्रचार, प्रसार किया तथा पीड़ित मानवता के लिए अमृत घट लेकर आए। इन संतों ने हमारी सामाजिक कुरीतियों पर कुठाराघात किया तथा मनुष्य की समानता का सिद्धांत प्रतिपादित किया। जीवन में संघर्ष करने की शक्ति दी, नई चेतना दी तथा आश की नई किरण दी। इन्होंने मानवता, समानता के सिद्धांत को धर्म के माध्यम से प्रतिष्ठित किया। हिंदू धर्म की झूठी अहमन्यता को समाप्त करने का प्रयास किया। भारतीय आकाश पर संतों का उदय हुआ, फलस्वरूप काश्मीर में संत लल्ला, पंजाब में नानक, बंगाल में चंडिदास, चैतन्य महाप्रभु, उत्तर भारत में कबीर, सूर, तुलसी, रविदास; राजस्थान में मीरा, आसाम में शंकरदेव, गुजरात में नरसी मेहता, महाराष्ट्र में ज्ञानदेव, तुकाराम, नामदेव, एकनाथ, आंध्र में वेमना, कर्नाटक में पुरंदरदास और दक्षिण में आलवार संतों का अविर्भाव हुआ जिन्होंने अपनी अमृत वाणी से संतप्त हिंदू समाज को अमृत का पान कराया। उन्होंने ईश्वर का हँसता-खेलता रूप हमारे सामने रखा, ईश्वर को मनुष्य के रूप में चित्रित किया जो हमारे समान ही संघर्ष करता है और विजय प्राप्त करता है। ईश्वर के इस रूप में समाज

एफ-4, इन्द्रलोक अपार्टमेंट, तेलंगखेडी ले आउट, अमरावती रोड, नागपुर-440010

को एक नई जीवन-शक्ति दी, एक नया आदर्श रखा। इस जनजागरण का कार्य तुलसीदास तथा एकनाथ ने एक ही धरातल पर किया। तुलसीदास जी की कर्मभूमि थी उत्तर भारत और एकनाथ जी की कर्मभूमि महाराष्ट्र। दोनों समकालीन थे और समान परिस्थितियों में पैदा हुए थे।

एकनाथ जी का जन्म गोदावरी नदी के किनारे बसे तीर्थ पैठण में सन् 1532 में हुआ। उनका देहावसान सन् 1599 में हुआ अर्थात् 67 वर्ष तक उन्होंने जीवन को भोगा। तुलसीदास जी का जन्म भी इसी काल में हुआ। उनकी जन्मतिथि के संबंध में विद्वानों में मतभेद है परंतु सर्वमान्यमत के अनुसार उनका जन्म भी सन् 1532 में हुआ तथा उनकी मृत्यु सन् 1622 में हुई। इस तरह तुलसीदास जी 81 वर्ष तक जीवित रहे और दीर्घ आयु भोगी। एकनाथ का जन्म निजामशाही में हुआ। विजयनगर के हिंदू राज्य का पतन होने से कई मुस्लिम राज्य अस्तित्व में आए। तुलसी दास जी का जन्म हुमायुं के शासन काल में हुआ और उनका शेष जीवन अकबर के शासन काल में बीता। जिस समय अकबर गद्दी पर बैठा, उस समय उसकी उम्र 13 वर्ष की थी और उस समय तुलसी दास 24 वर्ष के थे। दोनों संत तत्कालीन शासकों की मदांधता एवं अत्याचार के दर्शक थे। आश्चर्य की बात है कि दोनों का जन्म मूल नक्षत्र में हुआ। तुलसी दास जी के माता-पिता ने उनका त्याग कर दिया और वे अनाथ की तरह भटकते रहे। अंत में नरहरिदास उन्हें गुरू के रूप में मिले जिन्होंने उनके हृदय में राम-भक्ति के बीज बोए। एकनाथ के माता पिता भी उनके जन्म के कुछ दिनों के बाद स्वर्ग सिधार गए, उनके दादा-दादी ने उनका पालन पोषण किया। एकनाथ के प्रपितामाह एक महान हरिभक्त थे। एकनाथ के प्रपितामाह का नाम भानुदास, पितामह का नाम चक्रपाणि तथा पिता का नाम सूर्यनारायण था। सूर्यनारायण की साध्वी पत्नी रुक्मिणी के गर्भ से एकनाथ का जन्म हुआ। उनके पितामह चक्रपाणि ने उनका पालन पोषण बड़े स्नेह और प्यार से किया। वे इस कुल के एकमात्र कुलदीपक थे इसलिए उन्होंने उनका नाम "एकनाथ" रखा। 6 वर्ष की अवस्था में उनका यज्ञोपवीत संस्कार किया गया और उन्हें संस्कृत का अध्ययन कराया गया। अल्पकाल में ही उन्होंने प्रवीणता प्राप्त कर ली और ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए वे जनार्दन स्वामी के पास दौलताबाद गए। जनार्दन स्वामी के चरणों में बैठकर उन्होंने अध्यात्म का ज्ञान प्राप्त किया। उन्हें संसार से विरक्ति सी हो गई पर दादा और दादी के आग्रह तथा अपने गुरू जनार्दन स्वामी के आदेश से उन्होंने विवाह की स्वीकृति दी। गिरिजाबाई नामक सुकन्या से उनका विवाह हुआ और हरि पंडित, गोदाबाई, गोदावरीबाई उनके तीन संतानें हुईं। एकनाथ ने घर में ही रहकर तपस्या की, गृहस्थाश्रम और परमार्थ मार्ग अपनाया। उन्होंने भोग और भक्ति, ज्ञान और सेवा का अपने जीवन में अदभुत समन्वय किया। गृहस्थ होकर भी वे विरक्त थे, तुलसी दास जी ने गृहस्थ जीवन प्रारंभ किया पर अंत में उससे विरक्त होकर संन्यास ले लिया।

महापुरुषों एवं संतों के साथ कई किंवदंतियां जुड़ जाती हैं। उसी प्रकार इन संत कवियों के साथ भी कई किंवदंतियां जुड़ी हुई हैं। जिस प्रकार से शिव-पार्वती ने तुलसी दास जी को रामायण लिखने का आदेश दिया, उसी प्रकार श्री रामचद्रजी ने एकनाथ को प्राकृत भाषा [मराठी] में रामायण लिखने का आदेश दिया। वे रामायण की राचना करते समय इतने तल्लीन हो जाते थे कि उन्हें अपने शरीर का भी भान नहीं रहता था। वे कण-कण में भगवान के दर्शन करते थे, उन्होंने लिखा है :

"मन राम रंगी रंगला
मार्गी श्रीराम रामायण
स्वयें संपूर्ण प्रकाशी।
करु जाता भोजन
ग्रासोग्रासी स्मरे रघुनंदन
रामायण लिहावया साठी, श्री राम पुर विली पाठी।
रामयणीचे निज सार, वरी कोंदले अक्षर।
माझे जे वदते वदन, स्वयें झाला रघुनंदन।
श्री राम कथेचा गुहशार्थ, यथार्थ वदवी रघुनाथा।
माझे हाती लेखणी दौत, कथा लिहवीत श्री राम"

अर्थात् मेरा मन राम के रंग में रम गया है, मार्ग में श्री राम का ही प्रकाश है, भोजन करते समय हर ग्रास के साथ मैं रघुनंदन के नाम का स्मरण करता हूं। मेरे हाथ में कलम और दवात है पर वास्तव में श्री राम ही यह कथा लिख रहे हैं।

कहा जाता है कि तुलसी दास जी की रामायण अत्यंत लोकप्रिय हो गई थी, अत: कुछ पंडितों को बड़ी ईर्ष्या हुई। अत: उन्होंने रामायण को नष्ट करने का उपाय सोचा। उस पुस्तक को चुराने के लिए उन्होंने चोर भेजे। चोरों ने वहां जाकर देखा कि तुलसीदास की कुटिया में दो गौर और श्याम वर्ण के युवक पहरा दे रहे हैं। उनको देखकर चोरों की बुद्धि शुद्ध हो गई और उन्होंने तुलसीदास जी से क्षमा मांगी। जब तुलसी दास जी को यह मालूम हुआ तो उन्होंने अपनी रामायण को अपने एक मित्र टोडरमल के यहां रख दिया। एकनाथ जी के संबंध में भी इसी प्रकार की कथा मिलती है कि भगवान उनके घर में पानी भरने का काम करते थे। कहते हैं कि द्वारिकापुरी का एक

ब्राह्मण भगवान का परमभक्त था। भगवान के दर्शन की उसकी बहुत इच्छा थी। एक दिन स्वप्न में रुक्मिणी जी ने उसे बताया कि इस समय भगवान द्वारिका में नहीं हैं, वे गोदावरी नदी के किनारे पैठण में श्री खंडे नाम से एकनाथ जी की सेवा कर रहे हैं। तुम वहीं जाकर भगवान के दर्शन करो। जब वह ब्राह्मण वहां पहुंचा तो उस समय भगवान गोदावरी से पानी की कावड़ ला रहे थे। उसने भगवान के चरण पकड़ लिए। एकनाथ के देवघर में भगवान अंतर्धान हो गए। एकनाथ जी अपनी भूल पर बहुत पछताए।

भावार्थ रामायण और रामचरित मानस लोक भाषा में लिखी गई हैं। दोनों रामायणों का आधार बाल्मीकि रामायण है। तुलसी दास जी ने अपनी रामायण को लोकप्रिय बनाने के लिए अनेक ग्रंथों का निचोड़ रामायण में प्रस्तुत किया है। उन्होंने लिखा है—

"नाना पुराण निगमागम सम्मंत यद
रामायणे निगदितं कूचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा
भाषा निबंध मति मंजुल मातनोति।"

एकनाथ की भावार्थ रामायण में भी बाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, अद्‌भुत रामायण, आनंद रामायण, शिव रामायण, सेतुबंध रामायण, भागवत पुराण, परन पुराण, स्कंद पुराण, अग्नि पुराण, भारत पुराण, योगवासिष्ठ तथा गीता के विचारों का समावेश किया गया है तथा रामायण को सुलभ तथा रोचक बनाने का प्रयास किया गया है। तुलसी दास की रामायण चौपाइयों, दोहों, सोरठों में लिखी गई है। रामचरित मानस में 7 कांड हैं। भावार्थ रामायण ओवी छंद में लिखी गई है। इसमें ओवियों की संख्या 40,000 है। भावार्थ रामायण में भी 7 कांड है और इन कांडों को 297 अध्यायों में विभाजित किया गया है। यह एकनाथजी की अंतिम रचना है। इससे उनकी कवित्व शक्ति तथा विद्वता का स्पष्ट प्रभाव झलकता है। भावार्थ रामायण अध्यात्म और दर्शन की नींव पर निर्मित की गई है। उनके पात्र ऐतिहासिक कम, मनोवैज्ञानिक अधिक हैं। वे हमारी मनोवृत्तियों के प्रतीक हैं। उन्होंने पात्रों के नामाभिधान के माध्यम से दार्शनिक अर्थ का बोध कराया है। उन्होंने लिखा है—

"आत्म प्रबोध ते लक्ष्मण। भावार्थ तो भरत जांण।
निजनिर्धारीती शत्रुघन। आनंद विग्रही पूर्ण श्री राम
अहमात्या तोचि दशरथ। उत्पती सी मुख्य हेत।
आतां विवेक आणि
आतां विवेक आणि निज विचार।
तैसे वसिष्ठ विश्वामित्र गुरु।
कौसल्या ते सुविधा। सुमित्रा ते शुद्ध मेधा।
कैकेयी ते अति अविधा। मंथरा कुविधा तीपासी।
कुविधा क्षोभवेनि अविधेसी। श्री राम केला वनवासी।
तव सीता अनन्य भावें सी। श्री रामासरसी निघाली।"

अर्थात् दशरथ दस इंद्रियों के प्रतीक, लक्ष्मण आत्मबोध, भरत भावना, शतुध्न निर्णय, राम परमात्मा [परामानंद], वसिष्ठ विवेक, विश्वामित्र विचार, कौसल्या सुविधा, सुमित्रा शुद्धिमेधा [बुद्धि], कैकेयी अविद्या, मंथरा कुविद्या की प्रतीक हैं।

राम-रावण के युद्ध को भी उन्होंने रूपक द्वारा व्यक्त किया है। उन्होंने लिखा है।

"आत्मा राम अहं रावण। दोघाचे युद्ध अति दारूण।
अंतर क्रियेचे विद्वान। सावधान परिसावे।
महामायाचे करोनि लाघव। बंदी चालते इंद्रादिदेव।
सेवा घेतले अपूर्व। नित्य विषय भरडणे।"

अर्थात् आत्मा राम है, अहं रावण है और उनका भयानक युद्ध चल रहा है, आत्मज्ञानी सावधान होकर इस युद्ध की विभीषिका को सुने। रावण ने इंद्रियों को कारावास में डाल दिया है, उनसे सेवाएं ले रहा है और विषय में डूबा है। वास्तव में राम-रावण युद्ध शाश्वत है। हमारे हृदय में इनका द्वंद्व अहर्निश चल रहा है। दशरथ कुविद्या रूपी नारी के रूप-पाश में फंसा हुआ है। वह किस प्रकार मुक्ति पा सकता है। स्त्रियों का क्षणिक सहवास भी माया में फांस लेता है। एकनाथ जी ने कहा है,—

"क्षणार्थ स्त्रियांची संगती। वनवासी होय वशवर्ती।
जे नित्य स्त्रियांचे सेविती। त्याची निगति कैसेन होय।"

तुलसीदास जी ने नारी शरीर को दीपशिखा और पुरुष मन को पतंगा कहा है।

"दीपशिखा सम जुवति तन मन जसि होत पतंग।
भजहु राम तजि काम मद करहु सदा सत्संग।"

दोनों कवियों ने गुरु को ईश्वर का रूप माना है और बिना गुरु कृपा कोई वस्तु सुलभ नहीं है। एकनाथ जी ने लिखा है :

"गुरु म्हणो पित्या समान, तवतो एक जनमीचा जाण।
हा मा बाप सनातन, जनक पूर्ण जगाचा।"

तुलसीदास जी ने लिखा है—

"बंदहुं गुरुपद कंज कृपासिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रवि कर निकर।"

एकनाथ जी ने अपनी अयोग्यता का विस्तृत वर्णन किया है, उनके अनुसार मैं मूर्ख रामकथा वर्णन करने की कहां बुद्धि रखता हूं। यह तो श्री राम की प्रेरणा से ही मैं रामायण लिख रहा हूं।

"तू कैसा झाला सो वक्ता। पुसाल माझी योग्यता।
ते ही भी संगिन तत्वता। सावध श्रोता परिसावी।
मी नेणें मुळीच्या संस्कृतासी। मूर्खपणा माझा मिरासी।
त्या मूर्खाच्या मुखासी। श्रीराम ऐसी कथा वदती।
माझे अंगी मूर्खपणा। माझे भी जाणे संपूर्ण।
न करी म्हणतां रामायण। श्री राम आपण कथा प्रेरी॥"

तुलसी दास जी ने भी "कवि न होऊ नहिं वचन प्रवीन। सकल कला सब विधाहीनू॥" कहकर अपनी विनम्रता प्रकट की है। दोनों संत कवियों ने कलियुग के बहाने अपने युग के मदांध शासकों का वर्णन किया है—

भुजबल बिस्व बश्यकरि राखेसि कोउ न सुतंत्र
मंडलिक मनि रावन राज करइ निज मंत्र।
बाड़े बल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा।
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा।
बरनि न जाई अनीति निशाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन्हके पापहिं कवन मिति।"

एकनाथ जी ने भी अपने समय की भ्रष्ट सामाजिक स्थिति का वर्णन किया है—

"कलिमाजी नोहे अनुष्ठान। कले वाढला से अधम।
ब्राह्मण सांडिसी आपले कर्म।"

अर्थात कलिकाल में न कोई धर्माचरण है न अनुष्ठान। इस कलिकाल में अधर्म बढ़ गया है। ब्राह्मणों ने अपने कर्म का त्याग कर दिया है।

भावार्थ रामायण की कथा रामचरित मानस के समान है, कुछ प्रसंग रामचरित मानस से भिन्न है, जैसे भावार्थ रामायण के अनुसार परशुराम का आगमन जनकपुर में दशरथजी के आने के बाद होता है, वहां राम और परशुराम का युद्ध होता है। वे राम से हार जाते है और उन्हें यह बोध होता है कि राम पूर्ण बह्म हैं—

"नभ व्यापिलें धुली। संज्ञा मोडली सैन्याची।
लागतां त्या वायुची झडप। सप्त सागर सप्तद्वीपों।
तेणेंसी पृथ्वीस कंप। सुटे चलकांप मेरूसी।
त्यामाजी उठली विकट हाक। सैन्य मुच्छित पडे निःशेष।
विधुप्राय जटाशिसी। सतेज परशु खांद्यावरी।
धनुष्यवाण घेवोनि करी। श्री रामावरी चालिला।"

अर्थात् उनके आगमन से चारों ओर भय का वातावरण भर जाता है, आकाश में काल के बादल मंडरा रहे हैं। परशुरामजी का मुखमंडल बिजली के समान प्रकाशमय है, उनके सिर में जटाजूट है, कंधे में परशु है तथा हाथ में धनुष-बाण है। मानस में भी परशुराम के रूप का वर्णन तुलसीदास जी ने इस प्रकार किया है—

"गौर सरीर भूति भल भ्राजा।
भाल विशाल त्रिखंड विराजा।
सीस जटा ससि बदनु सुहावा।
रिस बस कछुक अरूण होई आवा।
कटि मुनि बसन तून दुइ बांधे।
धनु सर कर कुठारु बल कांधे।"

दोनों कवियों ने भक्तिनिरूपण, रामनाम महिमा, ज्ञान, माया, मोह, आदि का निरूपण किया है। दोनों अद्वैतवादी थे जीव और ब्रह्म की अभिन्नता का प्रतिपादन किया है। माया एक भ्रम है, वासना मनुष्य के लिए विष है। इसलिए भगवान के चरणों में संपूर्ण समर्पण करने से मुक्ति मिल सकती है। भगवान के निर्गुण और सगुण रूप का निरूपण कर यह बताया है कि भक्त के लिए निर्गुण ब्रह्म सगुण बनकर आता है। इन संत कवियों ने छूत व अछूत का भाव नष्ट किया। सबको एक ही ईश्वर की संतान कहा। ब्राह्मण व श्वपच को एक पंक्ति में ही बिठाया। शबरी, निषाद, जटायु, भालु, वानर इसी समन्वयवादी दृटिकोण का प्रतिपादन करते है। एकनाथजी ने अछूत के घर में जाकर भोजन किया। एक यवन ने उन पर 24 बार थूका, उन्होने बिना प्रतिरोध किए 24 बार गोदावरी में जाकर स्नान किया। उनकी रामायण में ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, कवित्व, अध्यात्म, विनोद का अद्‌भुत संमिश्रण हुआ है,। एक प्रसिद्ध मराठी समीक्षक ने एकनाथ की काव्य प्रतिभा पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, "भागवतापेक्षा भावार्थ रामायणात नाथांचें कवित्व प्रज्वलतेने चमकताना आढ़लते, एखाद्या प्रचंड नदीच्या जलोषाप्रमाणे या ग्रंथातील कथानकाचा ओघ संथ व गंभीर दिसतो, अर्थात भागवत् की अपेक्षा भावार्थ रामायण में नाथ की कवित्व शक्ति अधिक प्रस्फुटित हुई है। किसी गहरी नदी के जलप्रवाह के समान इस ग्रंथ के कथानक का प्रवाह गंभीर व शांत है।" भारतीय संस्कृति कोशकार ने उनके साहित्य पर प्रकाश डालते हुए कहा है, "एकनाथांच्या सर्व ग्रंथात रामायण हा अखेरचा ग्रंथ असून त्यात नाथांच्या विच्छतेचे, कवित्वाचे आणि आत्मानुनवाचे सार सर्वस्व ओतलेले आहे, या ग्रंथांने मराठी भाषेला वैभव संपन्न केले आणि तिचे स्वरूपही सुस्थिर केले, भावार्थ रामायण नंतर मराठी भाषा ही

सर्व सामान्य व व्यवहार सुलभ झाली, यात भक्तिरसाचे प्राचुर्य असले तरी बीर आणि करूण हे रसही योग्य स्थली आविर्भूत झाले आहेत, भक्तिपर काव्यात शृंगाराचे स्थान गौण असते, नाथांनी तितक्या मर्यादेतच त्या रसाची संभावना केली आहे", अर्थात् एकनाथ के संपूर्ण ग्रंथों में रामायण अंतिम रचना है, इस ग्रंथ में विव्दता, कवित्व और आत्मानुभव का सार ओतप्रोत है, । इस ग्रंथने मराठी भाषा को समृद्ध बनाया तथा उसका रूप स्थिरविधा। भावार्थ रामायण की रचना के बाद मराठी भाषा सामान्य, सर्वसुलभ व व्यवहार की भाषा हो गई, । इसमें भक्तिरस का प्राधान्य है परंतु प्रसंगानुसार वीर, करूण और श्रृंगार रस का प्रयोग किया गया है।

भारत के प्रसिद्ध क्रांतिकारी तथा स्वप्नदर्शी समाजवादी चिंतक स्वर्गीय डां. राममनोहर लोहिया ने रामायण को भारत की एकता का सेतु कहा है। उन्होंने लिखा है, "मुझे तो बराबर लगता है कि रामायण उत्तर और दक्षिण की एकता का ग्रंथ है, अफसोस है कि आज वही ग्रंथ उत्तर और दक्षिण दोनों की ना समझी के कारण कुछ तबकों के मनको मलीन बनाता है। राम तो हिंदुस्तान के उत्तर-दक्षिण की एकता के देवता थे।" इस प्रकार हम देखते हैं कि इन दो संत कवियों ने देश की एकता को मजबूत बनाया। दोनों की भावभूमि एक थी सिर्फ स्थान का अंतर था। काव्य मनुष्य को पास-पास लाने, उसके हृदय को जोड़ने का माध्यम होता है। स्वार्थों की परिस्थितियां उसके प्रदेश को सांस्कृतिक क्षेत्र में नहीं वरन् राजनैतिक क्षेत्र में कलंकित किया करती हैं। मराठी के कवि श्री एकनाथ ने राम की उद्भावना में उसी स्वर को साधा है जो तुलसीदास जी ने साधा था। राम की प्रीति हर सुरक्षा से मुक्ति थी। जीवन दायक थी, एकनाथ ने भी अपनी समकालीन स्थितियों में विपन्न होती हुई मनुष्यता के संत्रस्त क्षणों को देखा और पाया था। जन-जीवन को नई चेतना और विश्वास देने का महत्कार्य उनकी काव्य वाणी का मूल था। इन दोनों ग्रंथों ने संसार की पीड़ित आत्मा पर शांति और भक्ति का ऐसा शीतल लेप लगाया है जो संसार को नई शांति और सुख देता है, । ये दोनों ग्रंथ हमारी वैचारिक संपत्ति हैं। जिससे संपूर्ण मानव जाति को हम शांति और सुख का मार्ग दिखा सकते हैं। रामायण मनुष्य के अंदर बैठे राम और रावण के शाश्वत संघर्ष की कहानी है। रावण पर राम की विजय मानव के उच्च मूल्यों के विजय की गाथा है। रामायण भारतीय जनता की अमूल्य निधि ही नहीं बल्कि जीवन के मार्ग में बढ़ने का सम्बल भी है।

□□

"राष्ट्रभाषा की उपेक्षा से
देश का भविष्य
अन्धकारमय हो जायेगा।"

\- महादेवी

निराला के काव्य में दर्शन

□ डॉ. षण्मुखन

हालांकि काव्य और दर्शन, शब्द और अर्थ की दृष्टि से अलग-अलग हैं फिर भी दोनों का गहरा ताल्लुक भी रहा है। काव्य में दार्शनिक विचारों को पिरोने का प्रयास होता आया है। दर्शन के साथ काव्यत्व को जोड़ने का जद्दोजहद श्रम भी हुआ है। यह सही है कि अमुक कवि में दार्शनिक चिंतन की भरमार रही है और किसी में अपेक्षाकृत कम। कोई कवि किसी विशेष दर्शन का पिछलगू भी होता है। लेकिन इन सबके काव्य में दर्शन कोई स्वतंत्र वस्तु बनकर नहीं आता है बल्कि अन्तर्वस्तु के रूप में काव्य में निहित ही रहता है।

इस संदर्भ में यह भी उल्लेख करना वाजिब है कि कतिपय कवि ऐसे भी हैं जो अपने जीवनदर्शन को यानी जीव-जगत् संबन्धी अपनी संकल्पनाओं को अपने काव्य से अलग ही रखते हैं। इसका यह मतलब नहीं कि काव्य में उनका आभास बिलकुल होता नहीं। महान् कवि कालिदास ऐसे ही कवि रहे थे। यद्यपि जीवन को परखने की उनकी समग्र दृष्टि रही है, लेकिन कविता में दर्शन को मिलाने के पक्ष में नहीं थे। इसलिए कालिदास का दार्शनिक कवि की हैसियत से गंभीर मूल्यांकन नहीं हुआ है। लेकिन कबीर, तुलसी, सूर, जायसी जैसे महान् कवियों ने अपने काव्य में दर्शन को सम्मिलित कराने का एक हद तक जबरदस्त प्रयास किया जिसकी वजह से वे सगुण, निर्गुण के खेमों में बँटे हुए हैं। छायावादी युग के कवियों में कामायनी की वजह से प्रसाद अवश्य दार्शनिक कवि की हैसियत पा लेते हैं, परंतु उन्होंने भी काव्यत्व का उल्लंघन करते हुए पूर्णतः दर्शन का विवेचन नहीं किया है। महादेवी ने भी ऐसी हरकत नहीं की। निराला की तरफ़ से तो कदापि यह गलती नहीं हुई है; उनकी कविता में 'काव्यत्व' ही प्रबल रहा है।

निराला के काव्य में दर्शन के विभिन्न आयाम उपलब्ध हैं। अध्यात्मवादी दर्शन की अभिव्यक्ति उनकी कविता में ज़रूर है। मसलन उनकी मशहूर कविता 'तुम और मैं' में उन्होंने आत्म-तत्व और परमात्म-तत्व के अभिन्न संबन्ध की युगानुकूल झांकी प्रस्तुत की है—"तुम शिव हो, मैं हूं शक्ति/तुम रघुकुल गौरव रामचन्द्र/ मैं सीता अचला भक्ति/तुम आशा के मधुमास/ और मैं पिक-कुल-कूजन तान"। निराला पर विवेकानन्द के नवीन वेदान्त का प्रभाव भी पड़ा है। उन्होंने लिखा है कि मैंने विवेकानन्द का कंप्लीट वर्क्स हज़म किया है। उनके इस कथन में पूरी सच्चाई है और "राम की शक्ति पूजा" में उन्होंने विवेकानन्द के दर्शन का चरम निदर्शन प्रस्तुत भी किया है। लेकिन निराला का विराट व्यक्तित्व संन्यासियों के लिए निर्धारित लोकसेवा संबन्धी सीमित दायरे में सिमटा हुआ नहीं था। इसलिए ही उनकी चेतना ने आध्यात्मिक धरातल से उठकर मानववादी उदात्तता हासिल की थी। आध्यात्मिक दार्शनिकता और मानववादी दृष्टि में अंतर यह है कि आध्यात्मिकता मानव की भौतिक ज़िंदगी पर उतनी रुचि नहीं रखती जबकि मानववादी दृष्टि पूर्णतः जीवन सापेक्ष रहती है। यानी वह मनुष्य के लौकिक जीवन से पूर्णतः सरोकार रखती है। इस मानववादी जीवन दृष्टि से लैस होने के कारण ही उनकी सर्जनात्मकता विद्रोही पक्ष प्रबल बनी है और उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से एक व्यापक एवं सर्वांगीण सामाजिक क्रांति का आह्वान भी किया है। इन सभी बातों पर आलोचकों ने बहुत कुछ लिखा है, इनका आवर्तन स्पृहणीय नहीं होगा। इसलिए मैं इस आलेख में निराला की जीवन दृष्टि के उस आयाम पर बहस करना चाहता हूँ जिसपर ज्यादा माथापच्ची नहीं हुई है।

स्त्री-पुरुष संबन्धों की जटिलताओं के उन्मीलन के संदर्भ में कार्ल मार्क्स ने एक अहं बात की थी कि इस तमाम प्रपंच की जिन्दगी में मौजूद अनिवार्य एवं सहज संबन्ध, स्त्री-पुरुष संबंध है। ताज्जुब की बात है कि उन्होंने मानव की मानवीयता के नींवाधार संघटक के रूप में इस संबन्ध को मान्यता दी है। उनका दावा है कि जब तक यह संबन्ध लोकतांत्रिक नहीं बनता तब तक यह नहीं कह सकते कि मानव सचमुच मानव बन गया है। एंगेल्स ने भी पुरुष-नारी सबंन्ध को, समाज दर्शन की कसौटी माना है। यानी दोनों दार्शनिक स्त्री-पुरुष समता के अवांगार्द (Avant-garde) रहे थे। दोनों का यही विचार था कि स्त्री

कोच्चिन विश्वविद्यालय (पोस्ट) कोच्चिन-682022

के अस्तित्व को पुरुष से जुड़े संबंधों तक सीमित न करें बल्कि पुरुष की तरह उसे भी मानवता का एक भिन्न, अनिवार्य और पूरक तत्व माना जाए और वैसी ही हैसियत भी दें। यह निस्सन्देह बात है कि निराला ने इस अंह बात को गहराई से आत्मसात किया था जिसकी ज्वलंत मिसाल है, उनकी दो महान् कविताएं, ''सरोज स्मृति'' और 'राम की शक्ति पूजा'। इनमें से पहली कविता पुत्री-प्रेम की है और दूसरी पत्नी-प्रेम की। दरअसल ये कविताएं गहन मानव प्रेम की कविताएं ही हैं।

'सरोज समृति' का हिन्दी के शोकगीतों के संदर्भ में अनिवार्य महत्व है। इस दृष्टि से इसकी ज्यादातर महनीयता है कि निराला ने यह कविता अपनी पुत्री की मृत्यु पर लिखी है। इसमें निराला ने अपनी पुत्री को ऐसा महत्व दिया है जो अतुल्य है। यानी उनसे पहले और किसी कवि ने ऐसा महत्व नहीं दिया था। अत: स्पष्ट है, सरोज-स्मृति निराला की आत्मकथात्मक कविता है। इस कविता की अन्तर्वस्तु उनके निजी जीवन से जुड़ी हुई है। लेकिन इस कविता में उन्होंने अपने जीवन की घटनाओं की इस तरह पुनर्रचना की है कि कविता आत्मनिष्ठा के धरातल से उठकर वस्तुनिष्ठ हो गई है। यानी नितांत वैयक्तिक सीमा का अतिक्रमण करती हुई सार्वजनीय और सार्वभौम बन गई है। और स्पष्ट करें तो, सरोज केवल उनकी पुत्री न रहकर, सिर्फ पुत्री हो गई है। निराला भी केवल निराला न रहकर सामान्य किसान का प्रतीक बन गया है। उनका शोक भी पुत्री की मृत्यु पर शोक प्रकट करता किसी मामूली बाप का शोक बन गया है। महान कविता के मूल्यांकन के संदर्भ में टी. एस. एलियट ने लिखा था कि भोक्ता और सर्जक के बीच का अंतर जितना सपाट होगा, दोनों के बीच की दूरी जितनी बृहत्तर होगी उतनी कविता भी महान् बनती जाएगी। इस दृष्टि से भी सरोज स्मृति की महत्ता अक्षुण्ण है। 'सरोज स्मृति' की रचना ऐसे सामाजिक माहौल में हुई, जहां नारी के रूप में जन्म लेना ही पाप समझा जाता था। जहां नारी को कोई सामाजिक और राजनैतिक हक प्राप्त नहीं है, पति की मृत्यु के बाद पत्नी को जिंदा जला देने का प्रावधान बरकरार है, ऐसे माहौल में पुत्री प्रेम पर कविता लिखना, उनकी मृत्यु पर विलाप करना और अपने पितृत्व की निरर्थकता का एहसास करना अवश्य क्रांतिकारी आचरण है। आज भी यह कविता उपादेय है, क्योंकि अब भी स्त्री पराधीन है, उसे पुरुष के बराबर दर्जा प्राप्त नहीं है, आज भी वह उसकी निजी संपत्ति बनी हुई है। यद्यपि वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था में चौ-तरफा शोषण चल रहा है, लेकिन स्त्री दोहरे शोषण का शिकार है, जैसे कवि रघुवीर सहाय ने सूचित किया है कि वह दरअसल शोषण का प्रतीक या मूर्त रूप बन गया है।

जैसे उपर्युक्त सूचित किया गया, 'राम की शक्तिपूजा' पत्नी प्रेम की कविता है । यह शक्ति की उपासना की कविता न होकर पत्नी की मुक्ति की कविता है। इसमें शक्ति की उपासना पत्नी की मुक्ति के लिए की गयी है। कविता की संरचना से यह बात स्पष्ट है कि कविता के केन्द्र में सीता है। राम का अपनी पत्नी के प्रति प्रेम और उसकी मुक्ति का प्रयास ही कविता के नींवाधार हैं। दरअसल शक्तिपूजा में सीता के प्रति राम का एकनिष्ठ प्रेम ही उजागरित है जिसकी मिसाल अन्यत्र कहीं भी नहीं है। राम पत्नी की मुक्ति के लिए अपनी आँख तक निकालकर देवी को अर्पित करने के लिए तैयार हो जाते हैं। ऐसा ज्वलंत व्यक्तित्व पुराण-इतिहास में मयस्सर नहीं है। यह सर्वविदित बात है कि जिस हिन्दू संस्कृति की दाद दी जाती है उसमें पत्नी को कम महत्व व स्थान दिए गए हैं। साफ शब्दों में कहा गया है कि 'नारी हानी विशेष छति नाही'। यह बात तुलसी के राम ने लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर कही थी। तुलसी के राम और निराला के राम में युगांतरकारी फरक है, वाल्मीकि रामायण के राम ही यही कहते हैं कि मुझे ढूँढने पर सीता जैसी दूसरी नारी मिल सकती है, लेकिन लक्ष्मण के समान मददगार और युद्धकुशल भाई मिलना वाकई असंभव है। इतना ही नहीं युद्ध जीतने के बाद राम सीता से यहां तक कहते हैं कि जो विजय पाई है, वह सीता को पाने के लिए नहीं बल्कि सदाचार की रक्षा, अपवाद का निवारण तथा कुल पर कलंक के परिमार्जन के लिए है। राम के सामने सीता इस तरह खड़ी है जैसे आँख के रोगी के सामने दीपक की ज्योति । राम के लिए सीता अत्यन्त अप्रिय और हानिकारक जान पड़ती है, इसलिए अपनी इच्छा के मुताबिक कहीं भी जाने की इजाजत देते हैं। दसों दिशाएं सीता के लिए खुली हैं। वह कहीं भी जा सकती है। बताने की जरूरत नहीं कि वाल्मीकि के राम से निराला के राम किस हद तक भिन्न एवं उदात्त हैं। निराला के राम की आँखें शक्ति पूजा में बाधा उपस्थित होने पर भर आती हैं। राम आत्मभर्त्सना करते हैं। उन्हें यही चिंता सताती है कि अब उनकी प्रिया जानकी की मुक्ति संभव नहीं होगी। उन्हें इसका ख्याल नहीं है कि पूजा अपूर्ण होने से उसकी महिमा घटती जाएगी, रावण की हत्या संभव नहीं होगी। उनमें सीता का विचार सवार है क्योंकि सीता की मुक्ति ही प्रमुख है, युद्ध और शक्ति पूजा का आयोजन तक सीता सापेक्ष किया गया है, वही साध्य है, बाकी सब साधन।

निराला के राम गहन आत्मसंघर्षों से गुज़रते हैं; अपनी पत्नी की मुक्ति के लिए, जिसकी उस ज़माने में राजा महाराजाओं को कोई कमी नहीं थी। उसी के लिए राम अपने को ज़ख्मी बनाते हैं, उसी के लिए अपने शरीर से पसीने ही नहीं, खून भी बहाते हैं। अंत में अपनी आँख तक निकालकर देने को उद्यत हो जाते हैं।

स्त्री के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति के संदर्भ में निराला की दृष्टि कितनी स्वच्छ एवं नैतिक रही है कि उन्होंने एकनिष्ठ दांपत्य प्रेम को ही उदात्त माना है। 'पंचवटी' प्रसंग में शूर्पणखा जैसे राक्षस-सुन्दरी के प्रणाम को राम और लक्ष्मण दोनों ठुकरा देते हैं। 'तुलसीदास' कविता में तुलसी अपनी पत्नी रत्नावली पर ही अनुरक्त है, किसी अन्य स्त्री से उन्हें बिल्कुल लगन नहीं है। यद्यपि सुकुमार तुलसी को बहकाने की कोशिश होती है, लेकिन तुलसी अविचलित रहते हैं। 'प्रेयसी' शीर्षक कविता के युवक-युवती का स्वच्छन्द प्रेम दांपत्य प्रेम में तबदील हो जाता है। 'सम्राट हू-ब-हू तारीफ़ के प्रति' नामक कविता में निराला ने सम्राट की हू-ब-हू तारिफ की है, इसलिए कि उन्होंने एक मामूली घराने की तलाकशुदा नारी को पत्नी बनाने के लिए ब्रिटिश साम्राज्य के राजसिंहासन को लात मार दी थी। अपनी पत्नी मनोहरा देवी के प्रति निराला के मन में असाधारण प्रेम और ममता थी। पत्नी की मृत्यु के बाद भी इसमें कोई बदलाव नहीं आया यद्यपि अलौकिक श्रृंगार के आलंबन के रूप में वह परिणत हो गई थी।

यों निराला की नारी के प्रति दृष्टिकोण हमेशा उदात्त एवं करूणासिक्त रही है। यही उदात भावना—"राम की शक्ति पूजा" को उदात्त कविता की हैसियत भी देती है। उदात्त तत्व का निरूपण करते हुए लाँगिनुस ने कहा था कि उदात्तता का पहला स्रोत महान धारणाओं की क्षमता है। यद्यपि "राम की शक्ति पूजा" पत्नी-प्रेम की कविता है, लेकिन आधुनिक संदर्भ में भी विशेष महत्व रखती है क्योंकि आज भी नारी की पुरुष के बराबर हैसियत की मांग जोरों पर है जो वाकई एक महान् अवधारणा है।

निष्कर्षत: 'सरोज स्मृति' और 'राम की शक्ति पूजा' महान अवधारणाओं की अभिव्यक्ति की वजह उदात्त कविताएं बन गई हैं, साथ ही ये निराला के मानवतावादी दर्शन के सबूत की हैसियत भी पा लेती है; अस्तु। □□

(दक्षिण भारत जनवरी-मार्च, 1999 से साभार)

"चूंकि भारतीय एक होकर एक समन्वित संस्कृति का विकास करना चाहते हैं, इसलिए सभी भारतीयों का यह परम कर्त्तव्य हो जाता है कि वे हिन्दी को अपनी भाषा समझकर अपनाएँ"

–डा0 बाबासाहब अम्बेदकर

पुल

□ सतीश कुमार गुप्ता

जब से सुनील की चिट्ठी आई थी, सत्या उलझन में थी कि अनिल को कैसे बताए। जब कभी भी वह अकेले बैठ कर सोचती है, उसे कभी अपने पर गुस्सा आता है और कभी बच्चों पर। वह सोचने लगी—कैसा जमाना आ गया है, अपने बच्चों के साथ भी कोई बात करनी हो तो उनका मूड देखते रहो। आखिर मैं इनकी माँ हूं, कोई नौकरानी तो नहीं। भाई-भाई की शक्ल देखने को राजी नहीं। यह तो तब है, जब मैं अभी जिंदा बैठी हूं। मेरे बाद तो जाने क्या करेंगे ! एक को मनाओ तो दूसरा नाराज हो जाता है। आज अगर इनके पापा जिंदा होते तो मुझे इन बच्चों की इतनी जी-हुजूरी की क्या जरूरत थी; जैसे चाहते वैसे करते। खुद तो भरी जवानी में चले गए और मुझे छोड़ गए इन बच्चों की बातें सुनने के लिए । फिर दूसरे ही क्षण सोचने लगी उनका भी क्या कसूर! मौत पर भी किसी का वश चला है। अपने जिंदा जी तो उन्होंने हमारे को कभी गर्म हवा नहीं लगने दी। एक बार दीदी ने जब कहा था "जीज़ा जी, अनिल हमें दे दो" तो कैसे मायूस होकर बोले थे—"दीदी, हौसला नहीं पड़ता।" और कैसे अनिल को सीने से चिपका लिया था। बच्चों को भी मेरी कहां परवाह थी। पापा के साथ ही खाना, पापा के साथ ही सोना। अब तो इतने साल गुजर गए हैं, आँखें बंद करने पर भी ठीक-ठीक उनका चेहरा सामने नहीं आता। चलो एक तरह से तो ठीक ही हुआ जो जल्दी चले गए वरना इन भाइयों की तनातनी देखकर कितना दुखी होते। आज समाज में उनके परिवार की इज्जत है। पैसे की भी कमी नहीं। बच्चे अच्छा खाते कमाते हैं, दोनों अफसर हैं। उनकी आत्मा भी यह सब देखकर शांत होगी। मेरा क्या ! और फिर अब दो-चार साल की बात है, जी लूंगी किसी तरह।

०

पिछले बीस सालों में सत्या को जो संघर्ष, तनाव और उपेक्षा सहनी पड़ी थी, उसने अपने निशान सत्या के दिल और दिमाग के साथ-साथ उसके चेहरे पर भी छोड़े थे और यही कारण था कि साठ साल की होने पर वह अस्सी साल की बुढ़िया नजर आती है। उसकी ही उम्र की औरतें जब उसे माताजी कहतीं तो उसे बुरा तो अवश्य लगता मगर आइने में अपने झुर्रीदार चेहरे और श्वेत धवल केशों को देखकर चुप लगा जाती फिर यह सोचकर दिल को तसल्ली देती कि चलो "माताजी ही तो कहती हैं, कोई गाली तो नहीं देतीं"।

०

वह फिर सोचने लगी। यह सुनील जिसने गृह प्रवेश पर बुलाया है जब इसके पिता का स्वर्गवास हुआ सिर्फ आठ साल का था। समझ ही कितनी होती है आठ साल के बच्चे को। पापा की लाश पड़ी थी। घर भर में कुहराम मचा हुआ था। सत्या रो-रोकर बेहाल हुई जाती थी और यह रट लगाये था "मुझे भूख लगी है।" और अनिल! बाप रे! कितनी मुश्किल से संभाला था इसको! जब इसके पापा को ले जाने लगे थे तो "मेरे पापा को कहां ले जा रहे हो, छोड़ दो इन्हें।" कितने दिन तक गुमसुम बना रहा था। पापा का दुलारा बेटा जो था।

इनके जाने के बाद तो रिश्तेदारों की जैसे नजरें ही बदल गईं। देवर, जेठ, तो दूर रहते थे और वैसे भी पूरे-सूरे थे इसलिए उनसे तो उम्मीद वैसे भी कम थी हाँ जो पहले कभी कभार चिट्ठी आ जाती थी, भाई के जाने के बाद उन्होंने वह सिलसिला भी तोड़ दिया। कभी भूल से भी यह जानने की कोशिश नहीं की कि उनके भतीजे कैसे रह रहे होंगे। सत्या का मायका उसी शहर में था और वैसे भी खाते-पीते लोग थे। मगर उस पर जब मुसीबत आई तो उनकी भी नजरें ज़ल्दी ही बदल गईं। जब कभी वह तीज त्यौहार के दिन बच्चों के साथ मायके जाती वह महसूस करती कि उसके बच्चों को बड़ी उपेक्षा के भाव से देखा जाता है। वह तो जाते ही काम में लग जाती । एक बार भी उसकी भाभी ने यह नहीं कहा कि सत्या तुम थोड़ी देर आराम कर लो। बीच-बीच में उसे भाई, भाभी या भतीजे की आवाजें सुनाई देतीं "सुनील पलंग पर मत चढ़ो, चादर गंदी हो जायेगी, अनिल उसको वहीं रख दो, शीशा टूट जायेगा।" तब उसे ऐसा

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, नई दिल्ली।

लगता जैसे कानों में कोई शीशा घोलकर डाल रहा हो। बच्चे अकसर घर आकर कहते—मम्मी हम मामा के यहां नहीं आयेंगे, जब देखो तब डांटते रहते हैं। और धीरे-धीरे सत्या ने वहां भी जाना लगभग बंद कर दिया। उसके बाद उसने गली के बच्चों को ट्यूशन पढ़ाना शुरू किया, खाली समय में लोगों के कपड़े सीं देती। गरीबी में बच्चे भी तो कितने समझदार हो गए थे। उसे याद है अनिल जब कभी कुल्फी, टाफी या किसी और चीज के लिए जिद करता तो सुनील उसको एकदम डांट देता "गला खराब करना है क्या?" वह समझता था कि मम्मी के पास पैसे नहीं होंगे। जैसे तैसे उसने सुनील को हायर सैकेंडरी पास करवाई।

बच्चे भी तो कितना प्यार करते थे उसको। एक दिन बैठे-बैठे जब सत्या को चक्कर आ गया था तो दोनों भाई कितना घबरा गए थे। सुनील तो उस दिन उसके पास से हटता ही नहीं था। इस पर उसने हंसकर कहा था "अब इतना क्यों घबरा रहा है, ठीक से तो हूं कहीं नहीं मरती और अब तो मर भी जाऊं तो तुम अपनी रोटी तो कमा लोगे न! और देखो अनिल तुमसे छोटा है, यह पापा का दुलारा बेटा है, इसको खूब पढ़ाना।" "नहीं मम्मी, फिर कभी ऐसा मत कहना"

०

दोनों बच्चों ने ट्यूशनें पढ़ा-पढ़ाकर पढ़ाई जारी रखी। उस टाइम हम गरीब थे, पर कितने सुखी थे। बच्चों में आपस में कितना प्यार था। कपड़े भी मिलकर पहनते थे। आज ईश्वर की दया से दोनों ऑफिसर हैं पर जाने किसकी नजर लग गई है इस घर की शांति पर। कई बार समझा कर हार चुकी हूं कि "बेटा जब इतनी गरीबी में हमने हँस खेलकर टाइम बिता दिया जो अब तो दोनों अच्छा कमा खा रहे हो फिर किसी को किसी से कुछ लेना-देना नहीं तो क्यों एक-दूसरे से नफरत करते हो। मेरे लिए तो दोनों ही बराबर हो। कौन सी जायदाद बांटनी है ले दे कर एक मां ही तो है जो तुम दोनों की साझी है, कैसे बांटोगे उसको।"

मगर किसी के कहने से कोई समझा है! जब से दोनों की शादी हुई है, दोनों के दिलों में जैसे एक दीवार पड़ गई है। अब पराई बेटियों को क्या दोष दूं। अपने ही कौन कम हैं! जब कभी इकट्ठे बैठते हैं तभी हमेशा दिमाग में यही डर बना रहता है कि कहीं आपस में उलझ न जाएं। सोचा था अलग होकर शायद ठीक हो जाएं, मगर कहां! एक की जरा सी तारीफ कर दो तो दूसरा काटने को दौड़ता है। अब मैं कहां जाऊं। कभी-कभी तो जी में आता है कि हरिद्वार चली जाऊं। बच्चों को पढ़ा दिया, लिखा दिया, मेरा फर्ज पूरा हुआ। मगर जरा सी जाने की बात कहो तो छूटते ही कहेंगे—"मम्मी तुम्हारे दिमाग में यह बात आई कैसे, क्या हम इतने नालायक हैं कि तुम्हें रोटी नहीं दे सकते। बोलो क्या कमी है तुम्हें!" अब इनको कैसे समझाऊं कि बेटा मैं कैसे तिल-तिल घुट रही हूं।

०

वह इन्हीं विचारों में खोई थी कि अनिल आ गया। "मम्मी क्या बात है, आज बड़ी गुमसुम बैठी हो!" कहकर अनिल सत्या के पास आकर बैठ गया।

"कुछ नहीं, ऐसे ही"

"तबीयत तो ठीक है न, दिखाओ तो हाथ। फिर बोला बुखार तो नहीं है।" सामने टेबल पर पड़े कार्ड को उठाकर बोला अरे यह कार्ड कहां से आया है। खोल कर देखा "अरे यह तो सुनील ने भेजा है मां, गृह प्रवेश कर रहा है। उसने देखा कार्ड के कोने में लिखा था "मम्मी मैं अपने को बहुत अकेला महसूस कर रहा हूं। अगर अनिल माने तो कुछ दिन के लिए जरूर चली आना। उसके हाथ से कार्ड कांप कर नीचे गिर गया। फिर धीरे से बोला "मम्मी, सुनील की याद आ रही है? तुम जरूर जाना मम्मी, मैं सुबह तुम्हें उसके घर के बाहर तक छोड़ आऊंगा और देखो सुनील तुम्हें बहुत प्यार करता है, मगर अगर फिर भी दिल न लगे तो एकदम चली आना।" तेरे भाई ने इतनी मेहनत करके कोठी बनवाई है, वह कल गृह प्रवेश कर रहा है। कहां-कहां से लोग आएंगे, बेटा मगर तेरे भाई की आंखें तुझे ही उस भीड़ में ढूंढ रही होंगी। ठीक है तुम आपस में नहीं बोलते, लेकिन उसको तेरी एक झलक से ही बड़ा सहारा मिलेगा कि वह दुनिया में अकेला नहीं है।

"मम्मी मैं नहीं आ सकूंगा। तुम उसे समझाना। हम दोनों अब आपस में इतना कट चुके हैं कि अब आपस में बात करते झिझक होती है। पर तुम तो हो न मम्मी। तुम हमारे बीच एक पुल हो और मम्मी यह पुल सलामत रहे वर्ना हम दोनों भीड़ में खो जायेंगे, मम्मी खो जायेंगे।"

□□

प्रायश्चित

☐ करुणा शर्मा

ऋचा के कमरे में प्रवेश करते ही माँ शून्य आँखों से निरंतर उसे घूर रही थी मानो अपने प्रश्न का उत्तर पूछ रही हो। ''क्या बात है बेटी ? इतनी रात ·········· आज फिर बस नहीं मिली या ऑफिस में ही देर हो गयी ? ''अब कभी देर नहीं होगी और न ही कभी बस मिस होगी माँ।'' ''मैं समझी नहीं बेटी, तुम मुझसे कुछ छिपा रही हो।'' ''नहीं माँ ठीक कह रही हूं। मैंने इस्तीफा दे दिया है नौकरी छोड़ दी है, कल से सब बन्द।'' ''नौकरी छोड़ दी ·········· क्यों ? क्या बात हुई, सब ठीक से तो है ?'' ऋचा माँ के इन सभी प्रश्नों के उत्तर नहीं देना चाहती थी, झल्ला कर बोली, ''बस करो माँ बाकी बाद में अभी आराम करने दो।''

अपने कमरे में जाकर वह बिना बत्ती जलाए औंधे मुंह गिर पड़ी और उसे आज का ऑफिस का एक-एक दृश्य सामने आने लगा।

''मिस ऋचा आपको साहब बुला रहे हैं।''

''मुझे ·········· अच्छा अभी आई।''

ऋचा ने कापी पेंसिल ली और सोचा कोई पत्र लिखाना होगा।

''मे आई कम इन सर ?''

''यस, कम इन, ·········· बैठो। मिस ऋचा, कल आप कितने बजे ऑफिस से गई थीं।''

''जी 5.30 बजे।''

''और आपको मिस वर्मा ने जो पेपर टाइप करने को दिए थे वे भी पूरे नहीं हो सके थे''

''अभी वही कर रही हूँ। थोड़ी देर में पूरे करके दे रही हूँ।''

''कल क्यों नहीं हुए ?''

''जी, मिस वर्मा ने मुझे 4.00 बजे वे पेपर्स दिए थे और काम बहुत था। 5.30 बजे तक जितना हुआ मैं करके चली गई थी, अभी वही कर रही हूँ।''

''मिस ऋचा आप हमेशा अपने काम से जी चुराती हो। आपको कितनी बार कहा है कि जब तक काम पूरा न हो घर नहीं जाएं।''

''जी मुझे फिर बस नहीं मिलती। यहां से डेढ़ घंटा लगता है।''

''तो इसमें ऑफिस का क्या दोष ? मैं आपको अंतिम वार्निंग देता हूँ कि आइन्दा ऐसा हुआ तो मुझे सख्त फैसला करना होगा।''

ऋचा अपनी सीट पर आई परन्तु उसके मस्तिष्क में पहले दिन से ही बॉस के व्यवहार का दृश्य घूमने लगा। हमेशा समय से पहले बुलाना, सारा दिन स्वयं बाहर रहना फिर 4.00 बजे ढेर सा काम देकर देर तक बैठने को कहना।

वह चाहता था कि ऋचा उसके साथ घुले मिले। कई बार शाम को जाते समय उसे कहा चलिए आपको गाड़ी में घर तक छोड़ देता हूँ। परन्तु ऋचा ने कभी स्वीकार नहीं किया। इससे बॉस को लगा कि एक स्टेनो उसकी बेइज्जती कर रही है। धीरे-धीरे बॉस और ऋचा में कटुता बढ़ती गई। कई बार बॉस ने बाहर की पार्टियों के सामने बुलाकर उसकी बेइज्जती की।

ऋचा को अपने काम और अपने सिद्धातों तक मतलब था। यद्यपि बॉस का व्यवहार उसे मानसिक अशांति देता था परन्तु वह किसी प्रकार हालातों से समझौता करती चली जा रही थी। परन्तु आज उससे सहा न गया और उसने त्याग पत्र देने का फैसला कर लिया।

पिता जी की मृत्यु के बाद उसे नौकरी करनी पड़ी थी। माँ ने काफी मना किया था। पिता जी जायदाद छोड़ गए थे। परन्तु ऋचा ने माँ से स्पष्ट कहा था कि मैं अपने पैरों पर खड़े होना चाहती हूँ।

माँ ने कभी उस पर अपना निर्णय थोपना नहीं चाहा था अत: समझा कर भी चुप रही। आज ऋचा ने रोज रोज की झकझक से तंग आकर यह निर्णय भी स्वयं ही किया था। रात भर वह सो न सकी हालांकि नौकरी उसने अपनी मर्जी से छोड़ी

पंजाब नेशनल बैंक, चण्डीगढ़

थी। परन्तु फिर भी मन विचलित था। प्रातः इधर-उधर पुस्तकों को देखा परन्तु मन नहीं लगा। तुरन्त तैयार हुई और अपनी सहेली के घर गई।

"हैलो ऋचा"·····।

"हैलो, आज ऑफिस नहीं गई?"

"नहीं, नीलम मैंने नौकरी छोड़ दी।"

"नौकरी छोड़ दी! क्यों?"

"बस यूँ ही"।

"यह तो कोई बात न हुई।" ऋचा ने उसे वृत्तांत सुनाया।

"अब तुमने क्या सोचा?"

"क्या सोचना है, तुमसे सलाह माँगने आई हूँ।"

"हाँ एक आइडिया है····· मेरे मन में, परन्तु उसके लिए इकट्ठा 10,000/-रुपया चाहिए।"

"किसलिए ? मैं माँ से इतना एक दम माँगने के हक में नहीं।"

"मैंने अपने गैराज में ब्यूटी पार्लर खोलने का निश्चय किया है।"

"आइडिया बुरा नहीं।"

"उसके लिए मैं अपने भाई से बात करूँगी। वह बैंक से यदि तुम्हें ऋण दिलवा दें तो तुम्हारी समस्या हल हो जाएगी। किश्तों में तुम ऋण उतार देना।"

कुछ दिन ऋचा यूं ही इधर-उधर जाकर अपना समय व्यतीत करती रही, पुस्तकें पढ़ती परन्तु मन स्थिर नहीं हुआ। एक दिन अचानक नीलम उसके घर आई उसके हाथ में एक फार्म था।

"ले ऋचा, भर दे इसे।"

ऋचा ने फार्म भर दिया और उसे 10,000/-रुपये का ऋण स्वीकृत हुआ।

धीरे-धीरे पुराने जख्म समय के साथ भरते गए। और ऋचा अपने व्यवसाय में मग्न हो गई। उसका ब्यूटी पार्लर शहर में प्रसिद्ध हो गया।

कुछ वर्षों बाद·····एक 20-25 वर्ष की युवती अपनी कार से उतरी और ऋचा को अपनी शादी के लिए तैयार करने हेतु निमंत्रण दिया।

"सॉरी·····" मैं घर आकर तैयार नहीं करती, आप यहीं आ जाएं।"

वह बाहर गई और कार में बैठे अधेड़ युवक से बात करके पुनः लौटी·····"जी, मैं आपको जितनी कहें कीमत दे सकती हूँ।"

"क्षमा कीजिए, मेरे सिद्धांतों के आगे कोई कीमत आप नहीं चुका पायेंगी।"

तभी वह व्यक्ति भी अन्दर आ गया।

"नमस्ते?" "जी नमस्ते बैठिए।" ऋचा उसे देखकर चौंक गई।

"बैठिए ना, आप खड़े क्यों हैं·····" आपने शायद मुझे पहचाना नहीं।"

"मैं ऋचा हूँ·····कुछ वर्ष पहले मैंने आपकी फर्म में काम किया था। आपके सदव्यवहार के कारण आपकी फर्म में अधिक देर काम न कर सकी।"

वह व्यक्ति उसके कहे शब्द सुनता रहा और उसकी बेटी निरन्तर अपने पिता और ऋचा के मध्य हुए वार्तालाप को सुनती रही। "आपको याद होगा सर·····"तब भी मैंने आपसे यही कहा था, मेरे जीवन के सिद्धांत के आगे पैसा कोई चीज नहीं। मुझमें अहं नहीं स्वाभिमान था। आज आपकी बेटी को भी यही कहा है।"

"मुझे क्षमा कर दो बेटी·····" मैं अपनी भूल का प्रायश्चित करता हूँ। आज बेटी का बाप होने पर मैं यह सब समझता हूं। मैं अपनी बेटी को ही आप के पास तैयार होने के लिए भेजूंगा। और यह रहा निमंत्रण पत्र, शादी में जरूर आईएगा।"

ऋचा ने कार्ड लिया और मन ही मन मुस्कराई। पूरी फर्म पर अपनी तानाशाही करने वाला वही व्यक्ति उसके सामने खड़ा था जिसने कभी उसे नौकरी से निकाल देने की धमकी दी थी। वह भागी-भागी नीलम के पास गई और उसे सारा किस्सा सुनाया।

"पर तुम इतनी प्रसन्न क्यों हो।"

"खुश क्यों न होऊं····नीलम तुम समझ नहीं सकती। उसी आदमी ने मुझे एक दिन कहा था इतना नखरा है तो नौकरी करने क्यों चली आती हो···तुम जैसी हजारों लड़कियां मेरे पास भीख मांगने आती हैं और तुम···तुम अपने सिद्धांतों के आगे अपने आपको समझती क्या हो —आज वही आदमी अपनी बेटी की खातिर मेरे पास आया है और वर्षों बाद अपनी भूल का प्रायश्चित करने।"

"तो तुम अपनी जीत पर खुश हो।"

"नहीं, नीलम जीत पर नहीं। मुझे प्रसन्नता है कि समय आने पर ही सही, व्यक्ति ने अपनी भूल का प्रायश्चित तो किया।"

□□

('आलोक' पत्रिका, अक्तूबर-दिसंबर, 98 से साभार)

जरासंध नहीं हूँ मैं

□ राजेश श्रीवास्तव

''बड़ा अजीब है ये सास-बहू का रिश्ता भी। कभी-कभी लगता है जैसे रणक्षेत्र में दो रणचंडिया आमने-सामने खड़ी हों। एक के पास अपने अतीत के अधिकारों के हथियार हैं तो दूसरी के पास भविष्य की दुधारी दुहाइयां। एक तरफ ममता का विशाल महासागर है तो दूसरी तरफ प्यार का निर्झर। ऐसे में आदमी, आदमी न रहकर एक मुर्दा और बेजान राज्य-सा रह जाता है जिस पर उन्हें किसी-न-किसी तरह कब्जा करना है।'' गुंजन ने सिर तकिए के सहारे टिका लिया और आंखें मूंद लीं। मस्तिष्क में चल रहा तूफान अभी थमा नहीं था। वह फिर सोचने लगा, ''कैसी विचित्र विडम्बना है कि जिसकी नजर जाती है या तो सास-बहू की टकराहट पर जाती है या दो पीढ़ियों की सनातन लड़ाई पर। मगर इन दो पाटों के बीच पिसते बेटे की निरीहता पर किसी का ध्यान नहीं जाता।''

''माँ के लिए कदाचित् सरल है केवल मां होकर जीना और पत्नी के लिए शायद और भी ज्यादा सरल है केवल पत्नी होकर रहना। पर आदमी को कब बेटा होना है और कब पति यह निर्णय अक्सर गुंजन को बड़ी मुश्किल में डाल जाता है। उसको कई बार लगता जैसे उसका शरीर दो हिस्सों में बंट गया है, एक बेटे के रूप में और दूसरा पति में। कभी बेटा पति पर हावी हो जाता है तो कभी पति बेटे पर। तब वह खुद को जरासंध के दो फाड़ हुए धड़-सा महसूस करने लग जाता है। उसकी समझ नहीं आता कि कब तक इसी तरह कट-कट कर जुड़ता रहेगा वह।''

कई बार की तरह आज फिर गुंजन संशय के इसी दोराहे पर खड़ा है।

उसने हमेशा इस स्थिति से कन्नी काटने की कोशिश की है मगर हर समस्या का समाधान बिल्ली को देखकर कबूतर की तरह आंख बंद कर लेना नहीं होता। गुंजन इस बात को अच्छी तरह जानता है। उसके एक तरफ माँ है जिसने पच्चीस बरस पहले उसे जन्म दिया और जिसकी तपस्या और त्याग की बदौलत ही वह आज कुछ है। दूसरी ओर पत्नी है जिसके साथ उसका सारा भविष्य जुड़ा हुआ है। एक तरफ अतीत की स्मृतियां हैं तो दूसरी तरफ भविष्य के सपने। वर्तमान उसमें पुल की तरह काम कर सके—गुंजन बस इसी तलाश में है।

''गज्जू'', माँ ने आवाज लगाई तो उसकी तंद्रा भंग हो गई। उसने जल्दी से अपने को समेटते हुए बैड से उतरने का प्रयास किया मगर तब आवाज लगाती मां वहीं कमरे तक चली आई।

''अरे, तू अभी तक यहां बैठा हुआ है और वहां खाना ठंडा हो रहा है।''

''चलता हूं माँ,'' गुंजन ने अनमने भाव से कहा।

''तो क्या मैं और बहू भूखे ही बैठे रहेंगे। चल, चलकर हाथ-मुंह धो ले और खाना खा।'' मां ने उसे जबरदस्ती खींचते हुए कहा। माँ की इस जल्दबाजी का भी एक कारण था। महीने में एक दिन स्पेशल डिश के तौर पर माँ अपने हाथों से गेहूं-चने की रोटी और जीरे का छौंक लगी आलू-टमाटर की जायकेदार सब्जी बनाती। हर किसी को इस दिन का इंतजार रहा करता। सबसे ज्यादा खुद माँ को इस दिन का इंतजार रहता। कब ये दिन आए और कब वह अपने हाथों से बनी रोटी अपने बच्चों-बहू को और मियां जी को खिलाए। वैसे भी बहू के आ जाने के बाद उसे रोटी-सब्जी बनाने का मौका मिल ही कहां पाता था। गुंजन हाथ-मुंह धोकर रसोई में माँ के पास ही आलथी-पालथी मार कर बैठ गया। तड़का लगी सब्जी की तेज खुशबू ने उसकी भूख को कई गुना कर दिया। अभी उसने पहला कौर तोड़कर मुंह में डाला ही था कि पास बैठी कृति ने उसे हल्के-से टहोका मारा। उसने नजरें उठायीं तो कृति ने इशारा किया कि खाना लेकर कमरे में चलो, दोनों वहीं इकट्ठा खाएंगे। गुंजन ने आंखों ही आंखों में इंकार कर दिया तो कृति ने मुंह फुला लिया। इस पर गुंजन को बेसाख्ता बिहारी का दोहा याद आ गया।

''कहत नटत रीझत खीजत मिलत खिलत लजियात,''
भरे भौन में करत हैं नैनन ही सों बात।''

वह खिलखिलाकर हंस पड़ा। कृति की समझ में कुछ नहीं आया। उसने चिढ़कर मुंह घुमा लिया। वैसे भी आदमी जब

कर्मचारी चयन आयोग, नई दिल्ली

शंकित होता है तो गलत अर्थ ही ज्यादा निकालता है। कृति ने भी यही किया। हां, माँ ने जरूर पूछ लिया, "क्या बात है रे गज्जू, तुझे किस बात पर इतनी हँसी आ रही है?" गुंजन की हँसी पर एकाक जैसे ब्रेक लगे। उसे अहसास हुआ कि यह उसका शयनकक्ष नहीं था। माँ भी वहां मौजूद थी। उसने फट-से बात बनाते हुए कहा—"कुछ नहीं माँ, बस, यूं ही दफ्तर की एक घटना याद आ गई थी। पर माँ आज तुमने सब्जी बहुत ही जायकेदार बनायी है। थोड़ी-सी और देना तो।"

"अरे थोड़ी क्यों, खूब सारी ले। जी भर के खा।" माँ ने खुश होकर कहा। गुंजन मुस्कराने लगा। उसे पता है कि माँ का ध्यान किसी बात से हटाना हो तो उसकी सब्जी और रोटी की तारीफ कर दो तो बस जैसे माँ के पंख लग जाते हैं। उसके बूढ़े हाथों में जवानी का उत्साह भर जाता है। वैसे ये सच्चाई तो अपनी जगह थी कि माँ सचमुच सब्जी और रोटी बहुत अच्छी बनाती है पर जब गुंजन कहीं फंस जाता है या किसी बात से माँ का ध्यान हटाना होता तो जानबूझ कर वह और भी ज्यादा तारीफ करता। ऐसे में माँ के हाथों में गजब की फुर्ती आ जाती। काले बालों के बीच धारा की तरह बह रहे सैकड़ों सफेद बालों और हाथों की झुर्रियों को न देखो तो कोई कह ही नहीं सकता था कि यह थके-हारे बूढ़े हाथों का कमाल है।

माँ को तो जैसे पर लग गए पर अपनी बात न माने जाने पर कृति हमेशा की तरह कुढ़ती रही। अब उसे कौन समझाए कि जो जायका माँ के पास बैठ गर्मागम रोटियाँ खाने में है, वह बंद कमरे की घुटती हवाओं में कहां। मगर कृति की तो आदत है। कुढ़ना है तो कुढ़ना है। चिढ़ना है तो चिढ़ना है। बस, इसी बात पर गुंजन को गुस्सा आ जाता है। खाते वक्त इन हरकतों से उसका जायका खराब होने लगा।

"गज्जू, एक रोटी और दू क्या?" माँ की आवाज से उसका ध्यान टूटा। उसने अचकचाकर कहा, "नहीं माँ, बस, आज तो वैसे ही एक-दो रोटियां ज्यादा खा गया हूं। पूरी छः रोटियां खाई हैं।"

"रहने दे, रहने दे पगले, तुझसे कितनी बार कहा है कि रोटियां गिना नहीं करते," माँ ने बेहद दुलार से कहा, "गिनने से शरीर को लगती नहीं हैं।" कहते-कहते माँ अपने पुराने अंदाज में आ जाती और पांच-सात मिनट का पूरा प्रवचन पुराण सुना डालती।

रात के कोई एक या सवा बजे होंगे पर कृति का मूड अभी भी दिल्ली दूरदर्शन की तरह बिगड़ा हुआ है जिस पर साफ-साफ लिखा हुआ है "-रुकावट के लिए .... क्षमा कीजिए खेद है तो हो ही नहीं सकता क्योंकि यह तो उसकी फितरत में नहीं है बल्कि लिखा है-रुकावट के लिए..... मेरी मर्जी.... कर लो क्या करोगे।" गुंजन अजीब स्थिति में है, उसे हँसी आ रही है, न गुस्सा। फिर भी माहौल हल्का करने की गरज से उसने कहा, "कुक्कू यार, समझ नहीं आता कि इसमें इतना चिढ़ने और रूठने की क्या बात है।"

"तो तुमने खाना मेरे साथ कमरे में क्यों नहीं खाया?" कृति का लहजा गुस्सायती कम शिकायती ज्यादा है।

"हद करती हो तुम भी। माँ कितने प्यार से.....।"

"तो क्या मैं यहां तुमसे..." शायद शब्द न कह पाने की मजबूरी में उसने वाक्य को अधूरा छोड़ दिया।

"ओफ्फ, माँ से क्या कहता मैं?"

"कुछ भी।"

"कुछ भी यानि कहता कि माँ तुम्हारी बहू मेरे साथ बड़े प्यार और मुहब्बत से अपने कमरे में खाना खाना चाहती है, तुम आकर रोटियाँ वहीं पहुंचा जाना।"

"माँ क्यों लातीं, मैं खुद ही ले आती।"

"तो वहां बैठकर खाने में क्या जीभ घिस रही थी। माँ महीने में एक बार इतने प्यार से गेहूं-चने की रोटियां बनाती है और मैं उससे कहता कि माँ मैं तेरे आंचल तले नहीं, बीवी के पल्लू में छिपकर खाना खाऊंगा, क्यों?" गुंजन बुरी तरह बिफर गया।

ऐसे में हमेशा की तरह कृति के पास आँसू होते हैं। ईश्वर ने औरत को दो चीजें बड़ी ही जबरदस्त दी हैं-एक तो आँसू और दूसरे उसके कामबाण। पूरी जिंदगी गुजार दीजिए, इन आंखों की भाषा समझने में अच्छे-अच्छे ऋषि-मुनि खेल जाते हैं। अच्छा-खासा जीतता हुआ आदमी दो आँसुओं के आगे हथियार डाल देता है लेकिन बिना गलती के क्षमा मांगने वालों में गुंजन की फितरत नहीं है और गलती करने वाले को अकारण माफ कर देना भी उसे पसंद नहीं। ऐसे में चुपचाप सो जाना उसे कहीं बेहतर लगता है। उसने लाइट ऑफ कर दी और एक अदृश्य दीवार अपने बीच लिए लेट गया।

मगर ऐसे में नींद न आनी थी, न आयी। विचारों का न टूटने वाला एक सिलसिला जरूर शुरू हो गया। वह सोचने लगा कि लोग कहते हैं कि बहू को बेटी की तरह रखे। सास मां की तरह रहे। अब इसमें भी बड़ी दिक्कत है। पहले तो ऐसा होना अपने आप में बड़ी टेढ़ी खीर है। न तो माँ ही कभी भूल पाती है कि बहू पराया खून है और न ही बहू कभी सपने में भी सास को अपनी सगी माँ के स्थान पर रख पाती है। बहू बेटी जैसी तो हो

2226 HA/99—6

सकती है पर बेटी नहीं। सास भी भले ही माँ समान हो जाए पर माँ तो हो नहीं पाती–कारण चाहे जो भी हो। किसी तरह यह संभव हो भी जाए तो फिर मुसीबत। माँ की तो वहीं पुरानी आदत है–पुरानी बड़ी–बूढ़ियों की तरह हर बात पर नुक्ताचीनी करना। जरा सी कमी रह जाने पर लम्बे–लम्बे प्रवचन और नसीहतें देना या फिर कहीं भी किसी से भी तुलना कर देना। आदमी सब कुछ बर्दाश्त कर लेता है पर अच्छाई में अपनी तुलना किसी से बर्दाश्त नहीं कर पाता। इसके लिए बहुत बड़ा जिगरा चाहिए जो आजकल तो सगे भाइयों तक में नहीं होता। तब यह तो एक पराए खून की बात है।

आदमी के साथ दिक्कत भी तो यही है कि वह अच्छाइयां नजरअंदाज कर जाता है लेकिन कमियां फौरन पकड़ लेता है। कमियों का उद्घाटन भला किसे अच्छा लगता है। यहां भी यही कुछ हो रहा था। एक अतीत में कमियां ढूढती है तो दूसरी भविष्य में अयोग्यताएं। हर बार की तरह दो अदृश्य तलवारों के बीच गुंजन का ही सशरीर वजूद होता है जो जगह–जगह लहूलुहान है।

पिछले कुछ समय से गुंजन लगातार महसूस करता रहा है कि कुछ खास मौकों पर कृति का व्यवहार कुछ अजीब–सा हो जाता है। माँ के प्रति उसने कभी असम्मान जैसी कोई हरकत नहीं की है। न ही माँ को उससे ऐसी कोई शिकायत रही है। जो कुछ घटा है, संवेदनात्मक स्तर पर ही घटा है। गुंजन ने कई बार महसूस किया है कि जब–जब माँ उसे बहुत प्यार से कुछ बताती है या दुलार से खाना खिलाती है तो कृति को अच्छा नहीं लगता। वह ऐसे मौकों पर जानबूझ कर कुछ–न–कुछ बहानेबाजी कर जाती है, चिढ़ जाती हैं, या फिर कुढ़ने लगती है। उसे शायद लगता है कि उसके अधिकार क्षेत्र में कोई अतिक्रमण कर रहा है। माँ उसे माँ न लगकर तब प्रतिद्वंद्वी महसूस होने लगती हैं।

ऐसे ही एक नाजुक मौके पर गुंजन ने कृति को पकड़ लिया था, जब कृति माँ के पास से उठकर चली आई थी। गुजंन ने पूछा–"क्या बात है कृति, तुम माँ के पास से उठकर क्यों चली आईं?"

"कुछ नहीं ऐसे ही। कुछ तबीयत ठीक नहीं लग रही थी।" कृति ने कहा।

"मैं जानता हूं तुम्हारी तबीयत खराब होने का कारण क्या है। कारण है माँ। क्यों, यही बात है कि नहीं?"

"क्या... ?" कृति बुरी तरह चौंकी जैसे किसी चोर को रंगे हाथ पकड़ लिया गया हो। बोली, "न...न...न नहीं तो।"

"देखो कुक्कू," गुंजन ने उसे प्यार से समझाते हुए कहा, "दुनिया में सबके अपने–अपने अधिकार होते हैं। जहां दूसरों के अधिकार शुरू होते हैं, वहां हमारे अधिकार समाप्त हो जाते हैं। मैं एक बेटा भी हूं और एक पति भी। बेटे के तौर पर जहां तक माँ के अधिकार हैं, वे केवल उन्हीं के हैं। उन्हें कोई नहीं छीन सकता। जब मैं पति हूं तो केवल तुम्हारा हूं। लेकिन दिक्कत तो यह है कि कोई भी आदमी हर वक्त न तो पूरा बेटा होता है और न ही पूरा पति। उसे दोनों का सामंजस्य करके चलना होता है। यह बात कदाचित् न माँ की समझ में आती है और न तुम्हारी। माँ केवल माँ रहना चाहती है और तुम केवल पत्नी। दूसरे के लिए भी कुछ अधिकार छोड़ो।"

"मैंने तो कभी ऐसा नहीं सोचा और न ही ऐसा चाहा।" कृति साफ मुकर गई।

"देखो कुक्कु, मैं तुमसे कोई सफाई नहीं मांग रहा हूं और न ही कोई दोषारोपण कर रहा हूं। मैं तो सिर्फ फलदार वृक्ष की तरह थोड़ा झुकने को कह रहा हूं। विनम्रता आदमी को उठाती है जबकि अकड़ तोड़ देती है।"

मगर गुंजन की सारी सीखें चिकने घड़े पर पानी की तरह थीं—इसका अहसास उसे जल्दी ही हो गया। न कृति ही बदली, न उसका व्यवहार और न ही माँ की आदतें। गुंजन की परेशानी यह भी है कि माँ को तो वह हर चीज समझा नहीं सकता। जिससे सब कुछ सीखा हो उसे कुछ सिखाना या समझाना वैसे भी बड़ा कठिन होता है। इससे शिष्य की मर्यादा भी भंग होती है। बेटा भी तो माँ का शिष्य ही होता है। दूसरी ओर कृति है जो लाख समझाने पर भी कुछ सीखने के प्रति उत्साहित नहीं है।

दो वर्ष गुजर गए। घर में, इस बीच, नया मेहमान आ गया। आमुख की किलकारियों ने सारे घर को स्वर्ण–मंदिर बना दिया। सारा घर अब जैसे एक ही बच्चे के पीछे पागल है। कैसी अजीब बात है कि पढ़े–लिखे बौद्धिक लोग चौबीस घंटे भी साथ नहीं गुजार सकते और ऊब जाते हैं मगर जिस बच्चे को न बोलना आता है, न उत्तर देना, न बातें करना, उसके साथ घंटे तो क्या दिन के दिन आराम से गुजर जाते हैं। मूल समस्या उत्तर देने की है। आप उत्तर न दीजिए, प्रतिवाद मत करिए, बहस मत कीजिए, आप सर्वत्र स्वीकार्य होंगे। मगर बोलते ही आदमी उत्तर देना सीख जाता है, तर्क–वितर्क करने लगता है। बस, यहीं से टकराहट का सिलसिला शुरू हो जाता है। बच्चा सिर्फ सुनता है और इसीलिए सबको खुश रखता है। लेकिन न तो गुंजन बच्चा है, न कृति और न ही माँ। सबने बोलना और उत्तर देना सीख लिया है। किसी के भी पास सर्वमान्य समाधान नहीं बल्कि अलग–अलग उत्तर और प्रत्युत्तर हैं जो उत्तरोत्तर बढ़ते ही जा रहे हैं। समाधान कदाचित् बच्चा होना या बच्चे जैसा होने में हैं। यही इस कथानक का आरंभ भी है और संभवत: अंत भी।

□□

माँ का अहसान

☐ प्रमोद कुमार

"जय शेरांवाली की..... जय माता की.....जय पहाड़ा वाली की....." बोलती हुई भक्तों की एक लम्बी कतार सीढ़ियां चढ़ रही थी जिसमें औरतें, बच्चे, वृद्ध-सभी थे। सबके मन में माँ के दर्शन करने की लालसा थी।

मेरी यह वैष्णो देवी की पहली यात्रा थी। मेरे साथ मेरी पत्नी व एक साल की पुत्री भी थी। दो बैग भी थे जिनमें यात्रा की जरूरत का सामान भरा था। इन बैगों एवं बच्ची को लेकर दस-ग्यारह मील की ऊंचाई चढ़ना हमारे लिए बड़ा मुश्किल था।

तभी एक व्यक्ति, "साब, पिट्ठू चाहिए?"

मैंने कहा, "हाँ चाहिए, कितने पैसे लोगे?"

वह बोला "साब, जो चाहे दे देना।"

"क्या तुम ये दो बैग और बच्ची को लेकर चढ़ पाओगे", मैंने उससे पूछा। "साब, सब ले चलूँगा। आपको कोई तकलीफ नहीं होगी। आप चिंता न करें"—उसने उत्तर दिया।

और हमने उसे अपने बैग एवं बच्ची दे दी। बच्ची को उसने पीठ पर बैठा लिया और बैग कन्धे पर डाल धीरे-धीरे चलने लगा। यात्रा की बोरियत मिटाने के लिए मैं उससे बातें करने लगा।

"पिट्ठू! तुम्हारा नाम क्या है?"

"साब, मेरा नाम अहसान अली है।"

"अरे तुम तो मुसलमान हो फिर हिन्दुओं को मन्दिर ले जाने में उनकी सहायता क्यों करते हो।" "तो क्या हुआ साब, खुदा तो है ही ना। उसके पास जाने के रास्ते अलग-अलग हैं। कोई पैगम्बर को मानता है, कोई माँ के दरबार को। सच बताऊं, ये देवी माँ ही मुझे रोटी देती हैं। मेरे बच्चों को पालती हैं। मुझे पिट्ठू का काम करते हुए 40 साल हो गए साब। मैं बच्चा था तभी यहां आया और यहीं की कमाई से मैंने अपने 6 बच्चे पाले, उनकी शादियां की, मकान बनाया। माँ ने क्या नहीं दिया। सब कुछ तो दिया। वैष्णों माँ की कृपा से मुझे रोटी मिलती है। कभी किसी भक्त का सामान चढ़ाता हूं। कभी वृद्धों को देवी माँ तक ले जाता हूं। कभी किसी बच्चे को, मैं सच कहता हूं साब, देवी मेरी माँ है। यही मुझे पालती है। मेरे बच्चे इन्हीं माँ की वजह से भूखे नहीं सोते"—

हम थक गये थे। मैंने अहसान अली को रूकने के लिए कहा। सबने एक जगह बैठकर चाय पी। कुछ आराम करने के बाद फिर सीढ़ियां चढ़ने लगे।

मैं अहसान अली के बारे में और जानने को उत्सुक था।

"अहसान, तुम 24 घण्टे में कितने चक्कर लगाते हो।, मैंने पूछा" उसने कहा "साब, दिन में दो चक्कर लगा लेता हूं। 150-200 रुपये प्रतिदिन बचा लेता हूँ।"

"अहसान तुम रहते कहां हो"—मैंने पूछा।

"साब, यहीं कश्मीर में। यहां से पांच कोस दूर मेरा गांव है"—उसने बताया।

मैं और मेरी पत्नी कोई वजन साथ न होने पर भी थक गये थे लेकिन अहसान को थकान नहीं महसूस हो रही थी। उसकी उम्र हमारे से ज्यादा थी फिर भी वह हमारे बैग एवं बच्ची को लादकर चलता ही जा रहा था। मुझे लोगों की आवाजें सुनाई दे रहीं थीं। सभी माँ की जय-जयकार करते चले जा रहे थे। तभी दो पिट्ठू एक बूढ़े को लादकर ले जाते नजर आये। एक व्यक्ति जमीन पर लेट लेटकर माँ के दरबार को जा रहा था।

अहसान बताने लगा, "साब, देवी माँ के दर्शन करने अमीर-गरीब सभी दूर-दूर से आते हैं। माँ हर व्यक्ति की मन्नत पूरी करती है। उनके दु:खों को दूर करती है। उसके दरबार में आने वाले सब उसके ही बच्चे हैं चाहे वे अमीर हों या गरीब। वे सब बराबर हैं चाहे जिस जाति के हों या चाहे जिस धर्म के।"

तभी माँ का दरबार आया। मैंने अहसान से कहा, "तुम रुको, हम अभी दर्शन करके आते हैं, फिर खाना खांएगे।"

भारतीय रिज़र्व बैंक, लखनऊ

2226 HA/99—7

अहसान ने कहा, ''मैं भी आपके साथ दर्शन करूंगा।''

''अरे, तुम तो मुसलमान हो? तुम मूर्ति पूजा नहीं करते होंगे— ''मैंने पूछा।

अहसान ने उत्तर दिया, ''साब जी, देवी माँ मूर्ति नहीं हैं। वह हमारी माँ है। माँ जो रोटी देती है, हमारे बच्चों को पालती है। माँ कहीं मूर्ति होती हैं साब?''

अहसान के इन वचनों से मैं हतप्रभ था। मुझे लगा, अहसान ही देवी माँ का सच्चा भक्त है। वह वर्षों से भक्तों को दरबार पहुँचा रहा है। वह एक नाव है जो आत्मा से परमात्मा के बीच चलती है। यह व्यक्ति 40 साल से हर रोज माँ के दरबार आता है। खुद माँ के दर्शन तो करता ही है, दूसरों को कराता भी है। सांसारिक रिवाज उसके रास्ते में दीवार नहीं बनते। उसका प्यार ऐसा है जैसे बेटे का माँ से। मुझे लगा जैसे अहसान भक्तों की कतार में सबसे आगे खड़ा है, बिलकुल निर्मल मन से। मैं सोचने लगा कि प्यार और भक्ति मानव मन की भावनाएं हैं जो व्यक्ति की सोच पर निर्भर करती हैं, न कि उसके हिन्दू-मुसलमान होने पर। व्यक्ति की सोच उसकी प्राकृतिक एवं सांसारिक जरूरतों पर निर्भर करती है, न कि धर्म पर । वापसी में, मैं एक नई ऊर्जा से भरा लौट रहा था। □□

(नगर प्रभा पत्रिका से साभार)

"शायद हममें कुछ ऐसे आदमी हैं, जिन्हें इस बात का डर है कि हिंदीवाले हमारी मातृभाषा को छुड़ाकर उसके स्थान में हिंदी रखवाना चाहते हैं। यह भी निराधार भ्रम है। हिंदी प्रचार का उद्देश्य केवल यही है कि आजकल जो काम अंग्रेजी से लिया जाता है वह आगे चलकर हिंदी से लिया जाए। अपनी माता से भी ज्यादा प्यारी मातृभाषा बंगला को तो हम कदापि नहीं छोड़ सकते, किंतु भारत के विभिन्न प्रान्तों के भाइयों से बातचीत करने के लिए हिंदी या हिंदुस्तानी तो सीखनी ही चाहिए। स्वाधीन भारत के नवयुवकों को हिंदी के अतिरिक्त जर्मन, फ्रैंच आदि यूरोपीय भाषाओं में ऐसी एक-दो सीखनी पड़ेंगी, नहीं तो अंतर्राष्ट्रीय मामलों में हम दूसरी जातियों का मुकाबला नहीं कर सकेंगे।...

...कुछ लोगों का विचार है कि बंगला राष्ट्रभाषा हो, क्योंकि इसमें उच्च कोटि का साहित्य है। हिंदी में उच्च साहित्य है अथवा नहीं, यह विवादग्रस्त विषय उठाना ठीक नहीं है। हिंदी व्यापक रूप से भारत में बोली जाती है और इसमें संग्रहण शक्ति है तथा यह सरल है।"

सुभाष चन्द्र बोस

पडवांस, जुलाई 1938

आवेगात्मक-क्षण

□ डॉ. रामदास 'नादार'

दरबारी आज उदास था। रामबाई तो सर पीट-पीट अधमरी हो गई थी। आज उनके तीसरी संतान लड़की हुई थी। दो संतानें पहले भी थीं—एक लड़का और एक लड़की। दोनों अभी बच्चे ही थे। दोनों की आयु में एक साल का ही अन्तर था।

दरबारी पाकिस्तान से आया एक शरणार्थी था। वे भारत से पाकिस्तान गए एक मुसलमान द्वारा छोड़े एक टूटे-फूटे मकान में रहता था जो उसे सरकार द्वारा अलाट किया गया था। घर में गरीबी व बेबसी का साम्राज्य था। दरबारी की आय का कोई विशेष साधन नहीं था। वह एक स्कूल के सामने गोलियां, टाफियां लेकर बैठता था और मुश्किल से दिन भर पांच-सात रुपए ही कमा पाता था। दो जून रोटी के भी लाले थे। इस पर उसे बुरी लत पड़ गई थी मदिरा सेवन की। रोज शराब पीना तो उसके बूते की बात नहीं थी फिर भी सप्ताह में दो बार एक दो पैग लेना उसका ऐसा व्यसन हो गया था जिस पर उसका बस नहीं था। घर में रोटी हो न हो किन्तु उसे शराब अवश्य चाहिए थी इस कारण स्वाभाविक था कि पति-पत्नि में कलह हो। रामबाई उसे बहुत समझाती किन्तु वह उसकी एक न सुनता। कई बार तो नौबत यहां तक आई कि घर में आटा-दाल नहीं। चूल्हा कैसे गर्म हो। बच्चे भूखे सो गए। गरीबी का अभिशाप एक बहुत बड़ा अभिशाप है। मनुष्य सभी बुरे दिन काट लेता है किन्तु गरीबी का अभिशाप सहन करना किसी भी व्यक्ति के लिए कठिन होता है। निर्धनता सब पापों व दुखों की जननी है।

रामबाई दु:ख सहते-सहते कुछ अधिक भावुक हो गई थी। बच्चों को भूखा देख पाना उसके लिए कठिन हो जाता। वह मायके जाती और अपने भाइयों से सहायता मांगती किन्तु अब यह हर रोज की बात होने लगी थी। उसके भाई भी कुछ अधिक समृद्ध नहीं थे। उनकी अपनी गुजर-बसर कठिनता से हो पाती थी।

माँ और मन या मस्तिष्क ईश्वर की अद्‌भुत कृतियां हैं। माँ की भावनाओं की गहराई तक पहुंच पाना भी मुश्किल होता है। अपनी संतान के प्रति उसका स्नेह अथाह एवं अतुल्य होता है वह अपने बच्चों के लिए कुछ भी कर गुजरती है। माँ उनके लिए बड़ा से बड़ा त्याग करने से भी नहीं झिझकती। बच्चों के लिए माँ ही अपना सर्वस्व लुटा सकती है अन्य कोई नहीं। माँ किस सीमा तक जा सकती है, इसे आंक पाना एक शोध विषय है।

इसी प्रकार मन अथवा मस्तिष्क एक पेचीदा मशीन है। बड़े-बड़े मनोवैज्ञानिक इस मशीन को आज तक नहीं समझ पाए। विज्ञान ने इतनी उन्नति की है। कम्प्यूटर बन गए हैं किन्तु मानव मन या मस्तिष्क जैसा कम्प्यूटर कोई नहीं बना सकता। मानव मस्तिष्क की कितनी ही विशेषताएं हैं जिन्हें अभी जानना शेष है। मन की एक बड़ी विशेषता यह है कि एक क्षण में मीलों की दूरी तय कर लेता है। अभी यहां तो अगले क्षण लन्दन में। लहरों की मानित विचार उठते हैं और तुरन्त गायब हो जाते हैं। कोई विचार अधिक समय तक टिका नहीं रह सकता। विचार का आवागमन निरंतर जारी रहता है एक अन्य विशेषता यह है कि विस्मृति। यदि मनुष्य को विस्मृति का वरदान न मिला होता तो उसका जीना दुभर हो जाता। मनुष्य के लिए एक अन्य ईश्वरीय देन है जिजीविषा—जीने की उत्कृष्ट इच्छा, कोई दु:खी से दु:खी व्यक्ति भी हर हाल में जीना चाहता है मरने की इच्छा किसी की भी नहीं होती प्राणियों में यह गुण ही उन्हें हर परिस्थिति में जीवन की क्षमता तथा शक्ति प्रदान करता है। किन्तु फिर भी आत्म हत्याएं होती हैं तो क्यों? मानव मन का यह रहस्य अभी रहस्य ही बना है।

रामबाई भी आखिर एक इन्सान थी। उसमें भी जिजीविषा थी ज्यों त्यों वह भी परिस्थितियों से जूझ रही थी। कई बार आत्म हत्या करने का विचार आया किन्तु उसने उस पर नियंत्रण कर लिया, उसे बच्चों के लिए तो जीना था। दरबारी के शराब पीने के लत कम करने के स्थान पर बढ़ती चली गई। तीसरी लड़की के जन्म से भी उसकी इस आदत में कोई अंतर नहीं आया। इस बात को लेकर पति-पत्नी में प्राय:

20/30 मोती नगर, नई दिल्ली—110015

झगड़ा होता। कोई दिन ऐसा न गुजरता जब दोनों आपस में न उलझते हों।

जिस मुहल्ले में उनका मकान था उसके सामने एक सड़क थी। यह सड़क नए बसाए गए माडल टाउन को जाती थी। उस सड़क के उस पार खेत ही खेत थे। उस ओर कोई आबादी नहीं थी। खेतों में कुए थे जिन से खेतों को पानी दिया जाता था। खेत का मालिक प्रातः, सायं रहट चलाते और उनसे खेतों को पानी देते। एक दो कुँए ऐसे भी थे जिनमें कम गहरा पानी था और उनका प्रयोग नहीं होता था।

मैं माडल टाउन के एक स्कूल में अध्यापन कार्य करता था। मेरा स्कूल जाना प्रतिदिन उसी रास्ते से होता था। मैं उसी सड़क से गुजर कर ही माडल टाउन जाता और आता था। उस सड़क से मैं पैदल गुजरता था और दोपहर को स्कूल से छुट्टी के बाद उसी सड़क से वापस लौटता था। गर्मियों के दिन थे। दोपहर का एक बजा था। मैं माडल टाउन से लौट रहा था। आस-पास सुनसान था और एक गहरा सन्नाटा। मेरे आगे कुछ दूर दो और लड़के जा रहे थे। उनके अतिरिक्त मुझे और कोई व्यक्ति दिखाई नहीं दिया। यहां तक कि मुझे किसी पक्षी के उड़ने या फटकने की ध्वनि तक भी सुनाई नहीं दी।

एकाएक मेरा ध्यान आगे जा रहे दो लड़कों पर पड़ा। वे एक कुंए की ओर दौड़ने लगे। दूर खेतों में एक बूढ़ा व्यक्ति खड़ा था। वह भी कुंए की ओर लपका और कुंए में कूद गया। मैं कुछ समझ न पाया कि एकाएक क्या हो गया है। उत्सुकता वश मैं भी उस ओर दौड़ा। कुंए के पास पहुंच मैंने भी कुंए में झांका तो मेरी हैरानी की कोई सीमा न रही। क्या देखता हूं वह बूढ़ा तीन बच्चों और एक औरत को अपनी गोद में लिए कुंए में बैठा है। अभी तक शोर मच रहा था। मुहल्ले के लोग भी आवाज़ सुन कर वहां एकत्रित हो गए थे। जल्दी से एक छोटी चारपाई लाई गई और उस पर तीनों बच्चों को एक-एक करके बिठा कर कुंए से बाहर निकाला गया।

वह औरत रामबाई थी जो अपने तीनों बच्चों को लेकर कुंए में आत्महत्या हेतु कूद गई थी। तीनों बच्चों को निकाल लिया गया। लोग रामबाई की इस हरकत पर नाराज़ थे। वे कहने लगे कि इस औरत को मत निकालो, इसे मरने का इतना शौक है तो इसे डूबने दो। "स्वयं भी मरी थी और बच्चों को भी मारा था"।

मगर अब रामबाई हाथ जोड़ रही थी और अनुनय-विनय कर रही थी कि उसे भी निकाला जाए। भूत सर से उतर गया था। जिजीविषा फिर प्रबल हो गई थी। आवेगात्मक क्षण बीत गया था। मर जाती तो मर जाती मगर अब बच गई थी। अब वह भी मरना नहीं चाहती थी। बाद में पता लगा कि थोड़ी देर पहले ही उसका घर में पति से झगड़ा हुआ था और आवेश में आकर उसने अपना और बच्चों का जीवन समाप्त करने की ठान कर कुंए में कूदी थी। □□

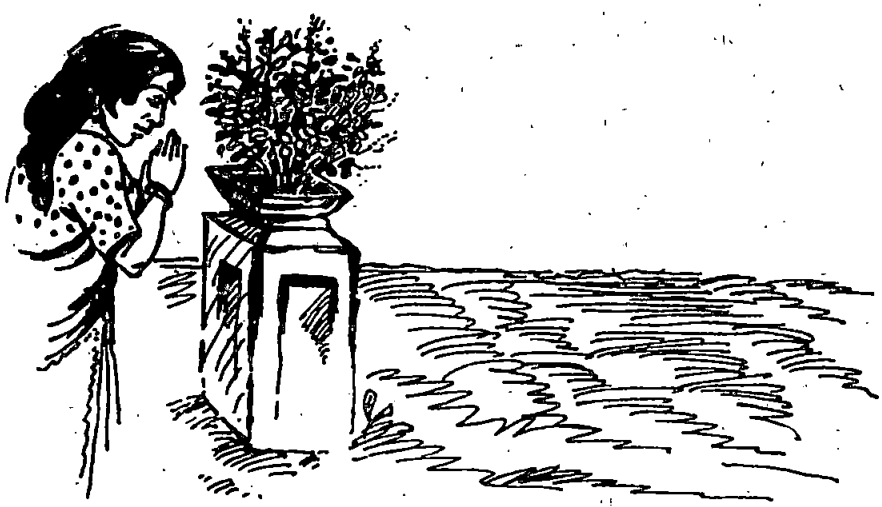

भाषा संगम

मराठी कविताएं

प्राणज्योति

☐ मनमोहन

देवनागरी लिप्यंतरण

प्राणज्योति

ती पहा ती पहा। बापुजींची प्राणज्योती
तारकांच्या सुमनमाला। देव त्यांना वाहताती

चंदनाचें खोड लाजे। हा झिजे त्याहूनही
आज कोटी लोचनांच्या। अश्रुमाला सांगताती

सत्य मानी देव आणि। झुंजला खोट्यासवें हा
ना करीं तल्वार होती। हा अहिंसेचा पुजारी

रंगला रंकासवें हा। झुंजला राजासवें हा
दोन हातांचा परंतु। देव याला मानिताती

भारताच्या मुक्तिसाठीं। भारताच्या शुद्धिसाठीं
प्राणही लावी पणाला। भारताची हीच शक्ति

हिंदी अनुवाद

प्राणज्योति

देखो वह देखो वह बापूजी की प्राणज्योति
तारकों की सुमनमाला देवता चढ़ाते हैं

चंदन का टुकड़ा भी शर्माये, ऐसा त्याग
आज कोटि लोचनों की अश्रुमाला कहती है

सत्य ही ईश्वर किया था झूठ से संघर्ष उसने
हाथ में तलवार भी थी नहीं, अहिंसा का पुजारी

रंक के ही रंग में मिल, यह लड़ा राजाजनों से
हाथ दो ही थे मगर देवता उसे मानते थे

भारत की मुक्ति के लिये, भारत की शुद्धि के लिये
प्राण भी लड़ा दिये, भारत की शक्ति थे

☐☐

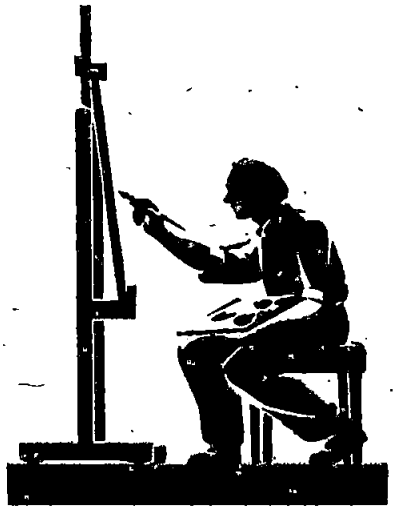

2226 HA/99—8

कोठे शांति ?

देवनागरी लिप्यंतरण

कोठे शांति ?

कोठे शांति ? जुन्या जगांतच ? नव्या, कीं हो ?—कुठें शांति ती ?
शांती पासिफिकापल्याड ? अथवा अत्लान्तिकापैलतीं ?
राहे स्वार्थ जराहि ओंगळ जिथें, शांती वसे ना तिथें
द्वेष, द्वैत जिथें, कदापि रमणी शांती वसे ना तिथें !
शांती मंगल मैत्र.........शांति समता.........बंधुत्व शांती गणी
शांती सत्य, सहिष्णुता, सरलता, शांती अहिंसा जनीं
आम्हां शस्त्र नको !.........अमोघ अमुच्या हातीं अहिंसा असे
आम्हां चिल्खत कासया तरि ? असो हें धैर्य दुर्भेद्य सें !
आम्ही निर्भय हो पुरे ! आम्हि जगीं मृत्यूसही जिंकिलें !
मारूं ?—छे ! न मरूं.....जगूं नि जगवूं आम्ही अहिंसाबळे
जे तलवार करीं धरून लढले, मारीले मेले रणी—
ते झाल बहु, आणि होतिल बहू, झुंजार शूराग्रणी
शस्त्राशीं लाढला निशस्त्रच परी जो का अहिंसाबळे
झाला ही विजयी, अलौकिक असा तो वीर कोठें मिळे ?
तो वीरोत्तम हा इथें.........बळि पडें जो शांतिच्या कारणीं,
जातिद्वेष, अमर्ष, यांस पुरता गेलांच उल्लंघुनी.........!
सोन्याचे नवपंख लेवुनि नभीं जा बापुजी !.........जा.....पहा-
त्या ताऱ्यावर बैसुनी उगवतीच्या पैलतीं, ...ती.....अहा—
बापूजी ! तुमच्या मनांतिल पहा हो—तीपहा हिन्द–भू.....
जेथें सर्व समान.....दास न कुणी, ...नाहींच कोणी प्रभू.....
जेथें मानवता अखंडित, जिथें नाहींच जात्यन्तर.........
जेथें मानव हीच जात ! अवघे हे बंधुबंधू नर.........
आम्हाला न शिवे जिथें लवभरी चांडाल अस्पृश्यता
भक्तीनें पुजितो जिथें नर अहा, नारायणी देवता !
नाहीं दुर्व्यसनें जिथें,—व्यसन तें हो प्रेम हें एकलें !
प्रेमाच्या मदिरें निरन्तर जिथें हे प्रेमपी झिंगले
पूजास्थान जिथें महीयमहिलादेवीच हो पावनी !
स्त्री ?—छे ! श्रीच खरी ! दरिद्रपण हो सारें जिच्यावांचुनी !
जेथें द्वेष नुरेच.....वैरहि विरे, सारें सरे भांडण,
राखाया चतुरंग सैन्य मग हो ! राहे कुठें कारण ?
जेथें भाव अनन्य, निष्कपटसा, सौहार्द जेथें निकें,
जेथें बान्धव आमचे कुशल है लक्षावधी जे मुके !
आशेनें हलकेंच बापु ! तुमच्या पक्ष्मांवरी रेखिलें.........
होत्याच्या स्फुरणीं तुम्ही तरळतें मांगल्य तें देखिलें !
बापू ! स्वप्नच काल एक तुमचें होतें,—परंतू उद्यां—
ते धादांत इथें खरेंच घडतें या डोळियां पाहुं द्या !

हिन्दी अनुवाद

कहां है शांति ?

□ रा० अ० कोलेले

कहां है शंति ? पुरानी दुनिया में ? या नई में ?—कहाँ है शांति ?
शांति क्या प्रशांतसागर के पार ? या अतलांतिक के उस पार ?
जहां भी ज़रा सा कुरूप स्वार्थ शेष है, शांति वहाँ नहीं बसती
द्वेष और द्वैत जहाँ, वहाँ नहीं बसती है रमणी शांति
शांति मंगल मित्रता.........शांति समता.........बंधुता शांति गिनिये
शांति सत्य सहिष्णुता, सरलता, शांति है अहिंसा जनमें
हमें नहीं चाहिए शस्त्र !.........हमारे हाथों में है अजेय अहिंसा
हमें नहीं चाहिए लौह–वस्त्र हमें दुर्भेद्य धैर्य ही है कवच–सा
हम निर्भय हैं पूरे, हमने दुनिया में मौत को भी जीता
मारें ?—नहीं ! न मरें.....जियें और जिलायें हम अहिंसाबल से
जो तलवार हाथ में लेकर लड़े, मारते गये रण में
वे बहुत हो गया होंगे बहुत, शूराग्रणी लड़ाके
शस्त्रों से जो लड़ा निःशस्त्र होकर अहिंसा के बल से
जो विजयी हुआ, ऐसा अलौकिक बीर कहाँ मिले ?
वही वीरोत्तम आज यहाँ.........बलि हुआ शांति के काज में
जाति द्वेष, अमर्ष आदि को वह पार कर गया आज रे !
सोने के नये पंख लेकर नभ में जाइये, बापूजी ! जाइये
उस तारे पर बैठकर, उदय–सीमाएँ परे, अहा, देखिये
बापूजी ! आज के मन की वह देखिये, देखिये हिंद भू
जहाँ सब समान.........दास नहीं कोई.........कोई भी ना प्रभु
जहाँ मानवता अखंडित है, जहाँ जातियों में नहीं अंतर.........
जहाँ मानव ही जाति है ! सारे ही बंधु–बंधु हैं नर.........
हमें जहाँ तिलमात्र भी वह चांडाल अछूतपन नहीं छूता
भक्ति से जहाँ नर पूजता है वही नारायण में देवता
जहाँ नहीं हैं दुर्व्यसन,—जहाँ व्यसन हैं प्रेम के ही अकेले !
प्रेम की मदिरा से निरंतर जहाँ ये प्रेम पीने वाले हैं मतवाले !
पूजास्थान जहाँ महीय महिलादेवी बनी पावनी
स्त्री ? ना ! श्री सच है ! उस—बिना सारी द्ररिद्रा बनी
कैसा द्वेष बचा ? कि बैर बिलमा, सारा समाप्त संघर्षण
सेना फिर चतुरंग और रखने ? क्या है भला कारण
जहाँ अनन्य भाव है, निष्कपटता है जहाँ नीका सौहार्द है
जहाँ हमारे ये लाखों मूक बांधव कुशल हैं, दयार्द्र हे !
आशा से हलके हे बापू ! तुम्हारे पंखों पर रेखा.....
हो ताके स्फुरण में तरल मांगल्य तुमने देखा
बापू ! कल एक तुम्हारा सपना ही था,—पर आगामी कल
वह यहाँ सच्चा वास्तव बनता हुआ, इन आँखों से देखने दो !

वंदन

☐ शरद उमराणी

o o

देवनागरी लिप्यंतरण

सत्यअहिंसेचे नित बंधन
युगपुरूषा हे सादर बंदन.....
शस्त्रावाचुनि शूर शिपाई
अस्त्राविण ही नवी लढाई
अभिनव जगती हो नवलाई
फुले भक्तिये नवनंदनवन.....
बंदुक तोफा तुझिया पुढ़ती
निर्बल निष्फळ सर्व भासती
शक्तिशालि तू जणू अगस्ती
दैन्यजलधिचे समर्थ सेवन.....
दलित पतित हे सगेसोबती
तवं शब्दाने हरि-जन होती
हृदयी हृदयी जड़ली भक्ती
परमात्म्याचे घडले दर्शन.....
जातिभेद तुज गमले विषवत
माता प्रेमळ विशाल भारत
सत्यावरती श्रद्धा शाश्वत
हिमालयासम उन्नत ते मन.....
रामनाम मधु सदा मुखावर
किशोरस्मित नित तव ओठांवर
पांखर शीतल अज्ञ जिव्रांवर
मानव-सेवा ईश्वर-पूजन.....
शंतीचे साम्राज्य कराया
प्रेमाची छाया पसराया
कणकण झिजली ती कृशकाया
सर्वस्वाचे छाले चंदन.....
तूं मृत्युंजय, तूं राष्ट्रपिता
सुवर्ण जीवन पवित्र गाथा
मंत्र अहिंसा दिला भारता
स्मरण स्फूर्तिचे शुभद चिरंतन.....
पुनीत स्मृतिने विरूं दे 'मी'-पण
अमंगलाचे घडो न दर्शन
चिरसुखशांतीचे लाभो घन
अणुदूषित रण हो चित्पावन.....
तेजोमय हा दीप जगाला
अमर कृतीने तुझ्या लाभला
मानवतेचा मार्ग उजळला
विराजेल जग शांति-निकेतन.....

हिन्दी अनुवाद

सत्य अहिंसा का नित बंधन
अहे युगपुरुष ! सादर वंदन
शस्त्र के बिना शूर सिपाही
शस्त्र के बिना नई लड़ाई
अभिनव जग में विस्मय भाई
भक्ति का प्रफुल्लित नवनंदन
बंदूकें तोपें बेमानी
तेरे आगे क्या सेनानी
शक्ति पूर्ण तू अगस्ति-मुनी
दैन्य-जलधि का समर्थ सेवन
दलित पतित सब साथी अपने
हरि-जन तेरे शब्द से बने
भक्ति जुड़ी हर हृदय-हृदय में
परमात्मा के मिलते दर्शन
जातिभेद तुझको था विषवत
माता स्नेहल विशाल भारत
श्रद्धा सत्य-शांति पर शाश्वत
हिमगिरि सा उन्नत तेरा मन
रामनाम मधु मुख में सुन्दर
किशोर-स्मिति तेरे अधरों पर
अक्ष जनों पर सदा कृपाकर
मानव-सेवा ईश्वर-पूजन
किया शांति साम्राज्य सवाया
फैलाने में प्रेम सु-छाया
कण-कण घिसती वह कृश-काया
सरबस बना दिया ज्यों चंदन
तू मृत्युंजय, तू राष्ट्रपिता,
सुवर्ण जीवन पवित्र गाथा
भारत मंत्र अहिंसा-दाता
स्मरण स्फूर्ति का शुभद चिरत
पुनीत स्मृति से बिल्मे 'मैं' पन
कभी कहीं न अमंगल-दर्शन
चिर-सुख शांति मिले सबको धन
अणुदूषित रण हो चित्पावन
तेजोमय यह दीप जगत् हित
तेरे अमर कार्य से लाभित
मानवता का मार्ग प्रकाशित
जग में जागे शांति निकेतन

कहावतें-हिन्दी और तेलुगु की

—वी.वी. आर. मोहन

1. अभ्यासमु कूसु विद्या
   करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
2. नूति लोनि कप्पकि नुय्यि मात्रमे तेलुसु
   कुएं का मेंढक कुएं के बारे में ही जानता है।
3. गुरिविंद गिंज तन नलुपु ऐरुगदु
   कौआ कहे कोयल काली।
4. कुक्कलु मोरिगिते एनुगुकि एमि अगौरवमु
   कुत्ते भौंकें तो हाथी को क्या?
5. पोयिन समयमु तिरिगि रादु
   गया वक्त फिर हाथ आता नहीं।
6. आड लेक मद्देल जोडु अंदि
   नाच न जाने आँगन टेढ़ा।
7. रोट्लो तलपेट्टे रोकटि पोटुकु भयमेंदुकु
   ओखली में सिर दिया तो मूसलों से क्या डरना?
8. जरिगेदि जरगक मानदु
   जो होना है वह होकर रहेगा।
9. कष्टे फलि
   जो कमाए सो खाए।
10. अंदरु पल्लकि ऐक्किते मोसेदेवरु
    मै भी रानी तू भी रानी! कौन भरे पानी?
11. चेतुलु कालाक आकु पट्टुकुंटे एमि लाभं
    अब पछताए होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गई खेत।
12. पिल्लिकि चेलगाटं ऐलककि प्राण संकट
    किसी की जान गई आप की अदा ठहरी।
13. काले पेनं मीद नुंडि मंडे पोय्यिलो पडिनट्लु
    कड़ाही से उछला आग में गिरा।
14. दूरपु कोडलु नुनुपु
    परायी चीज हमेशा सुंदर लगती है।
15. ऐप्पुडु संपद कलिगिन अप्पुडे बंधुवुलु वत्तुरु
    गाँठ में पैसा हो तो घनेरे दोस्त होते हैं।
16. गर्जिचे मेघं वर्षिचदु
    जो गरजते हैं वे बरसते नहीं।
17. ओके ओरलो रेंडु कत्तुलु इमडवु
    एक म्यान में दो तलवारें नहीं आ सकतीं।
18. यथा राजा तथा प्रज
    यथा राजा तथा प्रजा।

□□

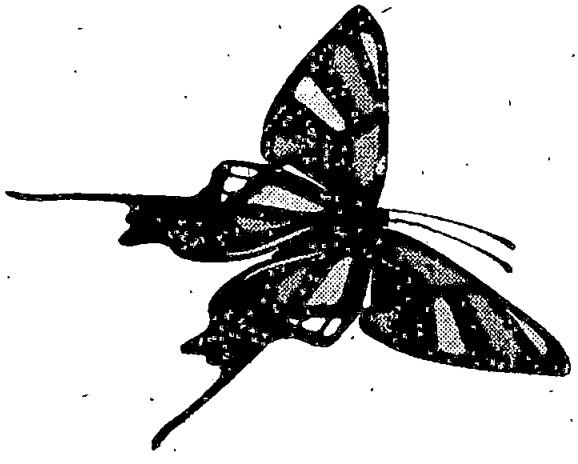

पुस्तक समीक्षा

अमावस्या का चांद

[पुस्तक : अमावस्या का चांद, लेखक : रामनारायण मिश्र, प्रकाशक : अमित प्रकाशन, के. बी.-97, कवि नगर, गाजियाबाद, मूल्य : 60 रु.]

श्री रामनारायण मिश्र ऐसे लेखक हैं जिन्होंने अपने उपन्यासों, कहानियों एवं कविताओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। इस उपन्यास से पूर्व भी उनका एक कविता-संग्रह, एक कहानी-संग्रह तथा दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं।

'अमावस्या का चांद' एक सामाजिक उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यासकार की मान्यता है कि "सृष्टि का सर्वव्यापक एवं प्रधान गुण है 'परिवर्तन'। मानव सभ्यता शाश्वत रूप से इस सृष्टि की इसी विशेषता के कारण बदलती रहती है। इसी क्रम में मानव-हृदय भी परिवर्तनशील रहा है।"

इस उपन्यास के पात्र उपर्युक्त परम्परा का ही प्रतिनिधित्व करते दिखाई देते हैं। मानव-हृदय परिवर्तन के साथ ही साथ समाज के विभिन्न स्तरों पर व्याप्त भ्रष्टाचार का भी परदाफाश इसमें किया गया है।

उपन्यास में कथा का विवरण कुछ इस प्रकार है—विजयपाल नामक व्यक्ति सरकारी अधिकारी थे। उनमें 'मानवता' की सेवा करने की अदम्य उत्कण्ठा थी। अत: वहां से मुक्त होकर उन्होने गंगा के तट पर, 'शंकरपुरा' नामक स्थान में कुछ भूमि लेकर 'श्री शंकर सेवा सदन' नाम से एक आश्रम की स्थापना की। जिसमें अस्पताल, अनाथ-प्रकोष्ठ, शिक्षा-प्रकोष्ठ, अन्नपूर्णा-प्रकोष्ठ आदि संभाग स्थापित किए। यहां पर प्रतिदिन भूखों को भोजन, रोगियों को दवा, इत्यादि अन्यानेक कार्य सम्पन्न किए जाते थे। इन कार्यों के लिए चरित्रवान, निष्ठावान तथा सीधे सच्चे व्यक्ति रखे जाते थे। इस प्रकार मानव-सेवा करते-करते विजयपाल 'महात्मा विजयानन्द' नाम से विख्यात हो गये।

इस आश्रम में जयदेव नाम के युवक का प्रवेश हुआ जो बड़ा विनीत स्वभाव का था। अत: उसे महिला-प्रकोष्ठ में रुग्ण-महिलाओं की सहायतार्थ नियुक्त कर दिया गया। उसमें धीरे-धीरे तामसी प्रवृत्तियां बढ़ने लगीं। उसे महात्मा की ज्ञान-ध्यान आदि क्रियाओं से चिढ़ होने लगी लेकिन तन्त्र-मन्त्र में उसकी रुचि बढ़ने लगी। परिणामस्वरूप अघोर कृत्य करते-करते वह अघोरी तान्त्रिक बन गया। जिसमें कोई कार्य वर्जित नहीं है। (यद्यपि प्रत्येक तान्त्रिक-ऐसा नहीं करते) इसी क्रम में उसने आश्रम में आने वाली पार्वती नाम की रोगिणी के साथ अभद्र व्यवहार किया। जिसके कारण महात्मा ने उसे आश्रम से निष्कासित कर दिया।

अपने निष्कासन से आहत जयदेव ने तन्त्र-विद्या के प्रभाव से महात्मा के विनाश की योजना बनायी और शमशान में तन्त्र-साधना करने लगा। एक दिन महात्मा के समक्ष जा पहुंचा। उस समय महात्मा स्फटिक शिला पर ध्यान-मग्न अवस्था में थे। वह दहाड़ा—विजयानन्द आंखें खोलो मैंने सिद्धि प्राप्त की है। महात्मा ने नेत्र खोले—सामने का दृश्य देख मुस्कराने लगे—यह देख जयदेव क्रोध से कांप उठा—कहने लगा 'सिद्धि' का पहला प्रयोग तुम्हीं पर करूंगा। यह कहकर पास ही एक वट-वृक्ष तले उसने तान्त्रिक-अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया। कई दिन का भूखा प्यासा जयदेव क्षीणकाय हो गया था—उससे संभला न गया और बेहोश होकर गिर पड़ा। सूचना मिलते ही महात्मा उसे आश्रम ले आये - उसकी समुचित देखभाल की, जिससे जयदेव होश में आ गया। महात्मा के हालचाल पूछने पर उसने कहा—मैं हार गया, आपसे आपकी व्यवस्था से। महात्मा ने कहा कि तुम्हें अपने अपराध के लिए प्रायश्चित करना होगा —वह प्रायश्चित था जयदेव का पार्वती से विवाह।

जयदेव को महात्मा ने एक विद्यालय में संस्कृत का प्राध्यापक नियुक्त करा दिया। उनके यहां दो पुत्रियां पैदा हुई—धारिणी तथा सृष्टि। जयदेव सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक तथा राजनैतिक हर क्षेत्र में अपनी प्रतिभा की धाक जमा चुके थे। उधर उनकी पुत्रियां भी उसी गति से प्रगति कर रही थीं। उसी समय धारिणी की मुलाकात मोहनपुरा के निर्वाचित विधायक केदारनारायण के पुत्र राजेश से होती है जो उसका सहपाठी था - साथ ही अपने महाधूर्त पिता का उदण्ड पुत्र था। इसके विपरीत धारिणी अपने पिता के आदर्शों पर चलकर निर्भीक, साहसी, तथा प्रतिभावान थी। साथ ही अत्यधिक सुन्दर भी। उसके व्यक्तित्व के समक्ष राजेश की हिम्मत नहीं हुई कि वह अपने प्रेम का इजहार कर सके। एक दिन महिला-सम्मेलन के अवसर पर धारिणी ने 'दहेज' तथा 'आधुनिक नारी' विषय पर अपने बेबाक विचार रखे। जिनसे प्रभावित होकर राजेश उदण्ड से एक नेक इन्सान बन गया।

इसी बीच लेखक ने लोकतन्त्र तथा तानाशाही को परिभाषित करने का समुचित प्रयास किया है। मोहनपुरा में अनेक वर्षों से केदार नारायण ही विधायक निर्वाचित हो रहे थे। जनता उनके धन कमाने के अनैतिक कृत्यों से दुःखी होकर, जयदेव को विधायक बनाना चाहती थी। यही प्रसंगवश उपन्यासकार ने अवसरवादी राजनीति का कच्चा चिट्ठा उजागर किया है। केदार नारायण की चुनावी सभाओं का वर्णन बड़े सजीव अन्दाज में किया है। 'बंदर की शोकसभा' के जरिये मिश्र जी ने राजनेताओं की पोल खोली है, जो हास्य-व्यंग्य का पुट लिए हुए है।

दूसरी ओर जयदेव की चुनाव सभा की शालीनता देखते ही बनती है। जयदेव के माध्यम से सच्चा राजनेता कैसा होना चाहिए इसका दिग्दर्शन किया गया है। जयदेव को चाटुकारिता नहीं सुहाती थी। अपनी प्रशंसा सुन वह हतोत्साहित हो जाता था। उस समय उसकी पुत्री धारिणी द्वारा जयदेव में चेतना जाग्रति का कार्य कराके लेखक ने दो कार्यों को सर-अंजाम दिया है, एक-पिता का पथ प्रदर्शन करती थी, दूसरे नारी की गरिमा—उसके गुणों के कारण हैं—इसे स्पष्ट किया है। यहां तक कि राजेश जो पहले बदमाश, उदण्ड था वह भी नारी शक्ति के आगे झुक गया। अपने पिता का साथ छोड़कर राजेश जयदेव की सभा में जनता के स्वागतार्थ उपस्थित था। उसका हृदय-परिवर्तन हो चुका था, उसमें धारिणी के प्रति सम्मान की भावना जाग्रत हो चुकी थी।

महात्मा विजयानन्द के निर्देशानुसार जयदेव निस्वार्थ भाव से जनता की सेवा करता था। जब कभी वह हिम्मत हारने लगता था, पार्वती उसके कन्धे से कन्धा मिलाये खड़ी नज़र आती थी। साथ ही उसकी प्रतिभाशालिनी पुत्री धारिणी भी अपने पिता के साथ सहयोग करती थी।

इस उपन्यास में लेखक ने 'परिवार-नियोजन' की ज्वलन्त समस्या पर भी जयदेव के माध्यम से अपने विचार प्रकट किये हैं। उनका कहना है कि 'परिवार-नियोजन' को 'अनिवार्यता' के दायरे में लाना होगा तभी प्रतिफल सम्भव है। अन्यथा असम्भव। 'प्रतिफल' है मानव की एकाकी रहने की इच्छा। कारण एकाकी अवस्था में ही मनुष्य अपने 'स्व' के निकट, अपनी आत्मा के निकट, यानी परमात्मा के निकट होता है। इससे अधिक मनुष्य को चाहिए ही क्या?

प्रस्तुत उपन्यास में पहले जयदेव का हृदय परिवर्तन हुआ फिर राजेश का तत्पश्चात उसके पिता केदारनाथ का। विधायक न चुने जाने के कारण दुःखी केदार को फालिश पड़ गया। इस स्थिति में पहुंचते ही अपने बेगाने बन गये। तब महात्मा ने ही अपने आश्रम में लाकर उनका उपचार तथा देख-भाल की, वे स्वस्थ हो गये। उनकी आंखें खुल गईं, वे सोचने लगे जिनको मैं दुश्मन समझता था आज वे ही मेरे काम आए। बाद में धारिणी को उन्होंने अपनी पुत्रवधू बनाया तथा स्वयं आश्रम में ही सेवा-कार्य करने लगे।

महात्मा ने अपने शरीर-त्याग से पूर्व अपना भार जयदेव को सौंप दिया-ताकि जिन कार्यों को वे स्वयं करते आये थे अब उन्हें जयदेव सम्पन्न करें। महात्मा के वियोग से दुःखी एक दिन जयदेव महात्मा की प्रतिमा के पास बैठे थे – तब पार्वती ने उन्हें समझाया—महात्माजी के आदर्शों पर चलकर ही लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। जयदेव कहने लगे—उनके आदर्शों की पूर्ति के लिए संयम तथा शान्त मानसिकता की आवश्यकता है क्योंकि संसार में अमावस्या की काली रात्रि छाई हुई है, पार्वती बीच में ही बोल पड़ी— 'महात्मा' इस अमावस्या की रात्रि के चांद थे। जो अन्धकार को समेटने के लिए अमावस्या में भी उदय हो गए।

उपन्यासकार ने आश्रम का बड़ा ही सजीव, मार्मिक व सुन्दर चित्रण किया है। कथानक सुदृढ़ एवं रोचक है। लेखक ने अपने एक-एक दिन के ब्यौरे में सदियों का ब्यौरा दे दिया है। पाठक भी इसको एक ही दिन में पढ़ने को लालायित हो उठेंगे।

'अमावस्या के चांद' की भाषा शैली सशक्त है, तथा चरित्रों के माध्यम से पाठकों को जोड़ने में सक्षम है। उपन्यास को पढ़ते समय पाठक अपने आपको आश्रम के स्वस्थ, प्राकृतिक तथा पवित्र वातावरण में बैठा महसूस करेगा। सम्भव है उसका हृदय परिवर्तन भी हो जाए, ऐसा मेरा विश्वास है।

डा. राजकुमारी शर्मा
सी/डी-30, पुराना कविनगर
गाजियाबाद-201002.

भाषा विज्ञान की रूपरेखा

[पुस्तकः भाषा विज्ञान की रूपरेखा, लेखक : डॉ. हरीश शर्मा, प्रकाशक : अमित प्रकाशन, के.बी.—97, कवि नगर, गाजियाबाद मूल्य : 195 रु०]

डॉ० हरीश शर्मा द्वारा प्रणीत 'भाषा विज्ञान की रूपरेखा' में पुरातन, परम्परागत एवं अद्यतन आधुनिक भाषा विज्ञान को अपने अवयवों सहित प्रस्तुत किया गया है। ध्वनि से लेकर वाक्य तक के सभी स्तरों का आधिकारिक विवेचन पुस्तक की प्रमुख विशेषता है। अर्थविज्ञान सम्बन्धी विवेचन जिस विशदता के साथ पुस्तक में हुआ है, वह सराहनीय है। इसमें भाषा विज्ञान की सभी प्रसिद्ध एवं प्रचलित अध्ययन-पद्धतियों, नवीन शाखा-प्रशाखाओं को समाविष्ट किया गया है, जिससे इस क्षेत्र में

अभिरुचि रखने वाले जिज्ञासुओं को अपेक्षित दिशा-निर्देश प्राप्त हो सके। सिद्धान्त निरूपण को सहज बोधगम्य बनाने के लिए उद्धरणों को प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त किया गया है। ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक विवेचन प्रस्तुत करते समय लेखक ने अपना दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया है। भाषा विज्ञान के अंग-उपांगों—भाषा, ध्वनि विज्ञान, रूप विज्ञान, वाक्य विज्ञान, अर्थ विज्ञान, कोश विज्ञान आदि का विस्तृत अध्ययन इन्हीं शीर्षकों से एक-एक अध्याय के रूप में भी समाविष्ट है। साथ ही 'अन्य' एक अध्याय में मनोभाषाविज्ञान, शैली विज्ञान, समाजभाषा विज्ञान आदि का भी विशद अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अन्त में परिशिष्ट में संसार की भाषाओं का वर्गीकरण, पारिवारिक वर्गीकरण, इनसे सम्बन्धित इतिहास और सिद्धान्त भी प्रस्तुत किए गए हैं। पुस्तक में इन तमाम उपर्युक्त प्रमुख विशेषताओं का समावेश भाषा विज्ञान के विद्यार्थियों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर किया गया है। तभी यह पुस्तक छात्रों एवं जिज्ञासुओं में इतनी उपयोगी सिद्ध हुई कि इसके अभी तक पांच संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

लेखक ने भाषा को सरल, सुबोध, बोधगम्य एवं प्रवाह पूर्ण बनाए रखा है। कहीं कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक स्वयं ही प्रश्न करता है और उनके उत्तर भी स्वयं देता है। लेखक प्रत्येक शब्द को परिभाषित करता हुआ आगे बढ़ा है। भाषा विज्ञान का सीधा अर्थ है—भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है—विशिष्ट ज्ञान। इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान—भाषा विज्ञान। भाषा विज्ञान भाषा मात्र के अध्ययन से सम्बद्ध एक गत्यात्मक अध्ययन है। भाषा तत्वों के विश्लेषण-संश्लेषण सम्बन्धी देशकाल-सापेक्ष व्यवस्थित अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त निष्कर्षों के माध्यम से भाषा मात्र के अनुशीलन एवं सिद्धान्त निरूपण सम्बन्धी अध्ययन को भाषा विज्ञान कहते हैं। भाषा और बोलियों के सम्बन्ध में देखिए—भाषाओं और बोलियों में विभाजक रेखाएं खींचना असम्भव है। अपने-अपने सीमान्तों पर ये एक दूसरे से अदृश्य रूप से घुली-मिली रहती हैं। डाइग्रामों से भी विषय को सुगम्य बनाया गया है।

'भाषा विज्ञान की रूपरेखा' पुस्तक डॉ० साहब के 41 वर्षों के स्वाध्याय, चिन्तन-मनन का प्रतिफलन है। पुस्तक अपने में पूर्ण एवं उपयोगी है, पुस्तक की साज-सज्जा यद्यपि सामान्य है परन्तु आकर्षक एवं मोहक है। पुस्तक पठनीय, मननीय एवं संग्रहणीय है।

राधाचरण विद्यार्थी
सी-44, मेरठ रोड
औद्योगिक क्षेत्र
गाजियाबाद-201003

दंगे क्यों ?

(पुस्तक: दंगे क्यों ?, लेखक: राजेन्द्रमोहन भटनागर प्रकाशक: विद्या पुस्तक सदन शिव मार्केट (प्रथम तल) न्यू चन्द्रावल जवाहर नगर, दिल्ली-110007 मूल्य : 95.00 रु.)

समीक्षार्थ पुस्तक के नाम से ही यह स्वत: ही स्पष्ट हो जाता है कि 112 पृष्ठों में लिखी गई यह सुंदर और संपूर्ण पुस्तक दंगों पर आधारित है। लेखक ने पुस्तक को दस पाठों में विभक्त किया है। ये सभी पाठ दंगों पर आधारित हैं, उसके साथ-साथ ये अपने शीर्षकों और उपशीर्षकों के माध्यम से दंगों की उत्पत्ति, दंगों का स्वरूप, दंगों के कारण आदि की व्याख्याएँ तो प्रस्तुत करते ही हैं इसके साथ-साथ विषयानुक्रम से तत्संबंधित दंगों का गहन-विश्लेषण और विस्तृत विवेचना भी करते हैं। लेखक ने समीक्षार्थ पुस्तक को जिन विषय-वस्तुओं और पाठों में विभक्त किया है वे सभी पाठ केवल दंगे क्यों? का ही अध्ययन नहीं करते हैं, अपितु, दंगे क्यों? कैसे? किस तरह? किस लिए? कब-कब? आदि का भी सांगोपांग वर्णन करते हैं। इसीलिए लेखक ने इस पुस्तक को, 'राष्ट्रीय चरित्र के संदर्भ और दंगों का नीति-पूरक मूल्यांकन,' अनुशासनहीनता और दंगावाद, आत्म-विद्रोह के प्रतीक दंगों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, सामाजिक सन्दर्भशून्यता और दंगावाद, दंगात्मक प्रवृति: दंगों की अर्थपरक मीमांसा, हिंसात्मक चरित्र का परिवेश मूलक विश्लेषण, अलोकतान्त्रिक अराजकता बनाम दंगावाद आदि दस पाठों में विभक्त किया है।

"स्वतंत्रता आंदोलन के प्रारंभिक दिनों में जो दंगे हुआ करते थे उनका एकमात्र लक्ष्य भारत को स्वतंत्रता दिलाना था। तब भारत का मतलब हिन्दू, मुसलमान, क्रिश्चियन, पारसी, सिक्ख, बौद्ध आदि सबसे था। जो भारत का था, वह आज़ादी चाहता था। फलत: सभी बिना किसी वैमनस्य के आज़ादी के राष्ट्रीय आंदोलन में सम्मिलित थे और कुर्बानी के लिए प्रतियोगिता स्तर पर उतर आए थे। तब ब्रिटिश हुकूमत की नींव हिल उठी थी। उनके लिए भारत की एकता खतरनाक सिद्ध होने लगी थी।"

राष्ट्रीय चरित्र के संबंध में उक्त तथ्य लेखक ने उनकी भूमिका बांधते हुए व्यक्त किए हैं। कालान्तर में यही दंगे अपना स्वरूप बदलते गए और राष्ट्रीय स्तर से उतर कर बहुत निम्न स्तर तक आ गए। तब लेखक का यह कहना सही है कि "अब दंगे होते हैं हिन्दू-मुस्लिम के बीच, मंदिर-मस्जिद के बीच और दीपावली-ईद के बीच। अर्थात् सांस्कृतिक, धार्मिक तथा सामाजिक-संचेतना प्रवाह जो पहले प्रबुद्धता का प्रतीक था,

अब खण्डित धर्मिता को अपने में जी उठा। जिसके कारण समाज कई टुकड़ों में बंट गया।" और लेखक का यह भी कहना ठीक है कि—"समाज की ब्यूह रचना; जातीय एवं राष्ट्रीय विकास एवं पतन के लिए बहुत कुछ जिम्मेदार है। भारतीय समाज अपने आप में बेताह उलझा हुआ है। वह हीन भावना से भी ग्रस्त है। उसमें उच्च वर्ग अपनी झूठी शान के लिए निम्न वर्ग को परेशान करता है। जातीय अभिमान ने उसे जर्जर बना दिया है। स्वतंत्रता के बाद से लेकर आज तक उस समाज की स्थापना संभव नहीं हो सकी जिसकी कल्पना स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय मस्तिष्क में उतार दी गई थी। आये दिन ऐसी जघन्य घटनाएँ सामने आ रही है जो व्यक्ति के विकास और उन्नत समाज के ढोंग के बखिया उधेड़ देती है।"

"आज धर्म में भी राजनीति घुस गई है। धर्म ढकोसला हो गया है जिससे दृष्टि को विस्तार मिलना चाहिए, उससे दृष्टि संकीर्ण होकर रह गई है। धार्मिक नेता धर्मारूढ़ तो हैं ही अब उनमें नया शौक चर्राया है, राजनीति में दखल देने का, एवं जनता की प्रगति की आकांक्षा बेमानी है, उसको मद्देनजर रखकर कोई योजना नहीं चलाई जा सकती है। राज करने का मूल मंत्र यही है कि बाँटो और राज करो। फूट और बँटवारा ही राष्ट्रीय नीति की शक्ति है। उसे तो नेतृत्व सँभाले रखने की साजिश व गठजोड़ करते रहना है। न सवाल हिन्दू का है और न मुसलमान का। सवाल तो मुख्य है राजनीतिक अधिकारों की लूट में हिस्सा ज्यादा से ज्यादा प्राप्त करने का। आज किसी के पास खाली समय नहीं है कि वह आर्थिक माँगों के लिए जद्दोजहद करे।" समीक्षार्थ पुस्तक की उक्त पंक्तियाँ आज के सत्य का नग्न चित्र प्रस्तुत करती है। आज दंगों के पीछे सर्वाधिक हाथ राजनीति और राजनीति के ठेकेदारों का है। अपने तुच्छ स्वार्थों की संपूर्ति के लिए तुच्छ राजनीति करना और उसका सहारा लेना आज के तथाकथित समाज सेवकों और नेताओं का ही काम है। यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि आज दंगे होते नहीं है बल्कि किए जाते या कराए जाते हैं। इनके पीछे उन भ्रष्ट लोगों का हाथ होता है जो किन्हीं तुच्छ स्वार्थों के वशीभूत होकर अपने कर्तव्य से विमुख हो जाते हैं। किन्तु मुख्यत: दंगों और दंगाइयों को प्रोत्साहन और ताकत देने का काम भारत में आज के राजनेता ही कर रहे हैं। यह अलग बात है कि उनकी पहचान करना इतना आसान नहीं है। उनके बारे में भी यह कहना सही होगा कि "नेता चरित्र न जाने कोई, नेता मार के नेता होई" दंगा क्यों ? पुस्तक को आद्योपांत पढ़ने से लेखक का दंगों के संदर्भ में गहन अध्ययन, चिंतन और मनन का परिचय मिलता है। दंगो, दंगाइयों, दंगापीड़ितों और दंगाग्रस्तों को समुचित दंड या समुचित न्याय दिलाने की प्रक्रिया में यह पुस्तक न्यायविदों के लिए बहुत उपयोगी और सहायक सिद्ध होगी इसमें कोई संदेह नहीं। पुस्तक की साज-सज्जा और मुद्रण आकर्षक और स्वच्छ है।

हरीश चन्द्र मैखुरी
एफ-एस-एच—2
नेता जी नगर,
नई दिल्ली

MGIPRRND—2226 HA/99—10,000 Copies.

"भारतीय भाषाएं नदियाँ हैं और हिन्दी महानदी। हिन्दी देश के सबसे बड़े हिस्से में बोली जाती है। हमें इसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करना ही चाहिए। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि हिन्दी के बिना हमारा काम चल नहीं सकता।"

—रवीन्द्र नाथ ठाकुर

"जो लोग देश में हिंदी चलाने के विरोधी हैं उन्हीं के कारण तमिलनाडु में तमिल, बंगाल में बंग्ला, आंध्र में तेलगू और केरल में मलयालम का प्रचलन रुका हुआ है। यह एक ऐसा जटिल षड्यंत्र है जिसे जनता को बारीकी से समझना चाहिए। यह षड्यंत्र यदि सफल हो गया तो भारत का इतिहास विफलता बोध से ग्रस्त हो जाएगा और हम जिन मनसूबों के साथ किस्मत को बदलने और सभ्यता को नई दिशा की ओर मोड़ने की तैयारी कर रहे हैं वे धूल में मिल जाएंगे।"

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर'

आई एस एस एन 0970-9398

संविधान में हिन्दी भाषा के विकास के लिए निदेश

351 संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी के और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं के प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द—भण्डार के लिए मुख्यत: संस्कृत से और गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करें।

प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली-110064 द्वारा मुद्रित।
1999